स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

उत्तर प्रदेश सरकार का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय

।। सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ।।

MAAH-118 (N)

विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ

Ancient Civilizations of the World

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज - 211013
www.uprtou.ac.in
टोल फ्री नम्बर- 1800-120-111-333

कुलपति
उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
प्रयागराज

सन्देश

प्रयागराज की पवित्र भूमि पर भारत रत्न राजर्षि पुरूषोत्तम दास टण्डन के नाम पर वर्ष 1999 में स्थापित उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज उ0प्र0 का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय है। यह विश्वविद्यालय उ0प्र0 जैसे विशाल जनसंख्या वाले राज्य में उच्च शिक्षा के प्रत्येक आकांक्षी तक गुणात्मक तथा रोजगारपरक उच्च शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराने में निरन्तर अग्रसर एवं प्रयत्नशील है। तत्कालीन देश की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में एक वैकल्पिक व नवाचारी शिक्षा व्यवस्था के रूप में भारत में मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा प्रणाली का पदार्पण हुआ था, परन्तु वर्तमान परिस्थितियों तथा तकनीकी का सार्थक प्रयोग करते हुये मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा आज की सर्वोत्तम पूरक शिक्षा व्यवस्था के रूप में स्थापित हो चुकी है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली के सामने व्याप्त पाँच मुख्य चुनौतियों - (i) पहुँच (Access), (ii) समानता (Equity), (iii) गुणवत्ता (Quality), (iv) वहनीयता (Affordability) तथा (v) जवाबदेही (Accountability) को केन्द्र में रखकर घोषित देश की राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP-2020) के प्रस्तावों को क्रियान्वित करने में उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय कृत संकल्पित है। उ0प्र0 की माननीय राज्यपाल एवं कुलाधिपति श्रीमती आनंदीबेन पटेल जी की सद्इच्छाओं के अनुरूप उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, शैक्षिक दायित्वों के साथ-साथ सामाजिक दायित्वों के निर्वहन में भी लगातार नवप्रयास कर रहा है। चाहे वह गाँवों को गोद लेकर उनके समग्र विकास का प्रयास हो या ग्रामीण महिलाओं, ट्रान्सजेण्डर व सजायाफ्ता कैदियों को शुल्क में छूट प्रदान कर उनमें आत्मविश्वास जागृति व उच्च शिक्षाा के प्रति अलख जगाने का प्रयास हो।

राष्ट्रीय विकास को बढ़ावाा देने के लिए शिक्षा एक मूलभूत जरूरत है। ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्रों में हो रहे तीव्र परिवर्तनों व वैश्विक स्तर पर रोजगार की परिस्थितियों में आ रहे परिवर्तनों के कारण भारतीय युवाओं को विभिन्न क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराने पर ही भारत का भविष्य निर्भर करेगा। इसीलिए विभिन्न क्षेत्रों में सफलता हेतु शिक्षा को सर्वसुलभ, समावेशी तथा गुणवत्तापरक बनाना समसामयिक अपरिहार्य आवश्यकता है। कोविड-19 संक्रमण काल ने परम्परागत शिक्षा को और भी सीमित कर दिया है जबकि कोविड-19 के संक्रमण काल में तथा कोविड-19 के बाद भी मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था ही एकमात्र पूरक एवं प्रभावी शिक्षा व्यवस्था के रूप में सार्थक सिद्ध हो रही है। ऐसी स्थिति में विश्वविद्यालय का दायित्व और भी बढ़ जाता है। इस दायित्व को एक चुनौती स्वीकार करते हुए विश्वविद्यालय ने प्राचीन तथा सनातन भारतीय ज्ञान, परम्परा तथा सांस्कृतिक दर्शन व मूल्यों की समृद्ध विरासत के आलोक में सभी के लिए समावेशी व समान गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करने तथा जीवन पर्यन्त शिक्षा के अवसरों को बढ़ावा देने के लिए अपने शैक्षिक कार्यक्रमों में प्रमाणपत्र, डिप्लोमा, परास्नातक डिप्लोमा, स्नातक, परास्नातक तथा शोध उपाधि के समसामयिक शैक्षिक कार्यक्रमों की संख्या तथा गुणात्मकता में वृद्धि की है।

शैक्षिक कार्यक्रमों में संख्यात्मक वृद्धि, गुणात्मक वृद्धि तथा रोजगारपरक बनाने के साथ-साथ प्रत्येक उच्च शिक्षा आकांक्षी तक पहुँच सुनिश्चित करने के लिए अध्ययन केन्द्रों व क्षेत्रीय केन्द्रों के विस्तार के साथ-साथ प्रवेश, परीक्षा, प्रशासन तथा परामर्श (शिक्षण) में आनलाइन व्यवस्थाओं को सुनिश्चित किया गया है। विश्वविद्यालय कार्यप्रणाली में पारदर्शिता तथा जवाबदेही सुनिश्चियन की दृष्टि से तकनीकी के प्रयोग को बढ़ायाा गया है। 'चुनौती मूल्यांकन' की व्यवस्था सुनिश्चित करने का कार्य किया गया है, तो शिक्षार्थी सहायता सेवाओं में भी वृद्धि की जा रही है। शिक्षार्थियों की समस्याओं के त्वरित निस्तारण हेतु शिकाायत निवारण प्रकोष्ठ को सुदृढ़ करने के साथ-साथ पुरातन छात्र परिषद को गतिशील किया गया है।

शोध और नवाचार के क्षेत्र में अग्रसर होते हुए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) नई दिल्ली तथा माननीय राज्यपाल एवं कुलाधिपति, उ0प्र0 की अनुमति से विश्वविद्यालय में शोध कार्यक्रम पुनः प्रारम्भ किया गया है तथा वर्ष पर्यन्त समसामयिक विषयों पर व्याख्यान, सेमिनार, बेबिनार तथा आनलाइन संगोष्ठियों आदि की श्रृंखला भी प्रारम्भ की गयी है। विभिन्न क्षेत्रों में रिसर्च प्रोजेक्ट सम्पादन पर भी ध्यान केन्द्रित किया गया है। पुस्तकालय को अत्याधुनिक तथा सुदृढ़ बनाने हेतु कदम उठाये गये हैं। शिक्षकों व कर्मचारियों के स्वास्थ्य तथा कल्याण की योजनायें क्रियान्वित की गयी है। वर्तमान की विषम परिस्थितियों के दृष्टिगत विश्वविद्यालय ने मुख्यमंत्री तथा प्रधानमंत्री राहत कोष में अंशदान देने का भी प्रयास किया है।

भौतिक अधिसंरचना की दृष्टि से विश्वविद्यालय निजी स्रोतों से ही निरन्तर आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ा है। विश्वविद्यालय के शिक्षकों, परामर्शदाताओं, क्षेत्रीय समन्वयकगण, अध्ययन केन्द्र समन्वयकगण तथा कर्मचारियों की एकता व कर्मठता ही वह ऊर्जा पिण्ड है जिसके बल पर विश्वविद्यालय जीवंत व प्रकाशवान है। मुझे विश्वास है कि इसी ऊर्जा पिण्ड की सहायता से यह विश्वविद्यालय देश, प्रदेश तथा समाज को अपनी सेवाओं व योगदान प्रदान कर और अधिक समृद्ध, सुदृढ़ और गौरवशाली बनाने में अपनी भूमिका अदा कर सकेगा। मैं समस्त विश्वविद्यालय परिवार के प्रति आदर व आभार व्यक्त करती हूँ।

प्रो. सीमा सिंह
कुलपति

MAAH-118 (N)

विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ

Ancient Civilizations of the World

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

इकाई 1	सैन्धव सभ्यता–उद्‌भव एवं विकास–सामाजिक स्थिति, आर्थिक स्थिति, धर्म, कला एवं स्थापत्य, विघटन एवं सातत्य	3
इकाई 2	सुमेरियन सभ्यता–राजनीतिक स्थिति, सामाजिक स्थिति, आर्थिक स्थिति, धर्म एवं विज्ञान, कला एवं स्थापत्य	28
इकाई 3	बैबिलोनियन सभ्यता–राजनीतिक स्थिति, आर्थिक स्थिति, सामाजिक स्थिति, धर्म एवं विज्ञान, कला एवं स्थापत्य एवं हम्बूराबी की विधि संहिता	43
इकाई 4	असीरियन सभ्यता–राजनीतिक स्थिति, सामाजिक स्थिति, आर्थिक स्थिति, धर्म एवं विज्ञान, कला एवं स्थापत्य	55
इकाई 5	कैल्डियन सभ्यता–राजनीतिक स्थिति, धर्म एवं विज्ञान, कला	64
इकाई 6	मिस्र सभ्यता–राजनीतिक स्थिति, सामाजिक स्थिति, आर्थिक स्थिति, धर्म एवं विज्ञान, कला एवं स्थापत्य, ईख्नाटन का जीवन और उपलब्धियाँ	68
इकाई 7	हित्ती सभ्यता–राजनीतिक स्थिति, सामाजिक स्थिति, आर्थिक स्थिति, धर्म एवं कला	89
इकाई 8	ईजियन सभ्यता–राजनीतिक स्थिति, सामाजिक स्थिति, आर्थिक स्थिति, धर्म एवं विज्ञान,कला एवं स्थापत्य	100
इकाई 9	होमर–काल	110
इकाई 10	पेरिक्लीज़ का युग	116
इकाई 11	हेलेनिक एवं हेलेनिसटिक सभ्यता	124
इकाई 12	रोम सभ्यता–राजनीतिक स्थिति, संवैधानिक विकास, जूलियस सीजर एवं आगस्टस	141
इकाई 13	पारसीक सभ्यता–राजनीतिक स्थिति, सामाजिक स्थिति, आर्थिक स्थिति, धर्म, कला एवं स्थापत्य एवं जरथ्रुस्ट्र का जीवन एवं शिक्षाएं	161
इकाई 14	चीनी सभ्यता–शांग एवं चाऊ काल, कन्फ्यूशियस का जीवन एवं शिक्षाएं	**177**

MAAH-118 (N)
विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ
Ancient Civilizations of the World

परामर्श समिति

प्रो.सीमा सिंह	कुलपति, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज
कर्नल विनय कुमार	कुलसचिव, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

पाठयक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो.सन्तोषा कुमार	निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज
प्रो.जे.एन.पाल	पूर्व आचार्य, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज
प्रो.हर्ष कुमार	आचार्य, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज
प्रो.राजकुमार गुप्ता	आचार्य, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, प्रो.राजेन्द्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यलय,प्रयागराज
डॉ.सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास,समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

लेखक

डॉ.पारूल सिंह,	सहायक आचार्य, प्राचीन भारतीय इतिहास खुनखुन जी गर्ल्स पी.जी.कालेज, लखनऊ

सम्पादक

प्रो.ओम प्रकाश श्रीवास्तव,	पूर्व आचार्य, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठयक्रम समन्वयक

डॉ.सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

(c) **उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज– 211021** **मुद्रित वर्ष**– जनवरी, 2024

ISBN : 978-81-19530-55-7

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस साम्रगी के किसी भी अंश को उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय साम्रगी में मुद्रित साम्रगी के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन–उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशक– कुलसचिव, कर्नल विनय कुमार उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

मुद्रक– मेसर्स चन्द्रकला प्राइवेट लिमिटेड, 42/7 जवाहर लाल नेहरू रोड, प्रयागराज–211002

इकाई –1 सैन्धव सभ्यता

इकाई की रूपरेखा

1.0 प्रस्तावना

1.1. उद्देश्य

1.2. उद्भव व विकास

1.2.1. देशज उत्पत्ति

1.2.2. विदेशी उत्पत्ति

1.3. सामाजिक स्थिति

1.4. आर्थिक स्थिति

1.5. धर्म

1.6. कला व स्थापत्य

1.6.1. मृण्मूर्तियाँ

1.6.2. प्रस्तर मूर्तियाँ

1.6.3. धातु मूर्तियाँ

1.6.4. स्थापत्य

1.7. विघटन व सातत्य

1.7.1. जलवायवीय परिवर्तन

1.7.2. नदियों की बाढ़

1.7.3. प्रशासनिक शिथिलता/अस्थिरता

1.7.4. भूविवर्तनिक परिवर्तन

1.7.5. वाह्य आक्रमण

1.7.6. महामारी

1.7.7. सिन्धु सभ्यता व सातत्यता

1.8. बोध प्रश्न

1.9. सन्दर्भ ग्रन्थ

1.0.प्रस्तावना

विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं यथा– मिस्र, मेसोपोटामिया, चीन आदि का विकास नदियों के तटों पर हुआ। जिस प्रकार नील नदी को मिस्र की, दजला–फरात को मेसोपोटामिया की, यांग्टीसीक्याग को चीन की सभ्यता की जन्मदात्री माना गया है, ठीक उसी प्रकार भारतीय उपमहाद्वीप में सिन्धु नदी के तट पर विश्व की प्रथम नगरीय सभ्यता का आविर्भाव हुआ। सिन्धु सभ्यता को अन्य अनेक नामों से जाना जाता है। सर्वप्रथम हड़प्पा पुरास्थल से प्रमाण प्राप्त होने के कारण हड़प्पा सभ्यता, सिन्धु नदी के तट पर स्थित होने के फलस्वरूप सिन्धु सभ्यता, सर्वप्रथम काँसे का प्रयोग करने के कारण कांस्ययुगीन सभ्यता व सिन्धु तथा सरस्वती नदी का केन्द्र होने के कारण सिन्धु–सरस्वती सभ्यता कहा जाता है। सिन्धु सभ्यता को दक्षिण एशिया की प्रथम नगरीय सभ्यता होने का गौरव प्राप्त है। 1826 ई0 में चार्ल्स मेसन को हड़प्पा नामक स्थल से कुछ ध्यानाकर्शित करने वाले पुरावषेष प्राप्त हुए। तत्पश्चात् 1853 ई0 व 1856 ई0 में सर एलेक्जेण्डर कनिंघम द्वारा हड़प्पा का सर्वेक्षण किया गया परन्तु इसकी वास्तविक पहचान 1921 ई0 में हुयी, जब जॉन मॉर्शल के निर्देशन में दयाराम साहनी द्वारा हड़प्पा के टीलों का सर्वेक्षण व उत्खनन किया गया। तत्पश्चात् सर्वेक्षण व उत्खनन के फलस्वरूप सिन्धु सभ्यता से सम्बन्धित विविध पक्षों का ज्ञान प्राप्त होता रहा और आज भी नित नवीन पुरास्थल प्रकाश में आ रहे हैं।

दयाराम साहनी के पश्चात् 1923 ई0 में डॉ0 राखलदास बनर्जी द्वारा सिन्ध प्राप्त के लरकाना अवस्थित मोहनजोदड़ो नामक पुरास्थल का उत्खनन किया, जिससे सिन्धु सभ्यता के महत्व को स्थापित करने में सहायता प्राप्त हुयी। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य पुरातत्वविदों यथा– अमलानन्द घोष, के0 एन0 दीक्षित, एन0 जी0 मजुमदार, अर्नेस्ट मैके, ऑरेल स्टाइन, एस0 आर0 राव, जे0 पी0 जोशी, बी0 बी0 लाल, बी0 के0 थापर, आर0 एस0 बिष्ट व वसन्द शिन्दे आदि ने सिन्धु सभ्यता से सम्बन्धित पहलुओं को निरन्तर उजागर किया।

सिन्धु सभ्यता का सिन्धु व उसकी सहायक नदियों की उपत्यकाओं के अतिरिक्त गंगा–यमुना दोआब में भी विस्तार देखने को मिलता है। इस सभ्यता का विस्तार भारत, पाकिस्तान व अफगानिस्तान तक था। यह सभ्यता 5 लाख वर्गमील में विस्तृत थी। सिन्धु सभ्यता का विस्तार उत्तर में माण्डा (कश्मीर) से दक्षिण में दायमाबाद (महाराष्ट्र) तक, पूर्व में आलमगीरपुर (उत्तर प्रदेश) से पश्चिम में सुन्कागेडोर (बलूचिस्तान) तक था।

माण्डा (चिनाब नदी)

उ0

सुन्कागेन्डोर (दाश्त नदी) प0 —— पू0 आलमगीरपुर (हिण्डन नदी)

द0

दायमाबाद (प्रवरा नदी)

अफगानिस्तान में सैन्धव सभ्यता से सम्बन्धित दो पुरास्थल शोर्तुघई व मुण्डीगाक हैं। पाकिस्तान में सैन्धव सभ्यता से सम्बन्धित प्रमुख पुरास्थल सुत्कागेनडोर, बालाकोट, हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, चन्हुदड़ो कोटदीजी, आमरी, डाबरकोट, गुमला, जलीलपुर, अलीमुराद डेरा इस्माइल खाँ आदि हैं। भारत में राजस्थान, गुजरात, पंजाब, हरियाणा, जम्मू–कश्मीर, उत्तर प्रदेश व महाराष्ट्र में सैन्धव सभ्यता से सम्बन्धित पुरास्थल प्रकाश में आए हैं। इनमें सैन्धव सभ्यता से सम्बन्धित पुरास्थलों की सर्वाधिक संख्या गुजरात राज्य में है। भारत में सिन्धु सभ्यता के प्रमुख पुरास्थल कालीबंगा, धौलावीरा, राखीगढ़ी, कुणाल, बणावली, बालाथल, मिताथल, रोपड़, कोटला निहंग खान, बाड़ा, संघोल, रंगपुर, डाबरकोट, लोथल, रोजदी, कुन्तसी, नागेश्वर, दायमाबाद, आलमगीरपुर, माण्डी आदि हैं। मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, चन्हुदड़ो, लोथल, कालीबंगा, धौलावीरा व बणावली को पुरातत्वविद नगरों की संज्ञा देते हैं।

सिन्धु सभ्यता की सर्वप्रमुख विषेषता इसकी नगर–नियोजन प्रणाली थी। सैन्धव नगरों में एक दूसरे को समकोण पर काटते हुए सड़कों का जाल बिछा हुआ था। सफाई व प्रवाह प्रणाली की व्यवस्था इस सभ्यता की विशिष्टता है। उत्खनन से प्राप्त वृहद् स्नानागार (मोहनजोदड़ो), अन्नागार (मोहनजोदड़ो, हड़प्पा), गोदीवाड़ा (लोथल), स्टेडियम (जूना कुरान) आदि सैन्धव सभ्यतावासियों के अप्रतिम भवन निर्माण कला का अनुपम उदाहरण हैं। सैन्धव सभ्यता अपने व्यापार–वाणिज्य, धर्म तथा कला के लिए भी विश्व–विख्यात् रही है। इन सभी पहलुओं का आगे विस्तारपूर्वक वर्णन किया जाएगा।

1.1.उद्देश्य

इस इकाई से हमारा उद्देश्य सिन्धु सभ्यता व इससे सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं को उद्घाटित करना है। इस इकाई के अन्तर्गत सिन्धु सभ्यता की उत्पत्ति, विकास, विषेषताओं, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक अवस्थिति, कला व

स्थापत्य आदि का विस्तारपूर्वक विश्लेषण करना है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपको यह स्पष्ट हो जाएगा कि–

- सिन्धु सभ्यता की उत्पत्ति व विकास में कौन–कौन से कारक उत्तरदायी थे। ?
- क्या सिन्धु सभ्यता का विकास बलूचिस्तान की ग्राम्य संस्कृतियों से हुआ। ?
- सिन्धु सभ्यता की सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त होगा।
- सैन्धव सभ्यता की प्रमुख विषेषताएँ क्या थीं। ?
- सिन्धु सभ्यता का पतन हुआ अथवा रूप परिवर्तन।

1.2.उत्पत्ति

सिन्धु सभ्यता की उत्पत्ति प्रारम्भ से ही विवादास्पद रही है। जिसका कारण साहित्यिक साक्ष्यों का अभाव व सैन्धव लिपि का सही उद्वाचन न हो पाना माना जा सकता है। सैन्धव सभ्यता की उत्पत्ति/उद्‌भव के सन्दर्भ में पुरातत्वविदों व इतिहासकारों द्वारा समय–समय पर विभिन्न मत दिए गए, जिन्हें हम दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं–

1.2.1 विदेशी उत्पत्ति का मत

सिन्धु सभ्यता के विदेशी उत्पत्ति के मत के प्रतिपादकों व समर्थकों में हम वी0 गॉर्डन चाइल्ड, जॉन मॉर्शल, एम0 व्हीलर, डी0 एच0 गॉर्डन, क्रेमर व डी0 डी0 कोसाम्बी, एच0 डी0 संकालिया की गणना कर सकते हैं। उपरोक्त वर्णित विद्वानों ने सिन्धु सभ्यता के उद्‌भव का कारण प्रवर्जन/सांस्कृतिक विसरण (Migration/Cultural Diffusion) माना है। सैन्धव सभ्यता की विदेशी उत्पत्ति के पीछे मूल अवधारणा यह थी कि दूसरे देशों यथा मेसोपोटामिया, मिस्र की सभ्यता के लोगों ने सिन्धु सभ्यता का निर्माण किया। ऐसा माना जाता रहा है कि सभ्यता का विचार सर्वप्रथम मेसोपोटामिया में उद्‌भासित हुआ था, अतः इस सभ्यता को हम सैन्धव सभ्यता की प्रेरक मान सकते हैं। मार्टीमर व्हीलर के कथनानुसार "विचार प्रबल होते हैं और उचित परिस्थितियों में बहुत शीघ्र फैलते हैं" अतः मार्टीमर व्हीलर सैन्धव सभ्यता की भवन निर्माण पद्धति का आधार मेसोपोटामिया की सभ्यता को मानते हैं।

डी0एच0 गॉर्डन अपनी पुस्तक 'The Prehistoric Background of Indian

Culture' में सिन्धु सभ्यता की उत्पत्ति से सम्बन्धित विभिन्न मतों पर प्रकाश डालते हुए कहा कि सैन्धव सभ्यता के विकसित नगरों का विकास हड़प्पा के ग्रामों से होना असम्भव है। निःसन्देह ही मेसोपोटामिया की सभ्यता से ही सैन्धव सभ्यता की उत्पत्ति हुयी है। अर्नेस्ट मैके ने सिन्धु सभ्यता के उदय का कारण सुमेरियन सभ्यता के निवासियों का प्रव्रजन माना है। एच0डी0 संकालिया बलूचिस्तान क्षेत्र में स्थित कुछ पुरास्थलों से प्रतिवेदित चबूतरों सदृश संरचनाओं की साम्यता मेसोपोटामिया के जिगुरत से स्थापित करते हुए, सिन्धु सभ्यता पर मेसोपोटामियन सभ्यता का प्रभाव मानते हैं।

ध्यातव्य है कि सिन्धु सभ्यता व मेसोपोटामिया की सभ्यताओं में आधारभूत अन्तर विद्यमान है। यदि मेसोपोटामिया की सभ्यता को सैन्धव सभ्यता की जननी माना जाए तो मेसोपोटामिया में सैन्धव सभ्यता सदृश नगर नियोजन प्रणाली का अभाव क्यों हैं? मेसोपोटामिया की सभ्यता में जिगुरत का स्थान महत्त्वपूर्ण है, परन्तु सिन्धु सभ्यता में ऐसे धार्मिक भवन पूर्णतः अनुपस्थित हैं। मेसोपोटामिया व मिस्र में मृतक संस्कार हेतु भव्य कब्रों का निर्माण किया जाता है, इसके ठीक विपरीत सिन्धु सभ्यता में साधारण कब्रें प्राप्त होती हैं। दोनों ही सभ्यताओं की लिपियों में पर्याप्त वैभिन्य है। अतः इस स्थिति में सिन्धु सभ्यता के उदय का कारण मेसोपोटामिया निवासियों का प्रव्रजन नहीं माना जा सकता है।

1.2.2 देशज/स्वदेशी उत्पत्ति

सिन्धु सभ्यता के स्वदेशी उत्पत्ति के समर्थकों में अल्चिन दम्पत्ति, डब्ल्यू0 एफ0 फेयरसर्विस, जॉर्ज एफ0 डेल्स, रफीक मुगल व स्टुअर्ट पिग्गट, अमलानन्द घोष, डी0 पी0 अग्रवाल, रोमिला थापर, बी0 बी0 लाल को रखा जा सकता है। स्वदेशी उत्पत्ति के मत के समर्थकों का मानना है कि सिन्धु सभ्यता आयातित नहीं है, इसकी उत्पत्ति भारत में ही हुयी है। मेसोपोटामिया व सिन्धु सभ्यता में साम्यता का कारण व्यापार–वाणिज्य है न कि प्रव्रजन, परन्तु इसके अन्तर्गत भी विद्वानों की अलग–अलग अवधारणा है। अमलानन्द घोष, अल्चिन, फेयरसर्विस व डी0पी0 अग्रवाल प्राक्हड़प्पा संस्कृतियों के क्रमिक विकास को सिन्धु सभ्यता के उद्भव का कारक मानते हैं। अमलानन्द घोष का मत था कि "भारतीय उपमहाद्वीप के निवासियों ने जिनका मस्तिष्क ग्रहणशील था, सिन्धु सभ्यता के नगरों का निर्माण किया।"

आज से एक दशक पूर्व तक सैन्धव सभ्यता के उद्भव के सन्दर्भ में वैदिक आर्यों का मत अत्यन्त प्रचलित था। इस मत का प्रतिपादक बी0 बी0

लाल को माना जाता है। इस मत के समर्थक प्रो0 टी0 एन0 रामचन्द्रन, के0 एन0 शास्त्री, एस0 आर0 राव व ए0 डी0 पुसाल्कर थे। सैन्धव सभ्यता के उद्भव के सन्दर्भ में इतिहासकारों का एक वर्ग द्रविड़ संस्कृति को सिन्धु सभ्यता की जननी मानता है। सुनीति कुमार चटर्जी के अनुसार द्रविड़ों की भाषा ब्राहुई थी, जो बलूचिस्तान क्षेत्र में बोली जाती थी व इस क्षेत्र में सैन्धव पुरास्थल भी प्रतिवेदित होते हैं। इसके अतिरिक्त धार्मिक गतिविधियों के आधार पर (लिंग पूजा, मातृ देवी पूजा, पाषाण पूजा) पर भी विद्वान् सैन्धव सभ्यता की उत्पत्ति का श्रेय द्रविड़ संस्कृति को देते हैं। परन्तु द्रविड़ संस्कृति में उत्कृष्ट नगरों की अनुपस्थिति इस मत को निराधार सिद्ध करती है।

जॉर्ज एफ0 डेल्स के अनुसार "सिन्धु सभ्यता की उत्पत्ति इस क्षेत्र की मूलतः स्थानीय परम्पराओं की उपज थी। आमरी, कोटदीजी, कालीबंगा, मेहरगढ़ आदि पुरास्थलों से प्राक्सैन्धव चरण से ही सैन्धव संस्कृति के तत्व दिखायी देने लगते हैं।" अमलानन्द घोष सैन्धव सभ्यता की उत्पत्ति राजस्थान की सोथी संस्कृति से मानते हैं, जिसका समर्थन जे0 पी0 जोशी भी करते हैं। यदि हम दोनों संस्कृतियों में समानता देखें तो मृद्भाण्डों पर मछली व पीपल के पत्ते का चित्रण सोथी व सैन्धव दोनों ही के पात्रों पर प्रमुखता से मिलता है। अलंकरण से अतिरिक्त कुछ पात्र प्रकारों में भी समानता देखने को मिलती है।

इस प्रकार सैन्धव सभ्यता की उत्पत्ति के सन्दर्भ में देशज उत्पत्ति का मत अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है। इस सन्दर्भ में हो रहे नित नवीन शोध इस मत को और भी प्रबल बनाते हैं। यदि हम सैन्धव कालीन चित्राक्षर लिपि का उद्वाचन कर पाए तो सम्भव है कि किसी निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं।

1.3.सामाजिक स्थिति

सिन्धु सभ्यताकालीन सामाजिक स्थिति के विषय में हमारा ज्ञान अत्यल्प है, क्योंकि लिखित साक्ष्यों के अभाव में हमें पुरावषेषों पर ही निर्भर होना पड़ता है व इस विषय के सन्दर्भ में पुरातात्विक साक्ष्यों का अभाव है। पुरातात्विक साक्ष्यों से यह ज्ञात होता है कि सैन्धव समाज स्तरीकरण पर आधारित था। यह अनेक वर्गों में विभक्त था। ध्यातव्य है कि अधिकांश सैन्धव नगर दो भागों यथा दुर्ग क्षेत्र व निचला नगर में विभाजित थे। धौलावीरा नगर अपवादस्वरूप तीन भागों दुर्ग, मध्य नगर व निचले नगर में विभक्त था। दुर्ग क्षेत्र में निःसन्देह ही शासक/सम्पन्न वर्ग के लोग निवास करते थे व निचला नगर व्यापारी, शिल्पी, कृषक, वर्धकी, स्वर्णकार, मनके बनाने वाले, जुलाहे भी सैन्धवकालीन समाज के प्रमुख वर्गों के निवास के लिए था।

सैन्धव सभ्यताकालीन पुरास्थलों में प्रतिवेदित भवनों के आकार–प्रकार व संरचना के आधार पर विद्वानों का मानना है कि सिन्धु सभ्यता ने जाति प्रथा का प्रचलन था। मार्टीमर व्हीलर व गॉर्डन चाइल्ड दास प्रथा के प्रचलन का अनुमान लगाते हैं, परन्तु एस0 आर0 राव इस मत से असहमत हैं। उनके अनुसार समाज में सभी मिल–जुलकर रहते थे। मोहनजोदड़ों से कुम्हारों की बस्ती, नागेश्वर व बालाकोट में शंख उद्योग, बणावली से व्यापारी व आभूषण निर्माता के भवन तथा कुणाल व नौसारी से प्राप्त मुहरों से व्यापारी वर्ग के अस्तित्व का ज्ञान होता है। इस विभाजन का आधार आर्थिक घटक थे अथवा सामाजिक यह बता पाना कठिन है। कालीबंगा के उत्खनन से यह ज्ञात होता है कि यहाँ पुरोहित का निवास स्थान दुर्ग के ऊपरी हिस्से में था व निचले हिस्से में वह अनुष्ठान करते थे, क्योंकि कालीबंगा में दुर्ग के निचले भाग में 6 यज्ञ वेदिकाएँ प्राप्त हुई हैं।

सिन्धु सभ्यता से सम्बन्धित पुरास्थलों से बहुसंख्यक मातृदेवी की मृण्मूर्तियाँ प्राप्त होती रही हैं, जिनके आधार पर कुछ इतिहासकार सिन्धु सभ्यताकालीन समाज को मातृसत्तात्मक समाज मानते हैं, परन्तु मृण्मूर्तियों की प्राप्ति के आधार पर किसी समाज को मातृसत्तात्मक मानना तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता है। मातृसत्तात्मक समाज के आलोक में यह कहा जा सकता है कि सैन्धव समाज में महिलाओं की दशा सम्मानजनक थी।

सिन्धु सभ्यता के निवासी लाल–काले (Black Painted Red Ware) मृद्भाण्डों का प्रयोग करते थे। अधिकांश मदृभण्ड चाक निर्मित हैं। साधार तश्तरी, छिद्रित पात्र, थाली, कटोरे, बेलनाकार पात्र आदि सिन्धु सभ्यता के प्रमुख पात्र–प्रकार हैं। सैन्धव सभ्यता में पात्र दो प्रकार के प्राप्त होते हैं– (1) सादे, (2) अलंकृत। अलंकरण काले, द्विरंगी (Bichrome) व बहुरंगी (Polycrome) बनाए गए हैं। अलंकरण ज्यामितीय व प्राकृतिक दोनों प्रकार के प्राप्त होते हैं। सिन्धु सभ्यता के निवासी शाकाहारी व माँसाहारी दोनों प्रकार का भोजन ग्रहण करते थे। इनकी भोजन पद्धति का अनुमान उत्खनन में प्राप्त वनस्पति अवषेषों व अस्थि अवषेषों से लगाया जा सकता है।

सिन्धु सभ्यता के निवासी ऊनी व सूती दोनों प्रकार के वस्त्र पहनते थे। मोहनजोदड़ो व हड़प्पा के उत्खनन से सूती वस्त्रों के प्रमाण प्राप्त होते हैं। उत्खनन से प्रतिवेदित ताँबे की सुई वस्त्रों की सिलाई की ओर ध्यानाकर्शित करती है। सिन्धु सभ्यतावासियों की वेशभूषा का अनुमान पुरास्थलों से प्राप्त मृण्मूर्तियों व प्रस्तर मूर्तियों व अन्य पुरावषेषों से लगाया जा सकता है। मोहनजोदड़ो से चाँदी के पात्र पर मजीठिया लाल रंग का सूती वस्त्र का टुकड़ा

हड़प्पा से काँचली मिट्टी (Fience) के पात्र से सूती वस्त्र का साक्ष्य प्राप्त होता है। साधारणतः स्त्रियाँ कमर के ऊपर नग्न रहती थीं तथा कमर से घुटने तक वस्त्र धारण करती थीं। मोहनजोदड़ो से प्राप्त पुरोहित की प्रस्तर मूर्ति के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पुरुष वस्त्र कन्धे से आवक्ष तक ढकते थे।

सैन्धवकालीन स्त्री व पुरुष दोनों को ही आभूषण बहुत प्रिय थे। हड़प्पा में उत्खनन से एक श्रृंगारदान प्राप्त हुआ है, जिसमें पियरसर व चिमटी व उसके साथ ही ताँबे की अण्डाकार चूड़ियाँ भी मिली हैं। सैन्धव सभ्यता के प्रत्येक पुरास्थल से अर्द्ध मूल्यवान प्रस्तर के मनकों की प्राप्ति होती है। निःसन्देह ही इन मनकों का प्रयोग आभूषण की भाँति किया जाता था। मुजफ्फरनगर जनपद के माण्डी पुरास्थल से प्राप्त स्वर्ण आभूषण सिन्धु सभ्यता निवासियों के आभूषण प्रेम को भलीभाँति प्रकट करते हैं। सैन्धवकालीन पुरास्थलों से चूड़ियाँ, बालपिन, मनके, अंजन–शलाका, त्रिदलीय लॉकेटयुक्त हार व अन्य आभूषण तथा प्रसाधन सामग्रियाँ प्राप्त हुयी हैं। नौशारो व मेहरगढ़ पुरास्थलों से प्रतिवेदित मृण्मूर्तियों की माँग में सिन्दुर के प्रमाण मिलते हैं। मृण्मूर्तियों में केश सज्जा को देखकर तत्कालीन प्रचलित केश–सज्जा में रुचि का अनुमान लगाया जा सकता है। आभूषणों का निर्माण बहुमूल्य पत्थरों, सोने, चाँदी, माणिक्य, हाथी दाँत, शंख, सीप व मिट्टी से किया जाता था। हड़प्पा से प्राप्त छः लड़ियों वाली स्वर्ण हार अप्रतिम है।

सिन्धु सभ्यता के निवासी मनोरंजन प्रेमी थी। पाँसे का खेल व नृत्य, आमोद–प्रमोद उनके प्रमुख साधन माने जाते थे। हड़प्पा व मोहनजोदड़ो से पासे के प्रमाण मिले हैं। मिट्टी, शंख व सिलखड़ी से निर्मित शतरंज जैसी गोटियाँ भी उत्खनन से प्राप्त हुयी हैं। लोथल से खेलने के दो बोर्ड एक मिट्टी व दूसरा ईंट से निर्मित उत्खनन में मिले हैं। लोथल पुरास्थल से ही भेड़ व बैल के सिर वाली मुहरें मिली हैं, जिनका प्रयोग शतरंज जैसे खेल के लिए किया जाता रहा होगा।

सिन्धु सभ्यतावासियों की रुचि आखेट में भी थी, जिसका प्रमाण मुहरों पर अंकित अनेक दृश्यों से प्राप्त होता है। एक मुहर पर तीर से हिरण का आखेट करते हुए दर्शाया गया है। सैन्धव पुरास्थल से बहुसंख्यक मछली मारने के काँटे, मछली सेवने को प्रदर्शित करते हैं। हड़प्पा व मोहनजोदड़ो पुरास्थलों से टेराकोटा के मुखौटे प्राप्त हुए हैं। गुजरात के भुज क्षेत्र में स्थित जूनी–कुरान पुरास्थल से प्राक स्टेडियम के साक्ष्य मिले हैं। सैन्धवकालीन पुरास्थलों से मिट्टी की बनी खिलौना गाड़ी व अनेक पहिए प्राप्त हुए हैं। नृत्य व गायन भी

मनोरंजन का साधन थे, जिसकी पुष्टि कांस्य नर्तकी की प्रतिमा व मुहरों से होती है।

1.4.आर्थिक स्थिति

सैन्धव सभ्यता विश्व की प्राचीनतम नगरीय सभ्यता थी व किसी भी सभ्यता के नगरीय होने में उसकी अर्थव्यवस्था का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। सिन्धु सभ्यता की अर्थव्यवस्था, कृषि, उद्योग–धन्धों व पशुपालन पर आधारित थी। सैन्धव सभ्यताकालीन आर्थिक स्थिति को हम कृषि, पशुपालन, उद्योग–धन्धे तथा व्यापार–वाणिज्य के अन्तर्गत बेहतर समझ सकते हैं। सिन्धु सभ्यताकालीन आर्थिक स्थिति का ज्ञान पुरास्थलों के उत्खनन व सर्वेक्षण से प्राप्त पुरावषेषों व पुरातात्विक अवषेषों से होता है।

1.4.1 कृषि–

सिन्धु सभ्यतावासियों की अर्थव्यवस्था का आधार कृषि थी। इस सभ्यता की उत्पत्ति व विकास अत्यन्त उर्वर भूमि में हुआ। सैन्धव क्षेत्र सिन्धु व उसकी सहायक चेनाब, झेलम, व्यास, रावी, सतलज व घघ्घर आदि सदावाहिनी नदियों के द्वारा सिंचित होने के कारण अत्यन्त उपजाऊ था। गेहूँ और जौ सिन्धु सभ्यता की मुख्य उपज थी। धान की कृषि के अप्रत्यक्ष प्रमाण हमें गुजरात में स्थित पुरास्थलों यथा रंगपुर व लोथल से प्राप्त होते हैं। सिन्धु सभ्यता के निवासी मोटे अनाजों की छः किस्मों से परिचित थे– (1) कोदो, (2) रागी, (3) ज्वार, (4) मटर, (5) सांवा, (6) फलियाँ। रोजदी से बाजरे की छः किस्मों का ज्ञान प्राप्त होता है। हड़प्पा पुरास्थल से मटर व तिल की कृषि के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। कालीबंगा में जुते हुए खेत का साक्ष्य एक साथ दो फसलों गेहूँ व सरसों की कृषि का प्रमाण मिलता है। लहसुन का साक्ष्य बालू पुरास्थल से प्राप्त होता है। इनके अतिरिक्त सैन्धव सभ्यतावासी कपास, नारियल, केला, अनार, खजूर, नींबू, तरबूज आदि की भी खेती रते थे। यह ईख की कृषि से अनभिज्ञ थे।

सैन्धव सभ्यता में कृषि कार्य हेतु सम्भवतः लकड़ी के हलों का प्रयोग किया जाता रहा होगा, क्योंकि उत्खनन में किसी भी पुरास्थल से हल की प्राप्ति नहीं होती है। बणावली पुरास्थल से मिट्टी के खिलौना हल (TC Plough) का प्रमाण मिला है। मोहनजोदड़ो से भी मिट्टी के मॉडल हल प्राप्त हुए हैं। प्रस्तर व ताँबे के उपकरणों द्वारा फसल की कटायी की जाती थी। लोथल पुरास्थल से वृत्ताकार चक्की के दो पाट उत्खनन में मिले हैं। सामान्यतः प्रत्येक पुरास्थल से ओखली व सिल–बट्टे का प्रमाण मिलता है।

पुरातत्वविदों का मत था कि सिन्धु सभ्यतावासी सिंचाई के लिए नहरों का प्रयोग नहीं करते थे, परन्तु शोर्तघई पुरास्थल इसका अपवाद है। सिंचाई का मूलभूत स्रोत वर्षा का जल था। इसके अतिरिक्त जलाशयों व कुओं के माध्यम से भी सिंचाई की जाती थी। सिन्धु सभ्यता की जल प्रबन्धन व्यवस्था का अनुमान धौलावीरा पुरास्थल के शैलकृत जलकुण्डों से लगाया जा सकता है। कुओं के साक्ष्य प्रत्येक सैन्धव पुरास्थल से मिलते हैं।

सिन्धु सभ्यतावासी कृषक भी थे। यह आवष्यकता से अधिक अन्न उत्पादन में सक्षम थे, जिसकी पुष्टि विशाल अन्नागारों के साक्ष्यों से होती है। वृहद अन्नागारों के प्रमाण मोहनजोदड़ो व हड़प्पा पुराथलों से प्राप्त हुए हैं।

1.4.2. पशुपालन–

सैन्धव सभ्यतावासियों की अर्थव्यवस्था का एक स्रोत पशुपालन भी था। तत्कालीन पशुपालन का ज्ञान उत्खनन में प्राप्त पशु अवषेषों, चित्रित मृदभाण्डों, मुहरों व मुद्रांकनों से प्राप्त होता है। गाय, कूबड़दार वृषभ, बकरी, हिरण व ऊँट इनके प्रमुख पशु थे। नेसदी (गुजरात) पुरास्थल पशुपालकों का केन्द्र माना जाता था। इनके अतिरिक्त भेड़, भैंस कुत्ता, बिल्ली, सुअर, गधा, हाथी, गैण्डा व घोड़ा (सुरकोटदा) के प्रमाण भी प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त होते हैं। सिन्धु सभ्यतावासी हाथी से परिचित थे। इसलिए हाथी का अंकन मुहरों पर मिलता है। इसके साथ ही साथ हाथी दाँत से निर्मित अनेक पुरावषेष पुरास्थलों से प्राप्त हुए हैं। मुर्गा, तोता व बत्तख को पाले जाने के भी साक्ष्य कतिपय पुरास्थलों से मिलते हैं

1.4.3. उद्योग–धन्धे–

कृषि व पशुपालन के अतिरिक्त सिन्धु सभ्यताकालीन पुरास्थलों से विभिन्न उद्योग–धन्धों के प्रचलित होने के प्रमाण मिलते हैं। सैन्धववासियों ने धातु शिल्प उद्योग, सूती वस्त्र उद्योग, मृदभाण्ड निर्माण उद्योग, शंख उद्योग आदि उद्योगों का विकास किया था। सैन्धव पुरास्थलों के उत्खनन से सुई, तकली आदि प्रतिवेदित हुए हैं। मोहनजोदड़ो से चाँदी के पात्र पर मजीठिया लाल रंग के कपड़े का टुकड़ा व ताँबे के दो उपकरणों में लिपटा सूती कपड़ा व धागा, विकसित सूती वस्त्र उद्योग को दर्शाते हैं।

सुती वस्त्रोद्योग के प्रमाण मोहनजोदड़ो के अतिरिक्त कालीबंगा व लोथल पुरास्थलों से भी प्राप्त होते हैं। कांचली मिट्टी से निर्मित दो व तीन छेद वाले तकुए सैन्धव पुरास्थलों से मिले हैं। सैन्धव पुरास्थलों से कपास (Flax) की खेती के साक्ष्य भी सूती वस्त्रोद्योग को इंगित करते हैं। कुछ पुरातात्विक साक्ष्यों के

आधार पर ऊनी वस्त्रों के निर्माण का भी ज्ञान प्राप्त होता है। आलमगीरपुर से एक पात्र से बुने हुए वस्त्र के चिन्ह मिलते हैं। मोहनजोदड़ो से प्राप्त पुरोहित की प्रसिद्ध प्रस्तर मूर्ति से वस्त्रों पर कढ़ाई किए जाने का भी अनुमान लगाया जा सकता है।

ईंट निर्माण उद्योग की गणना भी सैन्धवकालीन प्रमुख उद्योगों के रूप में की जा सकती है। सैन्धव पुरास्थल से प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि ईंटों का निर्माण नगर से बाहर किया जाता रहा होगा व इसे समतल स्थान पर सुखाया जाता था। ईंट निर्माण के भट्ठे मोहनजोदड़ो से प्राप्त हुए हैं। मृद्भाण्ड निर्माण भी सैन्धववासियों का एक प्रमुख शिल्प था। हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, नौशारो व चन्हुदड़ो से मृदभाण्ड निर्माण में प्रयुक्त आँवों के साक्ष्य मिले हैं।

सिन्धु सभ्यतावासी धातु शिल्प में पारंगत थे। वह ताँबे व टिन को मिलाकर काँसा निर्माण की कला से भलीभाँति परिचित थे। ध्यातव्य है कि इसी कारण सिन्धु सभ्यता को कांस्यकालीन सभ्यता भी कहा जाता है। सैन्धव पुरास्थलों से ताम्र व कांस्य उपकरण उत्खनन में प्राप्त होते रहे हैं। सिन्धु सभ्यतावासियों को सोना, चाँदी, ताँबा, कांसा व सीसा धातुओं का ज्ञान था। वह धातुओं के बर्तन के निर्माण में पारंगत थे। सिन्धु सभ्यतावासी हाथी दाँत, शंख व सीप में भी उपकरणों व आभूषणों का निर्माण करते थे।

सिन्धु सभ्यता के कुछ नगर अपने विशिष्ट शिल्प उद्योग के लिए विख्यात थे। चन्हुदड़ो व लोथल मनका निर्माण उद्योग के लिए, बालाकोट व लोथल सीप उद्योग के लिए, चन्हुदड़ो सिलखड़ी व चर्ट के बटखरों के लिए प्रसिद्ध थे।

व्यापार व वाणिज्य–

सैन्धव निवासी अपने समृद्ध व्यापार–वाणिज्य के लिए विख्यात थे। सैन्धवकालीन आन्तरिक व वाह्य व्यापार अत्यन्त समृद्ध था। व्यापार के लिए स्थल व जल दोनों ही मार्गों का प्रयोग किया जाता था। सैन्धव क्षेत्र में कच्चे माल का अभाव था, जिसे वह आस–पास के क्षेत्रों से प्राप्त करते थे। सैन्धवकालीन वाणिज्य–व्यापार की पुष्टि अन्नागारों, मुहरों, एकरूप लिपि और मानकीय कृत माप–तौलों से होती है।

लैम्बर्ग के अनुसार, बहरीन सिन्धु सभ्यता व मेसोपोटामिया के मध्य व्यापार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता था। सैन्धववासी कच्चे माल की प्राप्ति बलूचिस्तान, राजस्थान, अफगानिस्तान, ईरान, मैसूर, खुरासान, फारस की खाड़ी,

हिमालय आदि स्थानों से करते थे। भगतराव, बालाकोट, सुत्काकोह, सुत्कागेंडोर, कुन्तसी, लोथल, प्रभासपाटन व मेघम सैन्धवकालीन प्रमुख बन्दरगाह थे। सुत्कागेंडोर पुरास्थल को 'हड़प्पा के व्यापार का चौराहा' कहा जाता था। नाव व बैलगाड़ियाँ परिवहन के प्रमुख साधन थे। उत्खनन में प्राप्त खिलौना गाड़ियाँ अप्रत्यक्ष रूप से परिवहन का ज्ञान प्रदान करती है। मोहनजोदडो से प्राप्त एक मुहर पर नाव का अंकन व लोथल से प्राप्त मिट्टी की खिलौना नाव से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि मस्तूलदार नावों का उपयोग आन्तरिक व विदेशी व्यापार हेतु किया जाता था।

सैन्धवकालीन लोगों ने मध्य एशिया, फारस की खाड़ी, ईरान, बहरीन द्वीप, मेसोपोटामिया, मिस्र, क्रीट आदि देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किए। उत्तरी–पूर्वी अफगानिस्तान में स्थित पुरास्थल शोर्तुघई से उत्खनन में सैन्धवकालीन वाणिज्यिक बस्ती में प्रमाण मिलते हैं। मेसोपोटामिया के विभिन्न स्थलों यथा– सुमेर, उर, तेल, अस्मर, उम्मा, लगश, किश, निप्पुर, असुर से सिन्धु सभ्यता से सम्बन्धित वस्तुएँ प्राप्त होती हैं।

आयात–

सिन्धु–सरस्वती सभ्यतावासी अनेक क्षेत्रों से विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का आयात करते थे। सिन्धु सभ्यता निवासी बलुचिस्तान से बिटुमिन/डामर, अलबास्टर व सेलखड़ी का आयात करते थे। चाँदी का मुख्य स्रोत अफगानिस्तान व ईरान था। इसके अतिरिक्त चाँदी का आयात राजस्थान व बलूचिस्तान से भी किया जाता था। ताँबा राजस्थान के खेतड़ी (आर्सेनिक व निकिल मिश्रित), गणेश्वर तथा ओमान (आर्सेनिक रहित) से आयात किया जाता था। टिन अफगानिस्तान व ईरान से, सीसा ईरान, अफगानिस्तान, राजस्थान से; लाजवर्द/वैदुर्यमणि/लैपिस लाजुली बदख्शाँ (उत्तरी अफगानिस्तान से); फीरोजा खुरासान से, हेमेटाइट राजपूताना से, गोमेद व मूँगा सौराष्ट्र व पश्चिमी भारत से, देवदार हिमालय से, फ्लिंट व चर्ट सक्कर रोहरी (सन्धि) से आयात किया जाता था। हड़प्पा से खानेदार मनके प्राप्त हुए हैं जो मेसोपोटामिया से आयातित प्रतीत होते हैं। मोहनजोदड़ो से व लोथल पुरास्थल से कुछ ऐसी मुहरें प्राप्त हुई हैं, जिनका सम्बन्ध बहरीन व फारस की खाड़ी से है। पुरातत्वविदों का मत है कि बहरीन के व्यापारी सिन्धु सभ्यता व मेसोपोटामिया के साथ व्यापार में मध्यस्थ की भूमिका निभाते थे।

शिरीन रत्नागार का मत है कि सिन्धु सभ्यता का वाह्य व्यापार अधिकतम जल मार्गों द्वारा किया जाता था। क्रीट से कुछ ऐसे भित्ति चित्र व दृश्यों का अंकन मिलता है, जिनकी सादृश्यता मोहनजोदड़ो से प्राप्त पुरावषेषों से स्थापित

की जा सकती है। वस्तु विनिमय व्यापार का प्रमुख माध्यम था।

1.5. धर्म

सिन्धु सभ्यता के पुरातत्वों से प्राप्त भौतिक अवषेषों के आधार पर सैन्धवकालीन धर्म के कर्मकाण्डीय व्यावहारिक पहलुओं पर प्रकाश पड़ता है। सैन्धव सभ्यताकालीन धार्मिक जीवन को जानने का प्रमुख साधन मृण्मूर्तियाँ, मुहरें, मुद्रांकन, विशिष्ट प्रकार के भवन व अन्य चिन्ह हैं। सर्वप्रथम सर जॉन मॉर्शल द्वारा सैन्धवकालीन धर्म की विशिष्टताओं को उद्‌घाटित करने का प्रयास किया गया। सैन्धवकालीन धर्म को तीन भागों यथा– मातृदेवी उपासना, पुरुष देवता की उपासना व लौकिक धर्म में विभक्त कर भलीभाँति समझ सकते हैं।

मातृदेवी उपासना–

सैन्धवकालीन पुरास्थलों से प्राप्त मृण्मूर्तियों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि इनके जीवन में मातृदेवी उपासना का स्थान प्रमुख था। सर जॉन मॉर्शल के अनुसार सिन्धुवासियों के जीवन में मातृपूजा का स्थान अत्यन्त विशिष्ट था। गुजरात व राजस्थान क्षेत्र में स्थित पुरास्थलों को छोड़कर अन्य सभी पुरास्थलों से मातृदेवी की मृण्मूर्तियाँ बहुतायत में प्राप्त होती हैं। मातृदेवी की मूर्तियाँ प्रायः पंखाकार शिरोभूषा, कई लड़ियों वाले हार, चूड़ियों व कमरमेखला से युक्त हैं। कुछ मातृदेवी मृण्मूर्तियों के शिरोभूषा के दोनों ओर दिए जैसी आकृति बनी है। अर्नेस्ट मैके के अनुसार इसमें दिए जलाये जाते रहे होंगे। व्यंकटेश महोदय इन मृण्मूर्तियों को दीप लक्ष्मी की संज्ञा देते हैं। बलूचिस्तान के कुल्ली क्षेत्र से प्राप्त मृण्मूर्तियाँ सौम्य स्वरूप व झोब संस्कृति की मृण्मूर्तियाँ रौद्र स्वरूप वाली है। मातृदेवी की कोई भी पाषाण मूर्ति नहीं प्राप्त हुई है, जिससे कई विद्वान् इसे राजकीय धर्म न मानकर जनसाधारण में प्रचलित धर्म मानते हैं। मृण्मूर्तियों के अतिरिक्त कुछ मुद्रांकनों पर भी मातृदेवी का अंकन मिलता है। हड़प्पा से प्राप्त एक मुहर पर सिर के बल खड़ी एक नारी का अंकन है, जिसके गर्भ से एक पौधा निकलते हुए दर्शाया गया है। सर जॉन मॉर्शल इसे 'पृथ्वी देवी' का आद्य रूप मानते हैं। दूसरी मुहर के हाथ में शस्त्र लिए एक पुरुष, पीपल वृक्ष के नीचे एक स्त्री व बकरा तथा मानव भेड़ का अंकन जो मातृदेवी उपासना व पशु बलि को इंगित करता है। कुछ स्त्री मृण्मूर्तियों की गोद में बालक भी दिखाया गया है। इन भी साक्ष्यों से यह प्रतीत होता है कि मातृदेवी उपासना सैन्धवकालीन सर्वाधिक लोकप्रिय धर्म था।

पुरुष देवता उपासना–

सैन्धव सभ्यतावासी मातृदेवी उपासना के साथ पुरुष देवता की भी

उपासना करते थे, जिसके साक्ष्य हमें उत्खनन में प्रतिवेदित पुरावषेषों के रूप में मिलते हैं। मोहनजोदड़ों से सेलखड़ी निर्मित पशुपति मुहर प्राप्त हुई है। इस मुहर पर पद्मासन मुद्रा में योगी का अंकन है, जिसके दायें तरफ चीता व हाथी तथा बायें तरफ गैण्डे व भैंसे का अंकन है। सिर पर त्रिशुल सदृश आकृति तथा नीचे हिरण अंकित हैं। मॉर्शल इसे रुद्र, शिव व पशुपति से समेकित करते हैं। ऐसी दो अन्य मुहरें मोहनजोदड़ो से प्राप्त हुयी है। कोटदीजी, कालीबंगा व पादरी पुरास्थलों से भी श्रृंग वाले देवता का अंकन प्राप्त होता है।

लिंग पूजा को शिवोपासना से सम्बद्ध किया जाता है, जो कि आज भी प्रचलन में है। विद्वान् इसकी प्राचीनता को सैन्धवकाल से जोड़ते हैं। सिन्धु सभ्यताकालीन पुरास्थलों से सूच्याकार व वर्तुलाकार लिंग प्राप्त होते हैं। इनका निर्माण प्रस्तर, सीप, कांचली, मिट्टी आदि पर किया गया है। यह छोटे तथा बड़े दोनों आकार के प्राप्त होते हैं।

लौकिक धर्म–

सैन्धव सभ्यताकालीन लोकधर्म के अन्तर्गत पशु पूजा, वनस्पति पूजा आदि को रखा जा सकता है। सैन्धव सभ्यता से विभिन्न प्रकार के पशुओं की मृण्मूर्तियाँ व मुद्रांकनों पर पशुओं का अंकन मिलता है। इनमें अधिकांश सामान्य पशु यथा–हाथी, ककुदमान बैल, गैण्डा, चीता अंकित हैं परन्तु इनके साथ ही साथ कुछ काल्पनिक पशुओं जैसे एकश्रृंगी पशु, अर्द्धमानवी व अर्द्धपाशविक आकृतियों का भी अंकन मिलता है। मुहरों व मुद्रांकनों के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि सैन्धवकालीन धर्म में एकश्रृंगी पशु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक मुहर पर अर्द्धमानव तथा अर्द्धपशु आकृति को एकश्रृंगी पशु से लड़ते हुए दर्शाया गया है।

लोथल व मोहनजोदड़ो पुरास्थलों से नाग पूजा के साक्ष्य मिलते हैं। मोहनजोदड़ो की एक मुहर पर बाह्य में एक पुरुष देवता व उसके दोनों ओर नागों का अंकन मिलता है। लोथल से प्राप्त एक ताबीज पर नाग को दर्शाया गया है। यह साक्ष्य अप्रत्यक्ष रूप से नाग पूजा का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

सैन्धवकालीन मृद्भाण्डों, मुहरों व मुद्रांकनों पर विभिन्न वनस्पतियों जैसे– पीपल, बबूल, नीम, ताड़, खजूर आदि का अंकन मिलता है। इनमें सर्वाधिक अंकन पीपल के पत्ते का प्राप्त होता है। मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक मुहर पर पीपल वृक्ष के तने से दो एकश्रृंगी पशुओं को निकलते हुए दिखाया गया है। मॉर्शल महोदय एकश्रृंगी पशु को पीपल देवता का वाहन मानते हैं। इसके अतिरिक्त ऐसे अनेक उदाहरण हैं जो पीपल वृक्ष को सैन्धवकालीन धार्मिक वृक्ष

की श्रेणी में रखते हैं।

कालीबंगा व लोथल पुरास्थलों से अग्निकुण्डों के प्रमाण राजस्थान व गुजरात के क्षेत्र में अग्नि पूजा व यज्ञादि के प्रचलन का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। ध्यातव्य है कि इन क्षेत्रों में मातृदेवी की मृण्मूर्तियों का पूर्णतः अभाव है। बणावली से अग्निकुण्ड के साथ कर्मकाण्डीय महत्व से सम्बन्धित संरचनाएँ भी प्राप्त हुयी हैं। सिन्धु सभ्यता से स्वास्तिक चिन्ह के भी अवषेष मिलते हैं, जो सांस्कृतिक निरन्तरता का अप्रतिम उदाहरण है।

अन्त्येष्टि

अन्त्येष्टि अप्रत्यक्ष रूप से किसी भी सभ्यता व संस्कृति के धार्मिक जीवन को उद्घाटित करते हैं। सिन्धु सभ्यता में अन्त्येष्टि की तीन क्रियाएँ प्रचलित थीं– (1) पूर्ण शवाधान, (2) आंशिक शवाधान, (3) दाहकर्म। सामान्यतः कब्रों में शवों के सिर उत्तर व पैर दक्षिण दिशा में होते थे। हड़प्पा, कालीबंगा, राखीगढ़ी, लोथल, रोजदी, रोपड़ प्रमुख कब्रगाह पुरास्थल (Burial Site) हैं। मोहनजोदड़ो, हड़प्पा व लोथल से कलश शवाधान मिले हैं। लोथल व कालीबंगा से युग्म शवाधानों के साक्ष्य भी मिले हैं। लोथल व रोपड़ से शवों के साथ पशुओं को दफनाने के भी प्रमाण मिलते हैं। कुछ शवों के साथ मृद्भाण्ड, मनके आदि भी रखे हुए प्राप्त होते हैं, जो सैन्धव निवासियों के पारलौकिक जीवन में विश्वास को दर्शाते हैं।

1.6.कला व स्थापत्य

सैन्धव सभ्यताकालीन कला व स्थापत्य अत्यन्त उत्कृष्ट था। इसके अन्तर्गत हम मृण्मूर्तियों, प्रस्तर मूर्तियों, धातु मूर्तियों व भवनों/स्मारकों का अध्ययन करते हैं।

1.6.1. मृण्मूर्तियाँ–

सैन्धव सभ्यताकालीन पुरास्थलों से प्राप्त कलात्मक पुरावषेषों में सर्वाधिक संख्या मृण्मूर्तियों की है। मृण्मूर्तियों को देखकर प्रतीत होता है कि यह काल मूर्तिकला के अभ्यास व परीक्षण का काल था। इस काल की मृण्मूर्तियों का निर्माण चिकोटी विधि (Pinch & Pressure Technique) से किया गया है। मृण्मूर्तियों को कलाविद् लोक कला के अन्तर्गत रखते हैं। सैन्धव सभ्यता में इनका निर्माण सामान्यजन की अभिरुचियों के अनुसार किया गया है। प्रायः अधिकांश मृण्मूर्तियाँ हस्तनिर्मित हैं। समस्त मृण्मूर्तियों में 75 प्रतिशत पशु–पक्षी मृण्मूर्तियाँ व 25 प्रतिशत मानव मृण्मूर्तियाँ हैं। मानव मृण्मूर्तियाँ ठोस तथा पशु–पक्षी की मृण्मूर्तियाँ अन्दर से खोखली हैं।

मानव मृण्मूर्तियों में स्त्री मृण्मूर्तियों की संख्या अधिक है। स्त्री मृण्मूर्तियों का निर्माण 'चिकोटी व चिपकवां' दोनो विधियों से किया गया है। स्त्री मृण्मूर्तियों में नेत्र, वक्ष आभूषणों का निर्माण चिपकवां विधि से किया गया है। मेहरगढ़ से सैन्धव सभ्यता की प्राचीनतम स्त्री मृण्मूर्ति प्राप्त हुयी है। स्त्री मृण्मूर्तियों में प्रायः मुकुट का प्रचलन देखने को मिलता है। मुकुट दो प्रकार के प्राप्त होते हैं– (1) पंखदार, (2) उष्णीश (पगड़ी) की भाँति । मोहनजोदड़ो पुरास्थल से हड़प्पा की तुलना में पुरुष मृण्मूर्तियों की संख्या कम है। स्त्री मृण्मूर्तियों में आटा गूंथते हुए, गर्भवती, तीन पैर वाली कुर्सी पर बैठी, शिशु को दुग्धपान कराते हुए प्रमुख मृण्मूर्तियाँ हैं। मोहनजोदड़ो से दो सिर वाली एक मृण्मूर्ति प्राप्त हुयी है।

314 पशु–पक्षी मृण्मूर्तियाँ हड़प्पा व मोहनजोदड़ो से मिलती है। सैन्धव सभ्यतावासियों ने पशु मृण्मूर्तियों में सर्वाधिक संख्या में वृषभ मृण्मूर्तियों का निर्माण किया। रंगपुर व लोथल से घोड़े की मृण्मूर्तियाँ मिली हैं। किन्तु यह विवादस्पद है। पशु मृण्मूर्तियों में बकरी, बाघ, हाथी, बन्दर, सुअर, कछुआ, घड़ियाल, मछली की मृण्मूर्तियाँ तथा पक्षी मृण्मूर्तियों में कबूतर, बत्तख, तोता, मोर, गौरैया, चील, मुर्गा, उल्लू आदि की मृण्मूर्तियाँ सैन्धव पुरास्थलों से प्राप्त हुयी हैं। ककुदमान वृषभ के पश्चात् सर्वाधिक संख्या में क्रमशः भेड़ें व गैण्डों की मृण्मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। सैन्धव पुरास्थलों से गाय की मृण्मूर्ति नहीं मिली है।

1.6.2. प्रस्तर मूर्तियाँ

सिन्धु सभ्यता के पुरास्थलों से प्रस्तर निर्मित मूर्तियों की संख्या मृण्मूर्तियों की तुलना में अत्यल्प हैं। प्रस्तर मूर्तियों की अल्पता का कारण सम्भवतः प्रस्तर की अनुपलब्धता माना जा सकता है। मोहनजोदड़ो से 12 व हड़प्पा से 02 प्रस्तर मूर्तियाँ मिली हैं, परन्तु यह सभी खण्डित अवस्था में है। मोहनजोदड़ो की अधिकांश प्रस्तर मूर्तियाँ गढ़ी टीले के H.R. क्षेत्र से प्रतिवेदित हुयी हैं। विश्व प्रसिद्ध पुरोहित की प्रस्तर प्रतिमा मोहनजोदड़ो के गढ़ी क्षेत्र से मिली है। यह 19 सेंटीमीटर ऊँची खण्डित मूर्ति सिलखड़ी से निर्मित है। मूर्ति की दाढ़ी व बाल विषेष संवरे तथा फीते से पीछे की ओर बंधे हुए हैं। अर्द्धनिर्लिप्त नेत्र, मोटे अधरोष्ठ तथा दृष्टि नासाग्र है। बाँया कन्धा तिपतिया अलंकरण से युक्त शाल से ढका हुआ है। इसके अतिरिक्त मोहनजोदड़ो से चूने प्रस्तर की 14 सेंटीमीटर ऊँच मूर्ति, अलाबास्टर की 29.5 सेंटीमीटर ऊँची पुरुष मूर्ति, चूने प्रस्तर पर निर्मित भेड़ की मूर्ति तथा भेड़ व हाथी की संयुक्त मूर्ति प्राप्त हुयी है। हड़प्पा से बलुए पत्थर पर निर्मित कायोत्सर्ग मुद्रा में पुरुष मृण्मूर्ति मिली है। अनेक विद्वान् हमें जैन धर्म से जोड़ने का प्रयास

करते हैं। हड़प्पा से स्लेटी प्रस्तर पर निर्मित नृत्यरत युवक की मूर्ति प्राप्त हुयी है, जॉन मॉर्शल इसकी तुलना नटराज से करते हैं।

1.6.3 धातु मूर्तियाँ–

सिन्धु सभ्यतावासी धातु को पिघलाने, दो धातुओं के संयोग से मिश्रित धातु बनाने में प्रवीण थे। सैन्धव सभ्यताकालीन धातु मूर्तियों की प्राप्ति हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, चन्हुदड़ो, कालीबंगा, दायमाबाद व लोथल से होती है। इस काल की धातु मूर्तियों का निर्माण मधूच्छिष्ट विधि (Lost Wax) से किया गया है। सिन्धु सभ्यता की प्रसिद्ध कांस्य नर्तकी की मूर्ति मोहनजोदड़ो के एच0 आर0 क्षेत्र से प्राप्त हुयी। यह धातु मूर्ति 11.5 सेंटीमीटर ऊँची परन्तु खण्डित है। इसका बाँया पैर आगे व दाँया पैर सीधा है। दाँया हाथ कमर पर तथा बाँया हाथ सीधा है। बायें हाथ में कन्धे से लेकर कलाई तक चूड़ियाँ हैं तथा हाथ में एक पात्र भी है। इसके गले में त्रिदलीय लॉकेट है। जॉन मॉर्शल इस मूर्ति को आदिवासी स्त्री का रूपांकन मानते हैं। वहीं स्टुअर्ट पिग्गट ने इसे बलूची नारी कहा है। मोहनजोदड़ो के डी0 के0 क्षेत्र से एक अन्य परन्तु निम्नकोटि की कांस्य नर्तकी की मूर्ति प्राप्त हुयी है।

सिन्धु सभ्यताकालीन अन्य धातु मूर्तियों में मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक भैंसा व भेड़, लोथल से प्राप्त ताँबे के पक्षी, बैल, खरगोश तथा कुत्ता, कालीबंगा से प्राप्त ताँबे का वृषभ, दायमाबाद से प्राप्त काँसे का भैंसा, गैण्डा, रथ तथा मोहनजोदड़ो से प्राप्त दो मानव मूर्तियाँ प्रमुख हैं। यह मूर्तियाँ सैन्धव सभ्यताकालीन उत्कृष्ट धातु कला का उदाहरण हैं

1.6.4. स्थापत्य

सिन्धु सभ्यता की मुख्य विषेषता इसकी नगर–नियोजन प्रणाली थी। सैन्धव नगर विश्व के प्राचीनतम सुनियोजित नगर हैं। हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, चन्हुदड़ो, लोथल, सुरकोटदा, धौलावीरा व राखीगढ़ी को प्रमुख नगर माना जाता है। सैन्धव नगर प्रायः दो भागों (1) दुर्ग क्षेत्र व (2) मध्य नगर व (3) निचला नगर में विभाजित था। दुर्ग का निर्माण अधिकांशतः टीले के पश्चिम में व निचला नगर पूर्व में बनाया जाता था। नगर की सड़कें, गलियाँ एक दूसरे को समकोण पर काटती थीं। नगर में प्रवेश हेतु वाह्य चाहरदीवारी व आन्तरिक चाहरदीवारी में प्रवेश द्वारा होते थे। धौलावीरा नगर में प्रवेश द्वार पर लकड़ी के साइनबोर्ड लगे होने के भी प्रमाण मिले हैं।

मोहनजोदड़ो से 10 मीटर चौड़ी सड़क के साक्ष्य मिले हैं। जिसे सर

जॉन मॉर्शल 'राजपथ' की संज्ञा देते हैं। सड़कें प्रायः कच्ची होती थीं। यदा–कदा सड़क पर मिट्टी के बर्तन के टुकड़े व ईंट बिछाने के प्रमाण मिलते हैं। भवनों का निर्माण कच्ची व पक्की दोनों प्रकार की ईटों, लकड़ी व सरकण्डों के माध्यम से किया जाता था।

सिन्धु सभ्यता के भवनों में 75 x 15 x 30 सेंटीमीटर की तथा चाहरदीवारी में 110 x 20 x 430 सेंटीमीटर की ईंटों का उपयोग किया गया है। प्रत्येक भवन में कुएँ प्राप्त होते हैं। कुओं की दीवार व मेहराब में फन्नीदार ईंट (Wedge Shaped Bricks) का प्रयोग किया गया है। फर्श का निर्माण पक्की ईटों को कूटकर किया गया है। कालीबंगा से अलंकृत फर्श के साक्ष्य मिले हैं। हड़प्पा की जल निकास प्रणाली विलक्षण थी। सभी नालियाँ एक सार्वजनिक नाली से जुड़ती थीं। नालियाँ ढकी होती थीं।

सैन्धव सभ्यता में उत्कृष्ट नगर–नियोजन के साथ–साथ कुछ विशिष्ट सार्वजनिक भवनों के साक्ष्य उत्खनन में मिले हैं। यह स्थापत्य कला के दृष्टिकोण से अनुपम है। सिन्धु सभ्यता के सार्वजनिक भवनों में विशाल अन्नागार, स्नानागार, सभा भवन, गोदीबाड़ा आदि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं–

विशाल स्नानागार

मोहनजोदड़ो की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण इमारतों में विशाल स्नानागार की गणना की जा सकती है। सम्पूर्ण विशाल स्नानागार की लम्बाई 55 मीटर व चौड़ाई 33 मीटर है। विशाल स्नानागार के पूर्वी भाग में तालाब है। तालाब में जाने हेतु उत्तर व दक्षिण दिशा में 2.5 मीटर चौढ़ी सीढ़ियाँ बनी हैं। तालाब का तल पकी ईंटों से निर्मित है तथा चारो ओर 1 मीटर की जिप्सम की जुड़ाई द्वारा मोटी दीवार बनायी गयी है। दीवार के पीछे 1" मोटा बिटुमिन का लेप लगाया गया है। तालाब के तीन ओर बरामदे तथा पूर्व दिशा में तालाब में जल आपूर्ति के लिए एक कुआँ था। सर जॉन मॉर्शल ने वृहद् स्नानागार को तत्कालीन विश्व का एक आश्चर्यजनक निर्माण कहा है।

विशाल अन्नागार–

सैन्धव सभ्यताकालीन अन्नागार के साक्ष्य मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा से प्रतिवेदित हुए हैं। मोहनजोदड़ो से प्राप्त अन्नागार वहाँ का सबसे विशाल भवन है। यह स्नानागार के पश्चिम में निर्मित है। अन्नागार 50 फिट लम्बा व 20 फिट चौड़ा तथा 27 खण्डों में विभक्त है। मार्टीमर व्हीलर इस भवन को अन्नागार तथा जॉन मॉर्शल धूप–स्नान की इमारत कहते हैं। अन्नागार के समीप कच्ची मिट्टी से एक चबूतरे का निर्माण किया गया है। सम्भवतः इस चबूतरे

का प्रयोग अनाज को बैलगाड़ी से उतारने व लादने हेतु किया जाता रहा होगा।

हड़प्पा के 'एफ' टीले से 45 मीटर लम्बे व 75 मीटर चौड़े वर्गाकार अन्नागार की प्राप्ति हुयी है। इसे व्हीलर महोदय 'शस्यागार परिसर' (Granary Complex) की संज्ञा देते हैं।

सभा भवन–

मोहनजोदड़ो के दुर्ग क्षेत्र एक 90 x 90 मीटर के वर्गाकार भवन के साक्ष्य मिले हैं। यहाँ से 20 चौकोर स्तम्भों के अवषेष भी मिले हैं। सम्भवतः यह भवन/हाल 20 स्तम्भों पर आधारित था। मॉर्शल इसे बौद्ध गुफा मन्दिर, बाजार का हॉल तथा व्हीलर सभा भवन की संज्ञा देते हैं।

गोदीबाड़ा (Dock Yard)–

'लोथल' जिसे लघु मोहनजोदड़ो भी कहा जाता है, की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण इमारत गोदीबाड़ा है। यह पक्की ईंटों से निर्मित सिन्धु सभ्यता की विशालतम आयताकार संरचना है। यह संरचना 222 मीटर लम्बी, 35 मीटर चौड़ी व 8 मीटर गहरी है। गोदीबाड़ा के उत्तरी दीवार से 12 मीटर चौड़ी एक नहर बनी है, जो भोगवा नदी से जुड़ी हुयी है। गोदीबाड़ा से अधिक जल को निकालने हेतु दक्षिणी दीवार में 1 मीटर चौड़ा अधिप्लावन मार्ग भी बनाया गया है।

1.7. विघटन व सातत्य

सिन्धु सभ्यता लगभग एक हजार वर्ष तक बनी रही, परन्तु द्वितीय सहस्त्राब्दी के अन्त तक आते–आते प्रमुख सैन्धव नगर जैसे– हड़प्पा, मोहनजोदड़ो और धौलावीरा पतन की ओर अग्रसर हो गए। विकसित सैन्धव सभ्यता की प्रमुख विषेषताओं लेखन, मानककीकृत मुहरें व बाट–बटखरे, नगर–नियोजन आदि विशिष्ट लक्षण विलुप्त होने लगे। सिन्धु सभ्यता का विघटन या विनाश की विवेचना कीजिए। किसी भी संस्कृति के उद्भव और अन्त के कारणों का निर्धारण करना अपने में एक जटिल कार्य है। जिस प्रकार सिन्धु सभ्यता के उद्भव की कहानी अनेक प्रश्नों से घिरी हुयी है, ठीक उसी प्रकार उसके विनाश की थी। सिन्धु सभ्यता का क्षेत्र बहुत विस्तृत होने के कारण इसके भिन्न–भिन्न सांस्कृतिक स्थल भिन्न भौगोलिक परिस्थिति में जन्मे और जिस तरह इनके उद्भव के कारण भिन्न है, उसी प्रकार इनके पतन के कारण भी अन्यान्य हो सकते है। यही नहीं एक स्थल पर भी इसके पतन के अनेक कारण हो सकते हैं को निम्नलिखित रूप से वर्णित किया गया है। इन

कारणों में 1. प्रशासनिक शिथिलता में गतिरोध 2. जलवायु परिवर्तन 3. बाद 4. विदेशी व्यापार 6. बाह्य आक्रमण की गणना की जा सकती है।

फेयरसर्विस का मत है कि नगरीय समाज में महामारी एक जटिल समस्या है, जिसमें यथास्थिति बनाए रखने हेतु सन्तुलन आवष्यक है, किन्तु स्वयं की जटिलता एवं परिस्थितियों में परिवर्तन के कारण यह सन्तुलन बनाए रखना कठिन होता है और जब सन्तुलन बहुत बिगड़ जाता है, तो ह्रास के लक्षण स्पष्ट होने लगते हैं। मॉर्टीमर व्हीलर ने मोहनजोदड़ो के अन्तिम काल के स्तरों में बाढ़ के चिन्हों को भली–भाँति दर्शाया है। जॉन मार्शल (Mohenjo & daro and the Indus Valley Civilization) में मोहनजोदड़ो के विनाश का कारण नगर प्रशासन में शिथिलता माना है। उनके अनुसार अंतिम चरण में टीले पर और विस्तार के लिए जगह नहीं रह गयी थी और निम्न तल पर मकान बनाना बाढ़ के खतरे को मोल लेना था। जल संभरण व्यवस्था भी क्षत विक्षत हो रही थी। नई इमारतों के निर्माण में पुरानी इमारतों की ईंटों का प्रयोग हुआ। इससे यह सिद्ध होता है कि बस्ती का आकार सीमित हो गया था और स्वच्छता की व्यवस्था समाप्त हो गयी थी। परन्तु यह कारक किसी एक स्थल विषेष पर ही प्रभावी हो सकता है न कि सम्पूर्ण सभ्यता पर। ऑरेल स्टाइन और अमलानंद घोष का मानना है कि हड़प्पा सभ्यता का विनाश जलवायु परिवर्तन के कारण हुआ। कारकोई, झालावान सारावान आदि बलूचिस्तान में स्थित स्थानों पर प्रचुर संख्या मे पाए गए बाँधो के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला था कि वर्तमान काल की तुलना में आद्य ऐतिहासिक काल में बलूचिस्तान में अधिक वर्षा होती थी। मोहनजोदड़ो, हड़प्पा आदि स्थलों में प्रचुर मात्रा मे पकी ईंटों का प्रयोग यह दर्शाता है कि इन नगरों के चारों ओर सघन वन रहे होंगे जहाँ से इन लोगो को ईंट पकाने के लिए लकड़ी प्रचुर मात्रा में मिलती होगी, क्योंकि इतनी बड़ी संख्या में ईंटों को पकाने के लिए बहुत अधिक लकड़ी की आवष्यकता पड़ती है। इस अत्यधिक प्रयोग के कारण समीपवर्ती क्षेत्र के वन तथा वनस्पतियाँ नष्ट हो गयी तथा भूमि की नमी में कमी आती गई। जिससे सभ्यता का विनाश हुआ। आर०एल० राइक्स और फेयर सर्विस इस मत से सहमत नहीं हैं।

एच० टी० लैम्ब्रेक, माधोस्वरूप वत्स और जी० एफ० डेल्स आदि विद्वान नदियों के प्रवाह में हुए दिशा परिवर्तन को सिन्धु सभ्यता के विनाश के लिए उत्तरदायी मानते है। माधोस्वरूप वत्स ने हड़प्पा नगर के विनाश के लिए रावी नदी के मार्ग परिवर्तन को उत्तरदायी माना है। वर्तमान समय मे रावी नदी हड़प्पा से दूर प्रवाहित होती है। डेल्स महोदय ने कालीबंगा के पतन का

कारण घग्घर और उसकी सहायक नदियों का रूख परिवर्तन माना है। नदियों के प्रवाह में दिशा परिवर्तन होने से पीने व सींचने के लिए पानी का अभाव हुआ होगा, नदियों के तट दूर होने से व्यापारिक यातायात में कमी हुई होगी, जिससे नगर पतनोन्मुख हुए। अर्नेस्ट मैके ने जॉन मार्शल (1931) व सिन्धु सभ्यता के पतन का कारण बाद को माना। यह विद्वान लोथल, मोहनजोदड़ों और चन्हुदड़ो में सभ्यता के विघटन का कारण बाद मानते हैं। मोहनजोदड़ो में उत्खनन कराते समय मार्शल ने इसकी विभिन्न सतहों पर बालू के अवषेष पाए। मैके के अनुसार चन्हुदड़ों भी बाढ़ से विनष्ट हुआ और जब यहाँ झुकर संस्कृति के निवासी आकर बसे तो यह स्थल एक वीरान बस्ती थी। यहाँ से संस्कृति के तीन चरण प्राप्त हुए है ऐसा लगता कि हर बार स्थल का विनाश सिन्धु नदी की बाढ़ के कारण हुआ। एस. आर. राव के अनुसार लोथल में भी कम से कम दो बाढ़ों के आने का प्रमाण है। उनके अनुसार ये बाढ़ें 2000 ई0 पू0 व 1900 ई0 पू0 के आस पास आयी थी। बाद का परिणाम बहुत ही विनाशकारी होता है। अतः यह भी विनाश का एक कारक हो सकता है परन्तु यह उन नगरों के पतन को समझाने में असमर्थ है जो नदियों के किनारे नहीं बसे थे।

मकरान तट के तटीय उन्नयन को भी सिन्धु सभ्यता के विनाश के लिए महत्वपूर्ण माना गया है, क्योंकि इसने सुत्कागेण्डोर, सुत्काकोह और बालाकोट जो तटीय नगर थे अस्त–व्यस्त हो गए, जिससे विदेशी सामुद्रिक व्यापार और वाणिज्य में पर्याप्त गिरावट आई होगी, जो हड़प्पा सभ्यता का प्रमुख अंग थी। इस प्रकार सिन्धु सभ्यता वासियों का वैदेशिक सम्बन्ध की कमजोर हो गया। सिन्धु सभ्यता की अर्थव्यवस्था की रीढ़ में दरार पड़ी और वह पतनोन्मुख हो गयी।

विवर्तनिक उत्पात को एम. आर. साहनी, आर० एल० राइक्स आदि विद्वानों ने सिन्धु सभ्यता के विनाश का प्रमुख कारण माना है। एम. आर. साहनी का मत है कि सिन्धु सभ्यता के विनाश का कारण भारी मात्रा मे जलप्लावन था न कि बाढ़ आर० एल० राइक्स ने बताया कि विवर्तनिक क्रिया के कारण अरब सागर का उत्तरी तट ऊपर उठ गया जिसके परिणामस्वरूप भारी मात्रा मे वहाँ रेत एकत्र हो गयी और सिन्धु नदी के मार्ग को बाधित किया। पानी अब सीधे समुद्र में गिरने के बजाय जमा होने लगा. जिसके कारण एक झील सी बन गयी । पानी तो धीरे–धीरे निकल गया परन्तु दलदल व कीचड़ बना रहा जिससे आवागमन अवरुद्ध होने से व्यापार में परेशानी का सामना करना पड़ा होगा।

के० यू0 आर० केनेडी सिन्धु सभ्यता के विनाश के लिए महामारीयों को प्रभावी कारक मानते हैं। उनके अनुसार मलेरिया या अन्य किसी बीमारियों के

परिणामस्वरूप ही इस सभ्यता का अन्त हुआ, पर यह तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता है।

वी० गॉर्डन चाइल्ड ने हड़प्पा संस्कृति के विनाश का कारण आर्यों के आक्रमण को माना है। स्टुअर्ट पिगॅट, डी.एच.गॉर्डन व मार्टमर व्हीलर भी इस मत से सहमत हैं। व्हीलर महोदय ने एक कब्रिस्तान जो हड़प्पा जाति के लोगों का नहीं लगता, माधास्वरूप वत्स जिसे Cemetry कहते हैं, को आर्यों का कब्रिस्तान का माना है। ऋग्वेद की कतिपय कई ऋचाओं ने इन्द्र के लिए पुरन्दर, पुराविह और वृत्तहन जैसी उपाधियों का प्रयोग किया गया। सिन्धु सभ्यतावासी पानी का संग्रहण बाँध (वृत्त) बनाकर करते थे। सम्भवतः इन्द्र के लिए वृत्तहन का प्रयोग इन बाँधो को तोड़ने के फलस्वरूप किया गया होगा। अन्य वैदिक साहित्य में वर्णित शब्दों को अप्रत्यक्ष रूप से सिन्धु सभ्यता के विनाश से जोड़ा गया है। वर्तमान समय में इस सन्दर्भ में हुए कई कार्यों से यह प्रकाश पड़ता है कि इन दोनों संस्कृतियों के मध्य युद्ध जैसी कोई घटना घटी ही नहीं, क्योंकि आर्यों के आगमन का सिद्धान्त ही तर्कहीन सिद्ध हो गया। पुरातात्विक प्रमाणों को ध्यान में रखा जाए तो यह ज्ञात होता है कि सिन्धु सभ्यता के पतन का प्रारम्भ 1700 ई0 पू0 के आस–पास प्रारम्भ हो गया था और आयों का आगमन इसके बाद की घटना है। सम्भवतः आर्यों ने हड़पीय नगरों का विनाश अन्तिम रूप से किया होगा।

उपर्युक्त विभिन्न मतों की समीक्षा से स्पष्ट है कि सिन्धु सभ्यता के उद्भव की समस्या जितनी जटिल है ही उसके विघटन का प्रश्न उलझा हुआ है। विद्वानों का मत है कि कभी भी कोई सभ्यता पूर्ण रूप से विघटित नहीं होती है, उसका रूप परिवर्तन होता है। कालान्तर में ऐसे ही साक्ष्य ने झुकर, झांगर व गैरिक मृद्भाण्ड संस्कृतियों के रूप में प्राप्त होते है। यदि हम किसी भी संस्कृति के पूर्णरूपेण विनाश पर विश्वास करे तो परवर्ती ब्राह्मण और हिन्दू संस्कृति में तमाम ऐसे तत्व पाए जाते है जिनका उद्गम खोजना दुष्कर हो जाएगा। अतः हम कह सकते हैं कि कहीं न कहीं उपर्युक्त सभी कारण इस सभ्यता के विनाश के लिए उत्तरदायी रहे होंगे। सिन्धु सभ्यता का पतन नहीं रूप परिवर्तन हुआ।

1.7.7. सैन्धव सभ्यता व सातत्यता

भारतीय उपमहाद्वीप में भारतीय इतिहास व संस्कृति के क्षेत्र में हो रहे नवीन साहित्यिक व पुरातात्विक साक्ष्य सिन्धु सभ्यता के पतन नहीं अपितु निरन्तरता की ओर ध्यान केन्द्रित करते हैं। 1800–1700 ई0पू0 तक आते–आते

विकसित सैंधव नगरों के मूलभत तत्व समाप्त हो गए, परन्तु उनकी संस्कृति की झलक बाद की अनेक ग्रामीण संस्कृतियों में देखने को मिलती है। राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र की ताम्र पाषाणिक संस्कृतियों ने सैन्धव सभ्यता के कुछ लक्षणों को आत्मसात कर लिया। सिन्धु सभ्यता की सात्यता हम जीवन के प्रत्येक पहलु– धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक में देख सकते हैं।

सिन्धु सभ्यता के धार्मिक तत्वों की निरन्तरता की बात करें तो हम देखते हैं कि सिन्धु सभ्यता कालीन मुहरों पर अर्द्धमानव व अर्द्धपशु की आकृतियाँ उत्कीर्ण मिलती हैं। कालान्तर में अनेक पौराणिक अवतारों जैसे वराह, नृसिंह आदि का उल्लेख हमारे धार्मिक साहित्यों में मिलता है जो कहीं न कहीं भारतीय धर्म में सैन्धव सभ्यता के प्रभाव पर प्रकाश डालता है। इसी सन्दर्भ में यदि हम आगे चर्चा करें तो हम पाते हैं कि मोहनजोदड़ो से प्राप्त पशुपति मुहर को अनेक विद्वान् शिव से समेकित करने का प्रयास करते हैं। लिंग पूजा का प्रारम्भ भी हम सिन्धु सभ्यता से ही मानते हैं। सिन्धु सभ्यतावासी मातृदेवी उपासक थे, जिसे हम शक्तिपूजा का प्रारम्भिक रूप मान सकते हैं। इतना ही नहीं सिन्धु सभ्यता के निवासियों का प्रिय पशु कूबड़दार बैल था और बैल को हम वर्तमान समय में शिव के वाहन नन्दी के रूप में पूजते हैं। प्रकृति पूजा का ज्ञान भी हमें सैन्धव सभ्यता के लोगों से ही प्राप्त हुआ। पीपल वृक्ष की पत्तियों का सर्वाधिक अंकन सैन्धव पात्रों पर मिलता है और आज भी सनातन धर्म व संस्कृति में पीपल वृक्ष को पवित्रतम वृक्ष की श्रेणी में रखा जाता है। सैन्धव मुहरें नागपूजा के प्रचीनता की ओर इशारा करती हैं और आज भी उत्तर भारत में श्रावण मास की शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि को नागपंचमी के रूप में मनाया जाता है। पवित्र स्वास्तिक चिन्ह जिसका सर्वप्रथम साक्ष्य सैन्धव सभ्यता से प्राप्त होता है हिन्दू धर्म का पवित्रतम चिन्ह माना जाता है। सार्वजनिक स्नान के प्रचलन की पुष्टि वृहत् स्नानागार से होती है, जिसका महत्व वर्तमान समय तक बना हुआ है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में समय–समय पर कुछ विशिष्ट तिथियाों पर सामूहिक स्नान की प्रथा है। सम्भवतः यह हमने सैन्धववासियों से ही विरासत में प्राप्त किया है। कुछ विद्वान् जैन धर्म की प्राचीनता को भी सैन्धव सभ्यता तक ले जाने का प्रयास करते हैं।

सिन्धु सभ्यता के अनेक सामाजिक व आर्थिक तत्व आज भी प्रचलन में बने हुए हैं। सैन्धव सभ्यता के लोगों ने ही हमें नगर–नियोजन सिखाया। इस सभ्यता के सदृश दुर्गीकरण से गॉडर्न चाइल्ड सिन्धु सभ्यता कालीन भवन निर्माण, उद्योग–धन्धों व वेशभूषा को भारतीय संस्कृति का आधार मानते हैं।

सिन्धु सभ्यतावासी गेहूँ व जौ की भी कृषि में प्रवीण थे। कालान्तर में

सैन्धव कालीन गेहूँ के प्रमाण सनुवार (रोहतास, बिहार) की ताम्रपाषाणिक संस्कृति से प्राप्त होना। सिन्धु सभ्यता के पतन नहीं अपितु प्रव्रजन की ओर ईशारा करता है। आज भी समस्त उत्तर भारत का प्रमुख खाद्यान्न गेहूँ है। सैन्धव मूर्तियों में वर्णित वेशभूषा भी हमारी आज की पारस्परिक वेशभूषा से साम्यता रखती है। सिन्धु सभ्यतावासी नाप–तौल के लिए 16 अथवा सके गुणन भार के बांटों का प्रयोग करते थे और आज भी 16 अथवा उसके गुणांक इकाईयों का प्रयोग किया जाता है।

सैन्धव सभ्यता की निरन्तरता हमें अनेक क्षेत्रों में प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से देखने को मिलती है। सिन्धु सभ्यता की विषेषताओं के तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से और अनेक समानताओं को उद्घाटित किया जा सकता है। सिन्धु सभ्यता की लिपि का हम उद्वाचन कर पाए तो सम्भव है कि लेखन कला के प्रारम्भ में भी उनके योगदान की बात कर सकते हैं। प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सिन्धु सभ्यता का पतन नहीं हुआ अपितु वह रूप परिवर्तित कर आज भी हमारे मध्य उपस्थित है।

1.8. बोध प्रश्न

1. सिन्धु सभ्यता की उत्पत्ति पर प्रकाश डालिए।
2. सिन्धु सभ्यता के पतन के कारणों का उल्लेख कीजिए?
3. क्या सिन्धु सभ्यता की सातत्यता को हम स्थापित कर सकते हैं?
4. सिन्धु सभ्यता विश्व की प्राचीनतम नगरीय सभ्यता थी, विवेचना कीजिए।

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. किरण कुमार थपल्याल एवं संकटा प्रसाद शुक्ल, सिन्धु सभ्यता, लखनऊ, 2003
2. ग्रेगरी, एल0 पोशल, द इण्ड्स सिविलाइजेशन : ए कंटेम्परेरी पर्सपेक्टिव, 2019
3. वी0 के0 पाण्डेय, प्राचीन विश्व की सभ्यताएँ, इलाहाबाद,
4. श्रीराम गोयल, विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ, 2011
5. जय नारायण पाण्डेय, पुरातत्व–विमर्श, प्राच्य विद्या संस्थान, इलाहाबाद, 2002

6. जी.एस. वी. मिश्र, प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,जयपुर,1983
7. राम निहोर पाण्डेय,प्राचीन विश्व की सभ्यताएं, प्रागैतिहासिक युग से 323 ई.पू.तक,विद्यासागर ,इलाहाबाद,1994

इकाई–2 सुमेरियन सभ्यता

इकाई की रूपरेखा

2.0. प्रस्तावना

2.1. उद्देश्य

2.2. राजनीतिक स्थिति

2.2.1. उर का प्रथम राजवंश

2.2.2. अक्काद का साम्राज्य

2.2.3. उर का तृतीय राजवंश

2.2.4. प्रशासनिक व्यवस्था

2.3. सामाजिक स्थिति

2.4. आर्थिक स्थिति

2.4.1 कृषि

2.4.2 उद्योग–धन्धे

2.4.3 व्यापार–वाणिज्य

2.5 धार्मिक स्थिति

2.6. विज्ञान एवं प्रोद्यौगिकी

2.7. कला व स्थापत्य

2.8 बोध प्रश्न

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.0.प्रस्तावना

सुमेरियन सभ्यता के वर्णन के पूर्व उस क्षेत्र का वर्णन अधिक आवष्यक हो जाता है, जहाँ क्रमशः विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं सुमेरिया, बेबीलोनियन, असीरियन व कैल्डियन का विकास हुआ। इन सभ्यताओं का विकास मेसोपोटामिया क्षेत्र में हुआ। ईराक में दज़ला–फरात के मध्य स्थित क्षेत्र को मेसोपोटामिया कहते हैं। इसका यूनानी भाषा में अर्थ है–दो नदियों का मध्यवर्ती

भू–भाग अर्थात् दोआब (The land between two Rivers)।

मेसोपोटामिया, वर्तमान ईराक का क्षेत्र मूलतः दक्षिण–पश्चिम एशिया का वह उर्वर एवं समृद्ध भू–भाग है जहाँ दज़ला–फरात और उनकी सहायक नदियाँ बहती हैं, में हुआ। इसके उत्तर–पश्चिम में टर्की, पश्चिम में सीरिया तथा जॉर्डन, दक्षिण में अरब, दक्षिण–पूर्व में फारस की खाड़ी तथा पूर्व में ईरान देश स्थित है।

दज़ला–फरात नदियाँ आर्मीनिया पर्वत से निकल दक्षिण की ओर बहते हुए फारस की खाड़ी में गिरती हैं। ये दोनों नदियाँ इस क्षेत्र के अति विस्तृत भू–भाग को अपने जल से सिंचित करती हैं। दज़ला नदी की कुल लम्बाई 1850 किलोमीटर है। जैग्रोस पर्वत के निकट से बहने के कारण जेब, दियाला तथा कारुन नदियाँ इसमे मिलती हैं। फरात नदी दज़ला से लम्बी (2330 किलोमीटर) है। इन नदियों की बाढ़ से प्रतिवर्ष आच्छादित होने वाले भू–भाग को उर्वर अर्द्धचन्द्र (Fertile Cresent) कहा गया है। दज़ला तथा फरात एवं उसकी सहायक नदियों के मध्य स्थित इस उर्वर अर्द्धचन्द्राकार मैदान में जो सभ्यता जन्मी उसे मेसोपोटामिया की सभ्यता कहा गया।

बर्न्स के अनुसार– 'Mesopotamia was like a reservoir into which there constantly proved stream of different people.'

दज़ला तथा फरात के मध्य स्थित क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थिति ने मानव सभ्यता के विकास में योगदान दिया। मेसोपोटामिया की सभ्यता में चार सभ्यताओं की मुख्य रूप से गणना की जाती है। मेसोपोटामिया में जिन इतिहास प्रसिद्ध सभ्यताओं का विकास हुआ उनमें कालक्रम की दृष्टि से सुमेरियन सभ्यता का स्थान प्रथम है। मेसोपोटामिया में दज़ला–फरात की घाटी में जन्मीं चारों सभ्यताओं में सुमेरिया का स्थान प्रमुख है। इस सभ्यता के नामकरण का आधार सुमेर नामक नगर है जो शिनार या शिन्नार के दक्षिणी भाग में स्थित है। इसके उत्तर–पश्चिम में अक्काद स्थित है। निप्पुर नामक नगर अक्काद व सुमेर को पृथक् करता है। निप्पुर नगर के उत्तर का भाग अक्काद तथा दक्षिण का भाग सुमेर के नाम से जाना जाता है। मेसोपोटामिया में सभ्यता के प्रथम जन्मदाता सुमेरियन को यहाँ सामाजिक व आर्थिक संगठन, कानून, धर्म, लिपि तथा विज्ञान के बहुत से तत्वों का आदि अविष्कर्ता माना जाता है। दज़ला–फरात की घाटी में पनपने वाली अन्य सभ्यताओं के लिए सुमेरियन सभ्यता ने आधार प्रदान किया तथा उनके लिए प्रेरणा के रूप में कार्य किया।

सुमेरियन सभ्यता के विषय में साहित्यिक स्रोतों से बहुत अल्प मात्रा में

ज्ञान प्राप्त होता है। यूनानी और यहूदी (हिब्रू) धर्म ग्रन्थों व साहित्यों से बेबीलोनियन, असीरियन तथा कैल्डियन सभ्यताओं के विषय में तो ज्ञान मिलता है पर सुमेरियन सभ्यता के बारे में ये स्रोत मौन हैं। बाइबिल नामक धर्म ग्रन्थ में शिन्नार में पूर्व से आयी जाति के बसने का उल्लेख मिलता है। यहाँ पर शिन्नार से तात्पर्य सुमेर नामक नगर से लगाया जाता है। हेरोडोटस के 'हिस्टोरिका' में भी सुमेरिया के विषय में जानकारी नहीं है। हरवामनी सम्राट् अर्तरजक्सीज का राजवैद्य टीसियस भी सुमेरियनों के बारे में जानकारी नहीं थी। बेरोसॉस जो कि एक प्रसिद्ध कैल्डियन विद्वान् था, जो बेबीलोन के 'मर्दुक के मन्दिर' का पुजारी था, ने 'बेबीलोन का इतिहास' नामक पुस्तक लिखा। इसकी पुस्तक का उद्धरण परवर्ती लेखकों फ्लेवियस जोसेफस, सन्त क्लीमेन्ट तथा बिशप यूसीबियस के ग्रन्थों में मिलता है, जिससे पता चलता है कि बेरोसॉस सुमेरियन जाति व सभ्यता से अनभिज्ञ था।

2.1.उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का मूलभूत उद्देश्य मेसोपोटामिया क्षेत्र की प्रथम सभ्यता सुमेरियन सभ्यता के विषय में ज्ञान प्रदान करना है। इस इकाई के अन्तर्गत मेसोपोटामिया की भौगोलिक अवस्थिति, सुमेरियन सभ्यता की उत्पत्ति, राजनीतिक दशा, सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक जीवन, बौद्धिक उपलब्धियों व कला–स्थापत्य पर प्रकाश डालना है।

2.2. राजनीतिक स्थिति

सुमेर और अक्काद का ज्ञात इतिहास लगभग 3200 ई0 पू0 से प्रारम्भ होता है। उस समय ये दोनों प्रदेश छोटे–छोटे प्रतिस्पर्द्धी नगर–राज्यों में विभाजित थे। इनमें से किश, सिप्पर, कूथा तथा ओपिस अक्काद क्षेत्र में जबकि एरेक (उरुक), लारसा, ईसिन (निसिन), लगश, उर, एरिडु, दब तथा निप्पुर सुमेर क्षेत्र में अवस्थित प्रमुख नगर–राज्य थे। सुमेरिया के राजनीतिक इतिहास का अध्ययन मुख्यतः दो कालों यथा– प्राक् प्रलयकालीन इतिहास व एतिहासिक काल।

सुमेरिया का प्रारम्भिक इतिहास, जिसे प्राक् प्रलयकालीन इतिहास के अन्तर्गत रखा जाता है, पौराणिक आख्यानों पर आधारित प्रतीत होता है। इन आख्यानों में एक महाप्रलय की कल्पना की गयी है जिसके बाद सुमेरिया के सभी नगरों के समाप्त होने का उल्लेख है। महाप्रलय की घटना की पुष्टि कुछ सुमेरियन अभिलेख से भी होती है। 'उर' नगर के उत्खनन के दौरान डॉ0 वूली

को यहाँ 60 मीटर नीचे लगभग 12 मीटर मोटे जमाव का स्तर प्राप्त हुआ है, जो बाढ़ का जमाव लगता है। इस जमाव के नीचे से पुनः विकसित सभ्यता के अवषेष प्राप्त होने होते हैं, सम्भवतः इसी स्तर को प्राक् प्रलयकालीन इतिहास के जोड़ा जाता रहा है।

सुमेरिया के ऐतिहासिक काल का इतिहास मुख्यतः नगर–राज्यों के उत्थान–पतन व उपलब्धियों पर आधारित है। शक्ति एव सत्ता का हस्तान्तरण जिस नगर के पास होता था वही प्रमुख होता था। यहाँ के राजनीतिक इतिहास को नगर राजवंशों के आधार पर समझा जा सकता है। सुमेरिया का प्रारम्भिक इतिहास जिसे 'उर' का प्रथम राजवंश कहते हैं, इसके अन्तर्गत उर, किश, लगश तथा उम्मा नामक नगर–राज्यों में सत्ता की प्राप्ति के लिए परस्पर–प्रतिस्पर्द्धा रहती है तथा सत्ता का हस्तान्तरण इन्हीं नगर–राज्यों के मध्य होता रहता है।

2.2.1. उर का प्रथम राजवंश (3200 ई0पू0–2800 ई0 पू0)

ऐतिहासिक काल में उर के प्रथम राजवंश का शासक 'भेस–अन्ने–पट्ट' था। इस राजवंश ने लगभग 177 वर्षों तक शासन किया था। उत्खननों से इन शासकों की कब्रें प्राप्त हुई हैं। 'उर' के इस प्रथम राजवंश की स्थापना 3200 ई0पू0 में हुयी थी।

किश– किश भी उस समय एक महत्त्वपूर्ण नगर–राज्य था। (3100 ई0पू0 लगभग) वहाँ का राजा उतुग सुमेरियन था। इसके बाद किश पर कुछ समय के लिए सेमाइट शासकों का अधिकार हो गया परन्तु एरेक नगर के सुमेरियन शासक एन–अकुश–अन्ना ने सेमाइटों को अपदस्थ कर किश नगर पर पुनः अधिकार कर लिया। शीघ्र ही उसने उर नगर को भी जीत लिया।

लगश– प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल में लगश एक प्रतिष्ठित (3050–2900 ई0पू0) नगर–राज्य था। इस राज्य के राजवंश के संस्थापक का नाम उर–नन्शे था। इसने जनहित के बहुत से कार्य जैसे– नहर खुदवाना, अन्नागार एवं भण्डार गृहों का निर्माण आदि किएं इसके पुत्र एन्नातुम ने उम्मा तथा किश नगर–राज्यों पर विजय प्राप्त की तथा एरेक और उर पर भी इसका अधिकार हो गया। एन्नातुम के बाद इसका भतीजा एन्तेमेन शासक बना। एन्तेमेन द्वारा किए गए कार्यों का वर्णन मृण लेखों में मिलता है। लगश के अगले शासक उरु–कगिना के विषय में अधिक सूचनाएँ मिलती हैं। इसके द्वारा किए गए सुधारों का सुमेरिया के इतिहास में विशिष्ट महत्व है। इसके शासन के पूर्व तक पुजारियों एवं उच्चाधिकारियों में विलासिता व भोग का स्तर बहुत बढ़

गया था तथा वे जनता से प्रचुर मात्रा में कर वसूलते थे। उरु–कगिना ने बहुत से 'कर' बन्द करवा दिए तथा पुजारियों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। परन्तु 8 वर्ष में ही उसके गौरवपूर्ण शासन का अन्त हो गया।

उम्मा (2850 ई0पू0 लगभग)– उम्मा नगर–राज्य की स्थिति लूगल–जग्गेसी के कुशल नेतृत्व में काफी अच्छी हो गयी थी। लूगल जग्गेसी ने अवसर पाकर लगश पर आक्रमण कर उरु–कगिना को अपदस्थ कर दिया। इस पर अधिकार करने के बाद लूगल–जग्गेसी ने ओप्रिस तथा किश पर भी अधिकार कर लिया। ऐसा कहा जाता है कि लारसा, उर तथा निप्पुर पर सफलता प्राप्त कर वह भू–मध्यसागर तक बढ़ा परन्तु यह अतिशयोक्तिपूर्ण लगता है। सीरिया पर अधिकार सर्वप्रथम इसी के शासनकाल में किया गया था। 25 वर्ष के शासन के बाद इस वंश का पतन हो गया।

उम्मा में लूगल–जग्गेसी के पतन के बाद सुमेरिया में एक अज्ञात कुलशील परन्तु प्रतिभाषाली व्यक्ति शर्रूकिन का प्रादुर्भाव हुआ। इसने सुमेरिया में एक नए राजवंश व साम्राज्य की नींव रखी जिसे अगाद या अक्काद साम्राज्य के नाम से जाना गया।

2.2.2. अक्काद का साम्राज्य (2800 ई0पू0)

इस साम्राज्य का संस्थापक शर्रूकिन इतिहास में सारगोन प्रथम के नाम से जाना जाता है। यह इतिहास में 'राष्ट्रीय वीर' के रूप में याद किया जाता है। किंग जैसे कुछ विद्वानों की धारणा है कि शर्रूकिन व सारगोन दोनों अलग व्यक्ति थे परन्तु अधिकांश इतिहासकार दोनों को एक ही मानते हैं।

सारगोन का सम्बन्ध एक साधारण परिवार से था परन्तु अपनी क्षमताओं के बल पर वह किश राज्य के शासक का कृपा पात्र बन गया और कालान्तर में विद्रोह द्वारा राजपद प्राप्त कर लिया। किश को जीतने के बाद उसने एरेक नगर के शासक लूगल जग्गेसी को भी परास्त कर दिया। इसके बाद उसने उर, लगश तथा उम्मा को भी जीत लिया। सुमेर पर अपना पूर्ण प्रभुत्व स्थापित करने के बाद इसने एक अभियान दज़ला पार कर ईरान की तरफ तथा दूसरा फरात के सहारे सीरिया की ओर भेजा। पूर्व में इसने अवन के नेतृत्व वाले एक संगठित मोर्चे को भी परास्त किया। एलम, बहरो तथा ड़ोसी राजाओं ने सारगोन की अधीनता मान ली। उत्तर–पश्चिम में सारगोन को भूमध्य सागरीय तट, लेबनान, तोरुस पर्वतमाला, पूर्वी सीरिया, सीरिया तट तथा उत्तरी सीरिया पर सफलता मिली थी। सुदूर कप्पाडोसिया से सारगोन के सम्बन्धों की पुष्टि टेल–अमनी से 1913 ई0 में प्राप्त एक टेब्लेट से हो जाती है, जिसके अनुसार

बुरुशण्ड नगर में व्यापारियों ने सारगोन से सहायता की याचना की थी। सारगोन एक बहादुर विजेता के साथ–साथ कुशल शासनकर्त्ता व सुधारक भी था। उसने अनेक प्रशासनिक सुधार किए। राजप्रसाद तथा मन्दिर बनवाए एव सिंचाई की भी समुचित व्यवस्था की। इसी के समय में सेमेटिक कानूनों एवं धार्मिक साहित्य का सेमेटिक भाषा में अनुवाद करके मन्दिरों में सुरक्षित किया गया था।

सारगोन की मृत्यु के पश्चात् उसके जुड़वा पुत्रों रिमुश व मनिश्तुसु ने क्रमशः शासन किया। मनिश्तुसु के शासनकाल में फारस के विरुद्ध एक सैनिक अभियान चलाने का उल्लेख है।

मनिश्तुसु के पश्चात् उसका पुत्र नरामसिन शासक बना। यह सारगोन की ही भाँति प्रतापी शासक था। इसने पश्चिम में अर्मन तथा इब्ला को समाप्त कर अमनुस पर अधिकार स्थापित किया। उत्तर में हुर्रियनों को परास्त किया तथा सुदूर दक्षिण में ओमन पर विजय प्राप्त की। इसने लुल्लुवी के शासक को हराने के उपरान्त स्मृति के रूप प्रस्तर शिल्प में विवरण सुरक्षित किया। इसकी पुष्टि नरामसिन की प्रसिद्ध प्रस्तुर पट्ट से भी हो जाती है। टेल ब्रेक पर इसने एक राजकीय प्रसाद का निर्माण भी करवाया था।

(2750–2700 ई0पू0) नरामसिन के बाद उत्तराधिकार शर–कलि–शर्टी को मिला परन्तु इसके काल तक अनेक नगर–राज्यों ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी। अराजकता की इस स्थिति का लाभ करती नामक एक बर्बर जाति ने उठाकर अपनी शक्ति स्थापित कर ली। इसने लगभग 125 वर्षों तक शासन किया। इसी दौरान एंसी–उतु–हेगल के नेतृत्व में एरेक नगर राज्य का उत्थान हुआ परन्तु एंसी–उतु–हेगल अधिक दिनों तक शासन न कर सका। उर नगर राज्य के गवर्नर उर नम्मु ने एरेक के शासक की हत्या कर एक नए राजवंश की स्थापना की जिसे 'उर का तृतीय राजवंश' कहा जाता है। इसे सुमेरियन इतिहास में 'नव सुमेरियन काल' कहा जाता है। सुमेरियन सभ्यता एवं संस्कृति का चरमोत्कर्श इसी समय में हुआ।

जिस समय उर नगर उर–नम्मु के नेतृत्व में समृद्ध हो रहा था, इसी समय लगश राज्य भी अपनी स्थिति मजबूत कर रहा था। लगश में इस समय गूडी नामक शासक पटेसी (2500 ई0पू0) शासन कर रहा था। लगश के साथ–साथ निप्पुर तथा एरेक पर भी गूडी का प्रभाव था। अंशान के एल्माइट नगर पर भी इसने आक्रमण किया था। इसके लेखों से ज्ञात होता है कि इसके व्यापारिक सबन्ध अगन, मेलुहा, गूबी तथा दिलमुन से थे। इसके बाद इसके

पुत्रों व पौत्रों को विषेष सफलता नहीं मिल सकी।

2.2.3. उर का तृतीय राजवंश (2450–2400 ई0पू0)

उर के तृतीय राजवंश का संस्थापक दुंगी था। वह इस वंश का महानतम शासक था। उसने समस्त बेबीलोनिया पर अधिकार करके 'उरनरेश', 'चतुर्दिक का स्वामी' तथा 'सुमेर और अक्काद का राजा' उपाधियाँ धारण कीं। इन उपाधियों के साथ–साथ उसने दैविक पदवियाँ भी धारण कीं। इन उपाधियों के धारण करने का उसके पास पर्याप्त कारण है। उसने एलम पर विजय हासिल की, जग्रोस पर्वत की पर्वतीय जातियों को परास्त किया और उर, एरेक, लगश, कूथा तथा सूसा (एलम) इत्यादि नगरों में विभिन्न देवताओं के मन्दिर बनवाए। दुंगी का शासनकाल उसकी विधि संहिता के लिए भी प्रसिद्ध है। यद्यपि अब सुमेर में ही इससे पुरानी संहिताएँ पायी गयी हैं परन्तु इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि परवर्ती बेबीलोनियन शासक हम्बूराबी की विश्व प्रसिद्ध विधि संहिता (कोड), दुंगी की विधि संहिता का परिवर्द्धित व संशोधित रूप थी।

दुंगी की मृत्यु के बाद अमर सिन, शु–सिन तथा इब्बी–सिन ने क्रमशः (2357 ई0पू0) शासन किया। इब्बी–सिन के काल तक एलम राज्य की शक्ति काफी बढ़ चुकी थी। एलमाइटों ने सुमेर पर आक्रमण कर उसे पूरी तरह नष्ट कर दिया। आगामी लगभग 200 वर्षों का इतिहास ईशिन, लारसा, असुर तथा एथुन्ना के पारस्परिक संघर्ष का इतिहास है।

इसी समय मेसोपोटामिया के पश्चिम में बर्बर जातियों का प्रवेश आरम्भ हो गया था। इन्हीं में से एरोमाइट नामक जाति, जिन्हें पश्चिमी सेमाइट भी कहा जाता है, ने बेबीलोन को केन्द्र मानकर अपना उत्कर्ष प्रारम्भ किया। इनके द्वारा स्थापित साम्राज्य मेसोपोटामिया में 'बेबीलोनियन साम्राज्य' नाम से जाना जाता है। बेबीलोनियन साम्राज्य के उद्‌भव के साथ–साथ सुमेरियन साम्राज्य का पूर्णतया पतन हो गया।

2.2.4. प्रशासनिक व्यवस्था

सुमेरियन राजनीतिक संगठन एक प्रकार से नगर–राज्यों का एक शिथिल संघ था जो केवल युद्धकाल में ही संगठित होते थे। आपातकालीन स्थिति में शासक वयस्कों तथा वृद्धों के संगठनों से परामर्श लिया करते थे। वे सामूहिक रूप से इकट्‌ठा होकर अपनी समस्याएँ सुलझाते थे। यह जनतंत्रात्मक व्यवस्था सम्भवतः विश्व इतिहास का प्रथम जनतंत्र है। प्रारम्भिक काल में राज्य

छोटी इकाइयों में बँटा होता था जिसका केन्द्र नगर होता था। इस केन्द्रीय नगर को राज्य कहा जाता था जिसके शासक को 'पटेसी' या 'पुरोहित नरेश' भी कहा जाता था। पटेसी नगर–राज्य का शासक, प्रधान, पुरोहित, न्यायाधीश, सेनानायक तथा सिंचाई व्यवस्था का अधीक्षक था। इस तरह इसे राजनीतिक व धार्मिक दोनों महत्व प्राप्त था। इसका पद वंशानुगत होता था। जब कोई पटेसी कई नगर–राज्यों को जीतकर अपने में मिला लेता था तो वह लूगल की उपाधि धारण करता था अर्थात् यदि पटेसी नगर शासक था तो लूगल राज्य का शासक। पटेसी का अभिप्राय 'देव प्रतिनिधि' जबकि लूगल का अर्थ 'महान व्यक्ति' है। ये दोनों ही शाही भवनों में रहते थे। इस प्रकार के दो शाही भवनों के भग्नावषेष किश एवं एरिडु से प्राप्त हुए हैं।

दुंगी कानून एवं विधि संहिता

सुमेरियन प्रशासन एवं राजतंत्र की आधारशिला इनकी विधि संहिता एवं कानून थे। सुमेरियन कानूनों में स्थानीय रीति–रिवाजों एवं परम्पराओं का महत्त्वपूर्ण स्थान था। परन्तु धीरे–धीरे समाज में फैली विविधताओं एवं परम्पराओं के कारण एक लिखित विधि संहिता की आवष्यकता महसूस की जाने लगी। सर्वप्रथम उर के तृतीय राजवंश के शासक दुंगी ने इन कानूनों को संकलित रूप प्रदान किया। वैसे अपने मूल स्वरूप में दुंगी की विधि संहिता अप्राप्य है, परन्तु बेबीलोन के शासक हम्बूराबी की विधि संहिता (कोड) में इनका प्रयोग किया गया है जो मूल रूप में प्राप्य है। दुंगी की विधि संहिता की कुछ प्रमुख विषेषताएँ निम्नवत् हैं–

- यह जैसे को तैसा के सिद्धान्त पर आधारित थी।
- न्याय व्यवस्था में अपराधी का उत्तरदायित्व पीड़ित व्यक्ति ही वहन करता था। न्यायालय केवल मध्यस्थ के रूप में कार्य करता था।
- न्याय व्यवस्था में भी सामाजिक भेदभाव का पर्याप्त प्रभाव था। अभिजात और सर्वसाधारण वर्ग के अपराधी, निम्न वर्ग के अपराधी की तुलना में अधिक दण्ड पाते थे।
- विधि संहिता में अपराधी के पीड़ित व्यक्ति के परिवार को मुआवजा देने का प्रावधान था।

न्याय एवं दण्ड विधान

सुमेरियन सभ्यता में न्यायालय का कार्य मन्दिर करते थे तथा पुरोहित ही

न्यायाधीश होता था। सभी प्रकार के मुकदमे 'मष्किम' नामक अधिकारी सुनता था। इसके निर्णय से असहमति होने पर न्यायाधीशों द्वारा सुनवाई की जाती थी। यदि वादी फिर भी सन्तुष्ट न हो तो वह उच्चतर न्यायालय में अपील कर सकता था। उर नगर में एक प्रांतीय न्यायालय का भी उल्लेख है जिसका अध्यक्ष नगरपति होता था तथा कुलीनों की एक समिति उसकी सहायता करती थी।

बेबीलोन की अपेक्षा सुमेरियन दण्ड विधान सरल था। दण्ड निर्धारण में उदारता का दृष्टिकोण अपनाया गया था। जैसे– व्यभिचार के अपराध में स्त्री को छोड़ा नहीं जाता था बल्कि दासी के रूप में रखा जा सकता था। याची स्वयं अपराधी को दण्ड देता था।

2.3. सामाजिक स्थिति

सुमेरियन सामाजिक व्यवस्था विषमताओं पर आधारित थी। समाज में पर्याप्त वर्गभेद था । राजा, राज–परिवार, कुलीन व अभिजात वर्ग को विषेषाधिकार प्राप्त था। सुमेरियन समाज अभिजात, सर्वसाधारण व दास इन तीन वर्गों में विभाजित था। अभिजात वर्ग में राजा, पुरोहित, उच्चाधिकारी तथा राज–परिवार के सदस्य थे। सर्वसाधारण वर्ग में अधीनस्थ शासक, कृषक, व्यापारी, व्यवसायी आदि होते थे। तीसरा वर्ग दासों का था। पुरोहित एवं राजाओं के पश्चात् राज कर्मचारियों एवं लिपिकों का स्थान था। दास मुख्यतः खेती, सिंचाई तथा निर्माण कार्य करते थे। इन्हें बेचा जा सकता था परन्तु इनके साथ अभद्र व्यवहार नहीं किया जा सकता था। सुमेरियन समाज पितृसत्तात्मक प्रधान था। पिता का स्थान सर्वोपरि था। उसे असीमित अधिकार प्राप्त थे। वह अपने पुत्रों को त्याग सकता था, बेंच सकता था तथा निष्कासित भी कर सकता था। विषेष परिस्थिति में पति अपनी पत्नी को भी बेंच सकता था। सुमेरियन समाज में सन्तान को वैधानिक अधिकार नहीं प्राप्त थे।

विवाह का मूल उद्देश्य सन्तान प्राप्ति था। विवाह की शर्तों को लिपिबद्ध करके गवाहों से अनुमोदन करवाया जाता था। दहेज में प्राप्त धन व उपहारों पर स्त्री का पूर्ण अधिकार होता था। सुमेरियन समाज में बहुपत्नीप्रथा का भी प्रचलन था।

कृषि प्रधान सभ्यता होने के कारण यहाँ के लोग गेहूँ, खजूर, जौ आदि का सेवन करते थे। फलों का प्रयोग भी भोजन में होता था। ये लोग प्रायः माँसाहारी थे।

सुमेरियन समाज में पुरुष साधारणतया कमर से ऊपर वस्त्रहीन रहते थे तथा नीचे की ओर लुंगी सदृश वस्त्र पहनते थे। स्त्री व पुरुष दोनों ही आभूषण प्रेमी होते थे। वे आभूषणों जैसे– कर्णफूल, चोकर, कड़ा, कण्ठाहार, अँगूठी तथा बाल के पिन आदि का प्रयोग करती थीं। आभूषण सोने, चाँदी तथा नीलम से बने होते थे।

सुमेरियन समाज में स्त्रियों की स्थिति सामान्य थी। यद्यपि कानूनन पति द्वारा पत्नी व बच्चों को बेचा जा सकता था पर व्यवहार में इसका प्रयोग नहीं मिलता है। स्त्रियों को शासन का अधिकार था। देवदासी से उत्पन्न पुत्र को गोद लिया जा सकता था। (निःसन्तान) बन्ध्या स्त्री को तलाक दिया जा सकता था। व्यभिचारिणी स्त्री के लिए मृत्युदण्ड तक का प्रावधान था।

सुमेरियावासी शवों के साथ अन्त्येष्टि सामग्री रखते थे, जो उनकी परलोकवाद की अवधारणा को दर्शाता है। सुमेरिया में प्रायः कब्रें चतुर्भुजाकार होती थीं। इनमें मृतक को लिटाकर ऊपर से कच्ची ईंटों को मेहराब बनाकर दफनाने की प्रथा थी।

2.4. आर्थिक स्थिति

सुमेरियन अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि, पशुपालन, उद्योग–धन्धों एव व्यापार–वाणिज्य पर आधारित थी। राज्य विभिन्न आर्थिक गतिविधियों में सहायता प्रदान करता था।

स्ुमेरियन अर्थव्यवस्था मूलतः कृषिप्रधान थी। भूमि की उर्वरता, सिंचाई के ज्ञान तथा कृषि में हल की उपयोगिता के कारण सुमेरियन कृषि समुन्नत दशा में थी। कृषि कार्य मुख्यतः काश्तकारों (खेतिहर या उरुलल) तथा दासों द्वारा किया जाता था। यहाँ की मुख्य फसलें गेहूँ, जौ, तिल, चना, मटर एवं खजूर थे बागान भी लगाने की प्रथा थी। सुमेरियन साम्राज्य में उपज का 1/6 से 1/3 भाग कर के रूप में लिया जाता था। सुमेरियाई लेखों से भूमि पैमाइश, बीज के उत्पादन तथा आय–व्यय के विवरण रखे जाने की सूचना मिलती है। सुमेरियन मन्दिरों का अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान था। यह कृषि के लिए बीज, औजार और सिंचाई आदि की व्यवस्था करते थे।

सुमेरियन सभ्यता में उद्योग–धन्धे प्रायः मन्दिरों के नियन्त्रण में थे। ये कच्चा माल आयात करते थे तथा उसको उपयोग में लाते थे तथा बचे हुए तैयार माल का निर्यात करते थे। मुख्य रूप से धातु उद्योग, वस्त्र उद्योग तथा गाड़ी बनाने के उद्योग प्रचलित थे। ताँबे, काँसे के साथ–साथ, चाँदी एवं शीशे

की सहायता से विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ बनायी जाती थीं। सोने का जितना अच्छा काम सुमेरियनों ने किया उतना अन्यत्र नहीं मिलता। भेड़ से ऊन प्राप्त कर वस्त्र तैयार किया जाता था व सन की कृषि भी की जाती थी। सुमेरिया में एक विषेष वर्ग वस्त्रों की रंगाई व बुनाई का काम करता था। गाड़ी बनाने का उद्योग भी प्रचलित था। किश के उत्खनन से प्राप्त पहिएदार गाड़ियाँ विश्व की प्राचीनतम गाड़ियाँ हैं।

कच्चा माल आयात करते थे व तैयार माल का निर्यात किया जाता था। इस कार्य में व्यापारियों को राजकीय सहयोग प्राप्त था। सुमेरियन शासक व्यापारियों को आन्तरिक व वाह्य सुरक्षा प्रदान करते थे। सुमेरियन सभ्यतावासियों के मिस्र, भू–मध्यसागरीय तट, एशिया माइनर तथा सिन्धु घाटी से व्यापार करने के प्रमाण मिले हैं। सुमेरियन फारस की खाड़ी के देश ओमान से ताँबा, पूर्वी प्रदेश सोरूस से चाँदी, सीरिया और एशिया माइनर से टिन तथा बदख्शाँ से वैदूर्यमणि मँगाते थे। जल मार्ग से नावों तथा स्थल मार्ग से पहिएदार गाड़ियों द्वारा व्यापार किया जाता था। सुमेरियन साम्राज्य में प्रारत्भ में व्यापार के लिए वस्तु–विनिमय प्रणाली प्रचलित थी परन्तु बाद में शेकेल नामक तौल से चाँदी की छड़ें काटकर व्यापार किया जाने लगा। सम्भवतः व्यापार में ऋण भी लिया जाता था। उर से एक तख्ती प्राप्त हुयी है जिस पर ब्याज कीदर 35.5 प्रतिशत दी गयी है। सामान्यतः 15.33 प्रतिशत तक ब्याज दर होती थी। व्यापार में बिचौलियों की भी भूमिका होती थी। यहाँ पर बाजारों की भी व्यवस्था थी जो प्रायः मन्दिरों के पास में लगते थे।

2.5. धार्मिक स्थिति

सुमेरियन धर्म के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि इनका धर्म आदर्श नहीं था। सुमेरियन धर्म की उत्पत्ति का कारण भय, कल्पना एवं अन्धविश्वास को माना जा सकता है। ये जिन वस्तुओं से भयभीत होते थे उन्हें दैवीय स्वरूप प्रदान कर देते थे। यहाँ पर परलोक की धारणा नहीं थी। नैतिकता की भी कोई मान्यता नहीं थी। सुमेरवासी किसी भी वस्तु को अचेतन नहीं मानते थे। सुमेरियन प्रत्येक पदार्थ में ईश्वर की उपस्थिति मानते थे। सुमेरिया में बहुदेववाद की कल्पना थी। सुमेरियन धर्म में चार देवताओं– अन, एनकी, एनिल और निमाह को प्रमुख स्थान प्राप्त था। यहाँ पर मनुष्य को देवताओं का दास समझा जाता था। प्रत्येक नगर के अलग–अलग देवता थे। निप्पुर में एनिल तथा उसकी प्रेमिका 'निनलिल'की पूजा होती थी। किश व लगश में देवी 'निकारसाग' की पूजा होती थी। सुमेर का प्रमुख देवता देवराज 'अन' था। दूसरा महत्त्वपूर्ण

देवता 'एनलिल' था जो देवपिता तथा पृथ्वी व आकाश का स्वामी माना जाता था। 'एनकी' को ल देवी मानकर उपासना की जाती थी। 'निमाह' को देव जननी पृथ्वी माता माना गया था। अन्य देवताओं में आचार–देव 'इन्ना' की मान्यता थी। शमश को देवताओं का प्रकाश माना जाता था।

देवताओं को प्रसन्न रखने के लिए दूध, मधु, अनाज, फल तथा पशुबलि आदि दी जाती थी। उत्सवों पर पशुबलि भी दी जाती थी तथा अनाज, रोटी, खजूर, अंजीर, तेल, शहद, दूध और शराब आदि का हवन किया जाता था। देवताओं का निवास स्थान मन्दिर होता था जहाँ पर इनकी उपासना के लिए पुजारी नियुक्त किए जाते थे। जादू–टोना पर लोगों का विश्वास था। स्वर्गलोक व पाताल लोक की कल्पना की गयी थी। ये आत्मा को अमर मानते थे। वरदान व दण्ड में भी इनका विश्वास था। ये इहलौकिक जीवन में विश्वास करते थे तथा पूजा एवं बलि का उद्देश्य इसी जीवन में उसका फल प्राप्त करने के लिए करते थे। मृत्यु के पश्चात् के जीवन में इनका विश्वास नहीं था। सुमेरियावासियों ने देवता में सत् व असत् गुण की कल्पना की है, किन्तु मान्यता है कि असत् गुण सदैव सत् गुण के अधीन रहता है। यहाँ पर नैतिक एवं सदाचार आदर्शों पर ईश्वर की इच्छा सर्वोपरि थी। झूठ, चोरी, धोखा, देवता में अविश्वास, लड़ाई, बेईमानी, व्यभिचार आदि करने को पाप माना जाता था।

2.6. विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी

सुमेरियन सभ्यता में विज्ञान व प्रौद्योगिकी के विकास के प्रमाण प्राप्त होते हैं। मुख्यतः सुमेरियन लोगों ने कृषि सम्बन्धी कार्यो के विकास के लिए अनेक वैज्ञानिक विकास किए।एक एक सुमेरियन लेख से इनके 'कृषि–पंचांग' पर प्रकाश पड़ता है। वे विभिन्न ऋतुओं से परिचित थे। सुमेरिया में कृषि ने ही ज्ञान–विज्ञान की विविध शाखाओं जैसे– खगोल, ज्योतिष, ज्यामिति, अंक–पद्धति, भार की इकाइयाँ आदि के उद्भव व विकास में योगदान दिया।

काल–गणना के लिए सुमेरिया में चान्द्रायण पांचांग बनाया गया था। इसमें कुल 29 या 30 दिन माना गया था। इनके वर्ष में कुल 356 दिन होते थे। 12 महीनों में 6 माह 29 दिन का तथा 6 महीन 30 दिन का होता था। सौर मास व चन्द्रमास के बीच के अन्तर को पूरा करने के लिए अधिमास जोड़ा जाता था। काल गणना की यह पद्धति भारतीय पंचांग के समान प्रतीत होती है। यहाँ के सात ग्रहों में– सैटर्न (शनि), वीनस (शुक्र), जुपिटर (बृहस्पति), मर्करी (बुध), मार्स (मंगल), चन्द्र और सूर्य की गणना की जाती है।

सुमेरयन लोगों को सम्भवतः अंकगणित का ज्ञान था। वह 1 से 9 तक

की संख्याओं के लिए ये उतनी ही रेखाएँ लगाकर लिखते थे। इन्होंने 1, 10 तथा 100 को मुख्य चिन्ह मानकर उसकी आवृत्ति और योग द्वारा संख्याओं को लिखना प्रारम्भ किया। इन्हें π (पाई) का मान (22/7) का ज्ञान था। तौल के लिए शेकल–मीना–टैलेंट का प्रयोग किया जाता था। प्रत्येक एक दूसरे से 60 गुना बड़ा होता था।

काल गणना, अंकगणित के साथ–साथ सुमेरियावासी रसायन विज्ञान से भी परिचित थे। ये टिन तथा ताँबा मिलाकर कांसा बनाने की विधि से परिचित थे। धातुओं को पिघलाना ये जानते थे। औषधि विज्ञान से भी ये परिचित थे। रोगों के निदान के लिए यहाँ वैद्य होता था। यह औषधि विज्ञान से भी परिचित थे। रोगों के निदान के लिए यहाँ वैध होता था। लुलु सुमेरिया का प्रसिद्ध वैध था।

2.6. कला एवं स्थापत्य

सुमेरियावासियों ने कला एवं स्थापत्य के क्षेत्र में काफी उन्नति की थी। सुमेरिया में पाषाण तथा लकड़ी का अभाव था, जिसका प्रभाव उनकी कला व स्थापत्य के माध्यम पर परिलक्षित होता है। सुमेरिया में स्थापत्य निर्माण में प्रायः मिट्टी की कच्ची व पकी हुई ईंटों का प्रयोग किया जाता था। यहाँ के निर्माण में सरलता व सहजता प्रमुख थी। अलंकरण पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है। मूर्तिकला में कलात्मकता से अधिक शौर्य भाव का प्रदर्शन दिखाई देता है।

सुमेरियन भवन उपयोगिता की दृष्टि से बनाये गए थे। ये भवन आवासी, धार्मिक तथा सामाजिक महत्व के होते थे। सुमेरियन भवन विशाल, मेहराबदार छतयुक्त हैं। भवन के साथ नालियों की व्यवस्था देखने को मिलती है। सुमेरियन स्थापत्यकला वास्तु में भवन, प्रासाद, मन्दिर एवं जिगुरत उल्लेखनीय हैं।

यहाँ के सामान्य लोगों के आवास नरकुल की वर्गाकार, आयताकार या वर्तुलाकार झोपड़ियाँ बनाते थे। विकास के दूसरे चरण में चबूतरों के ऊपर कच्ची तथा पक्की ईंटों से निर्माण किया जाने लगा। चबूतरों पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ होती थीं। मुख्य बड़े कमरे के अगल–बगल छोटे कमरे बनाए जाने लगे। भवन निर्माण के तीसरे चरण में 10–12 फीट ऊँचे चबूतरे पर भवन बनाए गए। दीवारों पर प्लास्टर के प्रमाण हैं। फर्श तथा प्लास्टर की गयी दीवारों को ये विविध आकृतियों व रंगों से सजाते थे। भवनों में खिड़कियाँ नहीं होती थीं। अब बड़े कमरे के स्थान पर खुला आँगन तथा उसके चारों ओर कमरे बनाए जाने लगे थे। जल के लिए कुँए तथा जल निकास के लिए नालियाँ बनी होती

थीं। मकानों की योजना जलवायु के अनुसार बनाई जाती थी।

सुमेरिया में राजप्रासाद विशाल बनाए जाते थे। इनका प्रवेश द्वार काफी संकरा होता था। एक बार में एक ही व्यक्ति प्रवेश कर सकता था। दरवाजों के दोनों तरफ स्थित एक छेद से प्रहरी बाहरी गतिविधियों को देख सकते थे। स्तम्भों एवं छतों को मेहराबदार बनाया जाता था। खिड़कियों का अभाव है। इसके स्थान पर पकी मिट्टी के वातायन दीवारों में लगा दिए जाते थे। नालियाँ पकी मिट्टी की होती थी। दरवाजों तथा नालियों को मेहराबदार बनाया जाता था। यह विश्व की पहली सभ्यता थी जहाँ पर भवन निर्माण में स्तम्भों का व्यापक प्रयोग हुआ तथा मेहराब बनाए गए। सुमेरिया के देवालय विशालकाय होते थे। यहाँ पर देवालय होने के साथ–साथ पुजारियों व देवदासियों के रहने की भी व्यवस्था होती थी।

- **जिगुरत स्थापत्य–**

सुमेरियन भाषा में जिगुरत का अर्थ होता है 'पर्वत निवास।' यह एक वर्गाकार व पिरामिडाकार भवन होता था। इस भवन के निर्माण का प्रयोजन सुमेरियनों के पर्वतीय प्रदेश से होना बताया गया है। बाइबिल में 'टावर ऑफ बाबेल' नाम के एक जिगुरत का उल्लेख है।

जिगुरत अत्यन्त विशाल थे। इनके निर्माण में मेहराब, गुम्बद और स्तम्भों का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त तोरण व बुर्ज या अट्टालक का भी निर्माण किया गया। जिगुरत के चारों ओर दीवार होती थी। इसमें जाने के लिए एक मार्ग होता था। उसके अन्दर चबूतरे बने होते थे। इन पर पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ बनी होती थीं। प्रायः तीन, चार व सात स्तरीय चबूतरे मिले हैं। इन चबूतरों पर कमरे बने होते थे जिसमें पुजारी निवास करते थे। सात मंजिलें सात गृहों का प्रतिनिधित्व करती थीं। इनको ग्रहों के अनुसार विविध रंगों से सजाया जाता था। इनके प्रवेशद्वार के पास मेहराब होता था, जिस पर उद्यान एवं हरी–भरी लताएँ लगी होती थीं। सबसे ऊपर एक खुली छत होती थी, उसी कोदेवता का निवास स्थान मानते थे। उरूनमु के जिगुरत का निचला हिस्सा 169 X 130 फीट चौड़ा था। इसकी ऊँचाई 21 मीटर थी। बिल डूरेण्ट का मानना है कि जिगुरत निर्माण का उद्देश्य कुछ तो धार्मिक और कुछ ज्योतिष सम्बन्धी है।

- **मूर्तिकला व अन्य विविध कलाएँ–**

सुमेरिया में मन्दिरों, घरों तथा राजभवनों को सजाने के लिए मूर्तिकला

का विकास हुआ। सुमेरियन सभ्यता में मूर्ति निर्माण हेतु प्रायः चाँदी, ताँबा, कांसा तथा प्रस्तर का प्रयोग प्रचलित था। यहाँ स्वतन्त्र मूर्तियों का अभाव देखने को मिलता है। इनकी मूर्तिकला वास्तुकला मुख्यतः भित्ति चित्रों की अभिन्न अंग थी। पशु–पक्षियों के साथ राजनीतिक घटनाओं का अंकन किया गया है। मूर्तियाँ सादी तथा भावनात्मक रूप से सशक्त प्रतीत होती हैं। उरू का पताका, गिद्ध पाषाण तथा नरामसिन के शिला स्तम्भ सुमेरियन मूर्तिकला के कुछ प्रमुख उदाहरण हैं।

सुमेरियन सभ्यता वासी मृण्भाण्ड कला में प्रवीण थे। सुमेरियन चाक के सबसे प्रारम्भिक प्रयोक्ता माने जाते हैं। मिट्‌टी की तख्तियाँ बड़े पैमाने पर मिली हैं जिन पर लेख उत्कीर्ण हैं। चाक से बने मृदा पात्र साधारण प्रकार के थे जबकि सेलखड़ी (अलबस्टर) से बने पात्र अपेक्षाकृत सुन्दर हैं। सुमेरिया से धातु का एक मुकुट मिला है जिस पर सुन्दर चित्रकारी है। उरू की कब्र से प्राप्त स्वर्ण पात्र अत्यन्त कौशलपूर्ण है। एन्तेमेन नामक स्थल से सोने का घड़ा मिला है जो वजनी तथा मजबूत है। इस घड़े पर जानवरों की आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं। पाषाण तथा शीशे के बर्तन भी यहाँ से मिले हैं। विभिन्न धातुओं व पत्थरों पर गोल, लम्बी तथा उथली आदि आकारों की मुहरें बनायी जाती थीं, जिनका प्रयोग मिट्‌टी की तख्तियों पर लिखने के बाद मुहर लगाने में किया जाता था। सील पर विविध प्रकार के चित्र बने होते थे।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सुमेरियावासियों ने जीवन के विविध क्षेत्रों में उपलब्धि अर्जित की। इनके द्वारा राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक क्षेत्रों में जो उपलब्धियाँ अर्जित की गयीं वे सुमेरियन संस्कृति की परवर्ती संस्कृतियों के लिए प्रेरणास्रोत थीं। वस्तुतः पश्चिमी एशिया की परवर्ती संस्कृतियों के लिए पृष्ठभूमि के निर्माण का श्रेय सुमेरियनों को ही दिया जा सकता है।

2.8. बोध प्रश्न

1. सुमेरियन सभ्यता की उपलब्धियों का विवरण दीजिए।

2. सुमेरियन सभ्यताकालीन राजनीतिक जीवन पर प्रकाश डालिए।

2.9. सन्दर्भ ग्रन्थ

1. श्रीराम गोयल, विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ,वाराणसी, 2011

2. वी0 के0 पाण्डेय, प्राचीन विश्व की सभ्यताएँ,इलाहाबाद

इकाई–3 बेबीलोन की सभ्यता

इकाई की रूपरेखा

3.0. प्रस्तावना

3.1. उद्देश्य

3.2. राजनीतिक स्थिति

3.2.1. हम्मूरबी का शासनकाल

3.2.2. हम्मूरबी के उत्तराधिकारी व उनका पतन

3.3. सामाजिक स्थिति

3.4. आर्थिक स्थिति

3.4.1 कृषि

3.4.2 उद्योग–धन्धे

3.4.3 व्यापार–वाणिज्य

3.5 धार्मिक स्थिति

3.6. कला व स्थापत्य

3.7. लिपि व साहित्य

3.8. हम्मूरबी की विधि संहिता

3.9. बोध प्रश्न

3.10. सन्दर्भ ग्रन्थ

3.0.प्रस्तावना

सुमेरियन सभ्यता के पतनोपरान्त पश्चिमी सेमाइटों ने बेबीलोन नामक नगर को केन्द्र बनाकर एक नवीन सभ्यता एवं संस्कृति की नींव डाली। बेबीलोनिया सभ्यता के निर्माता एमोराइट, अमोटी, अमरू, बेबीलोनियन अथवा केनानी जाति के थे। सुमेरियनों के साथ घुल–मिल जाने वाली किश की सेमेटिक जातियों की एक शाखा यह भी थी। इनका भी मूल निवास स्थान उत्तरी सेमेटिक या किश के सेमेटिक की तरह अरब का प्रदेश था। फिलीस्तीन के पुरातात्विक अवषेषों से ज्ञात होता है कि लगभग 3000 ई0पू0 के आस–पास

ये जातियाँ अपना मूल निवास अरब क्षेत्र छोड़कर 'केनान' नामक स्थान पर आकर बस गयीं, इसलिए इन्हें केनानी कहा जाने लगा। केनान में उस समय रहने वाली भूमध्यसागरीय जातियों से ये घुल–मिल गए और कालान्तर में इन्हें पश्चिमी सेमेटिक कहा गया। चूंकि ये बेबीलोनिया में रहते थे अतः बेबीलोनियन भी कहलाए। इनका मूल नाम अमरू या अमोराइट था। बेबीलोनियन संस्कृति के कर्त्ताधर्ता सुमेरियन संस्कृति के अत्यन्त निकट माने जाते हैं अतः दोनों का पारस्परिक अनुप्रेरित होना स्वाभाविक है। इनका राजनीतिक व सांस्कृतिक केन्द्र ईशिन, लारसा, बेबीलोनिया, मारी तथा असुर नगर राज्य थे।

बेबीलोन में सेमाइटों के स्वतन्त्र राज्य की स्थापना के बाद मेसोपोटामिया में नवीन युग का सूत्रपात होता है। अभी तक बेबीलोन मात्र एक प्रान्त के रूप में था तथा उसका देवता 'मर्दुक' अधिक प्रसिद्ध नहीं था, परन्तु पश्चिमी सेमाइटों ने बेबीलोन को एक महान व विशाल साम्राज्य की राजधानी होने का गौरव प्रदान किया। अब सेमाइटों के देवता 'मर्दुक' और सुमेरियन के देवता 'एनलिल' में एकता स्थापित कर दी गयी तथा कालान्तर में 'बेल–मर्दुक' नाम से उनकी पूजा लगभग समस्त पश्चिम एशिया में होने लगी।

3.1.उद्देश्य

इस इकाई से हमारा उद्देश्य बेबीलोनियन सभ्यता के विभिन्न पहलुओं को उद्घाटित करना है। इस इकाई के अन्तर्गत बेबीलोनियन सभ्यता की उत्पत्ति, विकास, विषेषताओं, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक अवस्थिति, कला व स्थापत्य तथा हम्मूराबी की विधि संहिता आदि का विस्तारपूर्वक विश्लेषण करना है। इस इकाई के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया गया है कि बेबीलोनियन सभ्यता ने किय प्रकार मेसोपोटामिया व तत्कालीन अन्य संस्कृतियों को प्रभावित किया।

3.2. राजनीतिक स्थिति

बेबीलोन के स्वतन्त्र राजवंश का संस्थापक सुमु–अबुम नामक व्यक्ति था। उसके पश्चात् क्रमश' सुमुल–इलु, जबुम, इमेरुम, अपिलसिन तथा सिन–मुवाल्लित ने शासन किया। इनमें सिन–मुवाल्लित इतिहास प्रसिद्ध शासक हम्मूरबी का पिता था। इन शासकों ने किश, सिप्पर, कूथा तथा निप्पुर नगरों पर अधिकार करके बेबीलोनियन राज्य की सीमाओं को विस्तृत किया।

3.2.1. हम्मूरबी का शासनकाल

पश्चिमी सेमाइटों की शक्ति व प्रतिष्ठा को चरमोत्कर्श तक पहुँचाने वाला

सिन–मुवाल्लित का पुत्र हम्मूराबी था। जिस समय हम्मूराबी सिंहासनारूढ़ हुआ उसके अधिकार में सिप्पर से लेकर निप्पुर तक का प्रदेश अर्थात् लगभग सम्पूर्ण अक्काद था। हम्मूराबी महत्त्वाकांक्षी नरेश था, परन्तु उसके मार्ग में दो बाधाएँ थीं– एलम और ईशिन का राज्य। उसके राज्यारोहण के पूर्व ही एलमी नरेश कुदुर मावक ने दक्षिणी सुमेर पर अधिकार कर लिया था। अब उसका पुत्र रिमसिन लारसा को केन्द्र बनाकर सम्पूर्ण सुमेर और अक्काद को जीतने का स्वप्न देख रहा था। ईशिन का राजवंश उस समय हम्मूराबी और रिमसिन दोनों से अपनी रक्षा करने के प्रयास में जुटा हुआ था। अतः बेबीलोनियन साम्राज्य की स्थापना के लिए इन दोनों ही शक्तियों को परास्त करना आवष्यक था।

हम्मूराबी ने अपने शासन के प्रारम्भिक 6 वर्ष आन्तरिक सुधार, सैनिक तैयारी व मन्दिरों के निर्माण में लगाया। इसके बाद उसने सैनिक अभियान की तरफ स्वयं को केन्द्रित किया। हम्मूराबी के सैन्य अभियानों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। पहले भाग में शासन के 7वें से 11वें वर्ष के बीच के सैनिक अभियान तथा दूसरे भाग में शासन के 30वें वर्ष तथा उसके बाद किए गए अभियान को रखा जा सकता है। हम्मूरबी ने शासन के 7वें से 11वें वर्ष के बीच में एरेक तथा ईशिन राज्य को जीतने का प्रयास किया। लेकिन इसके कारण उसे एलम व लारसा के शासक रिमसिन से भी लड़ना आवष्यक हो गया। इस संघर्ष में हम्मूरबी की पराजय हुई। रिमसिन ने ईसिन, निप्पुर और एरेक नगरों पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार सम्पूर्ण मध्यवर्ती और दक्षिणी बेबीलोनिया रिमसिन के अधिकार में चला गया। अब मैदान में दो ही शक्तियाँ बचीं– दक्षिण में रिमसिन के नेतृत्व में एलमी राज्य और उत्तर में हम्मूरबी द्वारा शासित बेबीलोन। हम्मूराबी ने इसके बाद लगभग 20 वर्ष तक अपने विरोधीयों को परास्त करने का कोई प्रयास नहीं किया। उसके शासनकाल के 11वें से 30वें वर्ष की सामरिक गतिविधियों पर उसके अभिलेखों से भी कोई सूचना नहीं प्राप्त होती है। एक यहूदी अनुश्रुति के अनुसार सम्भवतः (हम्मूराबी) ने कुछ समय तक एलम के शासक रिमसिन की अधीनता भी स्वीकार किया था, फिर भी निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

हम्मूराबी ने दूसरा विजय अभियान अपने शासनकाल के 30वें वर्ष में प्रारम्भ किया। इस बार उसे पूर्ण सफलता मिली उसने एलम के शासक रिमसिन को पराजित कर लारसा पर अधिकार कर लिया। उसके विधि संहिता (कोड) में विजित राज्यों की सूची मिलती है। इन राज्यों में निप्पुर, एरिडु, सिप्पर, लारसा, एरेक, ईशिन, किश, कूथा, लगश, अक्काद, असुर तथा निनेवेह आदि का उल्लेख किया जा सकता है। उसने सम्भवतः सीरिया तथा फिलीस्तीन पर भी

विजय प्राप्त की थी।

3.2.2. हम्मूराबी के उत्तराधिकारी व उनका पतन

हम्मूराबी के पश्चात् उसका पुत्र सक्सु–इलुन (लगभग 2080–2043 ई0पू0) शासक बना। उसने पिता की परम्पराओं को बनाए रखते हुए तीन वर्ष तक कुशलतापूर्वक शासन किया परन्तु इसके बाद कसाइट जाति के आक्रमण से सम्सु–इलुन की सत्ता से पकड़ क्षीण होने लगी। सम्सु–इलुन का पुत्र अबि–एशु (लगभग 2042–2014 ई0पू0) था। उसके समय साम्राज्य की शक्ति और कम हो गयी। इस वंश का अन्तिम महान शासक अबि–एशु का पुत्र अम्मि–दिताना (2014–1977 ई0पू0) था। उसने सार्वजनिक हित के कार्य करने के अतिरिक्त समुद्र–तट राज्य के विद्रोह भी कुछ सफलता प्राप्त की थी। लेकिन उसका पुत्र अम्मि–जदुग (1977–1956 ई0पू0) अयोग्य शासक था वह पिता द्वारा प्राप्त सफलता को स्थायी बना सकता। अम्मि–जदुग के बाद उसका पुत्र शम्शु–दिताना (1956–1925 ई0पू0) गद्दी पर बैठा, जो इस वंश का अन्तिम शासक था। इसके समय में अनातोलिया के हित्तियों ने काफी लूटपाट मचायी। उन्होंने बेबीलोन शहर को नष्ट कर दिया और बहुत से देवी–देवताओं की मूर्तियाँ भी उठा ले गए। हित्तियों के आक्रमण से बेबीलोनिया में अव्यवस्था फैल गयी जिसका लाभ उठाकर केसाइट लोगों ने 1763 ई0पू0 में बेबीलोनिया पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार हम्मूरबी के वंश का पतन हो गया।

हम्मूरबी बेबीलोन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण शासक था। इसने बेबीलोनियन सम्राट को असीमित शक्तियाँ प्रदान की। हम्मूरबी ने नगरों के महत्व को समाप्त कर साम्राज्य के महत्व पर जोर डाला। बेबीलोनियन सभ्यता के काल में सर्वप्रथम न्यायालयों की स्थापना की गयी, जिसका श्रेय भी हम्मूरबी को ही दिया जाता है।

3.3. सामाजिक स्थिति

बेबीलोनियन सभ्यता में समाज तीन वर्गों में विभक्त था। पहला उच्च वर्ग था जिसे **'आमेलू'** कहते थे। इस वर्ग में मन्त्री, अधीनस्थ शासक, पुजारी, उच्चाधिकारी व राजवंश के लोग आते थे। दूसरा मध्यम वर्ग था जिसे **'मशकीनू'** कहते थे। इस वर्ग में व्यवसायी, छोटे व्यापारी और किसान आदि आते थे। तीसरा निम्न वर्ग था, जिसे **'अरद'** कहते थे, इस वर्ग में दास आते थे।

बेबीलोनिया में संयुक्त परिवार प्रणाली प्रचलित थी और पुत्र पिता का ही

व्यवसाय अपनाता था। कानूनन एक ही विवाह वैध था परन्तु उप–पत्नी के रूप में अन्य स्त्रियों को रखा जा सकता था। विवाह में लड़की को जो दहेज दिया जाता था उसे **'शेरक्टि'** कहते थे। दहेज पर आजीवन स्त्री व मृत्यु के बाद बच्चों का अधिकार होता था। निसन्तान मृत्यु होने पर स्त्री के पिता या परिवार को दहेज वापस हो जाता था। दूसरा जीवनसाथी चुनने के लिए स्वतन्त्र थे।

बेबीलोनिया में स्त्रियों की दशा के विषय में कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। उनका विषेष सम्मान भी था और नैतिकता से गिरने को भी मजबूर किया जाता था। वेश्यावृत्ति इतनी थी कि जितनी अन्य किसी समकालीन सभ्यता में नहीं थी। इसके विपरीत बिल ड्यूरेण्ट, वेल्स तथा सेवाइन जैसे विद्वानों का मानना है कि नारी को काफी सम्मान प्राप्त था। वे शिक्षा प्राप्त करती थीं और सामाजिक उत्सवों में भाग लेती थीं। उन्हें पुरुषों के बराबर अधिकार था तथा वे व्यापार कर सकती थीं। वे प्रशासकीय सेवाओं में भर्ती हो सकती थीं। स्त्रियों को न्याय सम्बन्धी भी कुछ अधिकार दिए गए थे। वे अदालतों में गवाही दे सकती थीं तथा अपने दासों को बेंच सकती थीं।

यहाँ के लोग तरह–तरह के आभूषण, श्रृंगार प्रसाधन तथा विलासिता की वस्तुओं का प्रयोग करते थे। उच्च वर्ग की महिलाएँ चेहरे पर लाली लगाती थीं तथा सोने की बालपिन का प्रयोग करती थीं। स्त्रियाँ चुस्त कपड़े पहनती थीं। वे नाक, कान, कलाई और उँगलियों में स्वर्ण आभूषण पहनती थीं। मध्यम वर्ग की स्त्रियाँ सोने व चाँदी के आभूषण तथा निम्न वर्ग की स्त्रियाँ मिट्टी के रंगीन आभूषण पहनती थीं। पुरुष लुंगी पहनते थे तथा हाथ में धनुष लेकर घूमते थे। स्त्री तथा पुरुष दोनों आभूषण धारण करते थे। आभूषणों में कान का कुण्डल, गले का हार, हाथ का कंगन और अँगूठी प्रमुख हैं। प्रसाधन के रूप में लाली, सुरमा, आँखों में अंजन, इत्र, फुलेल, शीशा, कंघा, कई प्रकार के उबटन आदि का प्रयोग किया जाता था। पुरुषों में दाढ़ी एवं बाल रखने की प्रथा थी।

भोजन में मांसाहार तथा शाकाहार दोनों का प्रचलन था। शाकाहार में दूध, अनाज तथा दालें एवं फल आदि खाया जाता था जबकि माँसाहार में मछली तथा माँस का सेवन होता था।

मनोरंजन के लिए संगीत तथा नृत्य का आयोजन होता था। देवालयों में धार्मिक उत्सव मनाए जाते थे। इनमें संगीत पर वेश्याएँ नृत्य करती थीं। बाँसुरी, ढोल आदि वाद्य यन्त्रों का प्रयोग किया जाता था।

पिता का स्थान सर्वोपरि था तथा पुत्र आज्ञाकारी होते थे। परिवार में माता–पिता, स्त्री–पुरुष आदि सभी सदस्य अनुशासित थे। विवाह,

विवाह–विच्छेद, गोद लेना, उत्तराधिकार तथा बालकों के पालन–पोषण से सम्बन्धित नियम निश्चित थे। समाज में जुलाहा, बढ़ई, रंगरेज, ईंट बनाने वाले, सुनार, जौहरी, मूर्तिकार, दर्जी, कुम्हार, ठठेरा और शराब बनाने वाले वर्गों का अस्तित्व आ चुका था। ये सभी अपने कार्य में उच्च मानदण्डों का पालन करते थे। सड़कें व नहरें बेगार द्वारा बनायी जाती थीं। देवदासियों को विवाह का अधिकार था परन्तु वे सन्तानोत्पत्ति नहीं कर सकती थीं। विवाहित स्त्रियाँ भी देवदासी बन सकती थीं परन्तु उन्हें सन्तानोत्पत्ति का अधिकार नहीं था।

3.4. आर्थिक स्थिति

बेबीलोनियन सभ्यतावासियों की अर्थव्यवस्था कृषि, पशुपालन व उद्योग–धन्धों पर आधारित थी।

3.4.1. कृषि

विश्व की प्राचीन सभ्यताओं की भाँति बेबीलोनियन सभ्यतावासियों का मुख्य व्यवसाय कृषि था। अधिकांश भूमि सम्राट्, सामन्तों एवं धनी व्यापारियों व पुरोहितों की थी जिस पर छोटे कृषक तथा गुलाम खेती करते थे। भूमि उपजाऊ थी व अनाज की पैदावार पर्याप्त थी। यहाँ की मुख्य पैदावार अन्न, खजूर, जैतून व अंगूर आदि था।

हेरोडोटस के अनुसार, "बेबीलोन अन्न उत्पन्न करने में सबसे अधिक समृद्ध था। कृषि योग्य भूमि पर लगान लिया जाता था। यदि बाढ़, तूफान या सूखे से फसल को नुकसान पहुँचता, तो किसान को अपनी बीवी व बच्चे बेचकर लगान चुकाना पड़ता था। सामान को गाड़ियों द्वारा शहरों की मण्डियो में लाया जाता था।"

सिंचाई के लिए नहरों की व्यवस्था की गयी थी। कृषि के अतिरिक्त यहाँ पर बागबानी व पशुपालन का भी व्यवसाय विकसित था। लोग गाय, भेड़, बकरी, सुअर, गधा व ऊँट पालते थे।

3.4.2. उद्योग–धन्धे

उद्योग व व्यापार में व्यापक प्रगति हुई। यहाँ के कारखानों में काम करने वाले मजदूरों ने अपना संघ बना लिया था। व्यापार काफिलों में होता था जिसकी सुरक्षा सरकार करती थी। यहाँ पर माल तैयार करने, खरीदने व बेचने के नियम बने हुए थे। पुरोहित ब्याज पर धन देते थे। उस समय देवालयों में काफी धन जमा था, अतः वे बैंकों का काम करते थे। बैंक व्यवस्था का सर्वप्रथम

विकास बेबीलोन में ही हुआ। प्रत्येक ऋण लिखित शर्तों पर दिया जाता था। राज्य की ओर से नकदी पर 20 प्रतिशत तथा माल पर 35 प्रतिशत की दर से ब्याज लिया जाता था।

बेबीलोनिया में विभिन्न प्रकार के उद्योग–धन्धे जैसे– वस्त्रोद्योग, चर्मोद्योग, भाण्डोद्योग एवं अस्त्र–शस्त्र उद्योग प्रचलित थे। वस्त्र निर्माण में सूती व ऊनी वस्त्र बनाया जाता था। धातुओं की सहायता से अस्त्र–शस्त्र, बर्तन तथा आभूषण बनाए जाते थे। लोहे का ज्ञान था पर इसकी अनुपलब्धता थी। खजिनों में स्वर्ण, रजत, ताम्र, कांस्य एवं शीशा आदि का प्रयोग किया जाता था।

व्यापार काफी विकसित था। वह आर्मीनिया से ताँबा, सीरिया और ईरान से टिन, एलम से चाँदी, सीरिया से देवदार, मिस्र से सोना, अरब से मसाले तथा भारत से सागवान की लकड़ी तथा बहुमूल्य रत्नों का आयात करता था। जबकि यहाँ से मिट्‌टी के सुन्दर बर्तन, हथियार, सूती कपड़े, औजार, सुगन्धित द्रव्य, चमड़े की वस्तुएँ तथा खाद्यान्न आदि का निर्यात किया जाता था।

3.5. धार्मिक स्थिति

बेबीलोनिया के धर्म पर सुमेरिया के धर्म का प्रभाव था। अनेक सुमेरियन देवी–देवताओं को बेबीलोनियन देव समूहों में प्रतिष्ठा मिली, परन्तु बहुत से सुमेरियन देवी–देवताओं के स्थान पर बेबीलोनियन देवी–देवता प्रतिष्ठित हुए। सुमेरियन देवता समूह के एनलिल, एनकी, अनु, नन्नार आदि देवताओं को प्रतिष्ठा मिली जिनमें एनलिल की प्रतिष्ठा सर्वाधिक थी। अब इन्हें 'बेल' नाम देकर इनका समीकरण बबीलोनियन 'मार्दुक' से किया गया। हम्मूरबी के काल में 'बेल मार्दुक' नाम से ये देवता राष्ट्रीय देवता के रूप में प्रतिष्ठित हुए। इस प्रकार मार्दुक ने एनलिल का स्थान ग्रहण कर लिया। इनकी पत्नी के रूप में सर्पेनिटम का उल्लेख मिलता है। मातृशक्ति के रूप में इश्तर देवी की प्रतिष्ठा थी। इनकी पूजा अलग–अलग स्थानों पर अलग नामों से होती थी। जैसे– निनिव की इश्तर, अरवेला की इश्तर आदि। तामुज नामक देवता वनस्पति का देवता था। यह नवजीवन का प्रतीक था। यहाँ प्रकाश देवता के रूप में 'शमरा' शक्तिशाली था। चन्द्रदेव को अनु का पुत्र माना जाता था। नर्गल एवं दुमुजि का सम्बन्ध वनस्पति जगत एवं भू–गर्भ दोनों से था। नर्गल महामारी का देवता माना जाता था। 'अदद' नामक देवता विद्युत, गर्जन एवं तूफान का देवता माना जाता था। निनुर्त युद्ध का देवता था। इसकी पत्नी गुल थी। निगिर्सु लगश नगर के स्थानीय देवता थे।

बेबीलोनियन देवताओं का स्वरूप सुमेरियन देवताओं की ही भाँति था। वे

मनुष्य के समान शरीर वाले तथा भोजन एवं विहार करने वाले होते थे। इनकी उपासना मन्दिरों व घरों में की जाती थी। भय तथा स्वार्थ के कारण ये देवोपासना करते थे। देवता को प्रसन्न करने के लिए मधु, घी, तेल, दूध, मक्खन, मछली, सब्जियाँ इत्यादि की भेंट चढ़ायी जाती थी। इनके धर्म में मंत्र–तंत्र तथा शकुन–अपशकुन का महत्त्वपूर्ण स्थान था। भूत–प्रेत से बचने के लिए ये ताबीज, देव मूर्तियाँ व मालाएँ धारण करते थे

मृत्यु के सम्बन्ध में इनकी धारणा थी कि मनुष्य मरणधर्मा है। इनका मानना है कि सदाचारी को भी थोड़े से दोष के लिए अल्प समय के लिए दण्ड मिलता था। देवताओं के विषय में ये मानते थे कि उन्हें समझा नहीं जा सकता। वे भाग्य के निर्माता होते हैं अतः भाग्य अनिश्चित होता है। यही उनकी दार्शनिक मान्यता थी। पारलौकिक जीवन में भी इनकी आस्था थी इसलिए शवों को नहला–धुलाकर शव पेटिका में रखकर अन्त्येष्टि संस्कार करते थे। शवों के साथ उनकी प्रिय वस्तुएँ भी रख दी जाती थीं।

3.6. कला एवं स्थापत्य

बेबीलोनियन कला एवं स्थापत्य में कम रुचि रखते थे, इसलिए उनकी कलात्मक उपलब्धियाँ नगण्य हैं। भवन निर्माण में ईंटों का प्रयोग किया जाता था तथा छत का निर्माण गीली मिट्टी से किया जाता था। भवन प्रायः एक मंजिले व कभी–कभी दो मंजिले भी बनते थे। भवननों में कमरों की पर्याप्त संख्या होती थी तथा भवन के दरवाजे सड़कों की ओर न खुलकर आँगन की ओर खुलते थे। दीवारों में खिड़कियों का अभाव है।

जिगुरतों का निर्माण सुमेरियन जिगुरतों की ही योजना पर किया जा रहा था। एक आधार वेदिका के ऊपर इनका निर्माण होता था तथा ऊपर की ओर इसकी मंजिलें क्रमशः छोटी होती जाती थीं। ऊपर जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी होती थीं। जिगुरतों में पूर्व की तुलना में अब मंजिलों की संख्या बढ़ गयी थी। बारसिप्पा के जिगुरत से सात तल्ले प्राप्त हुए हैं। प्रत्येक मंजिल किसी न किसी ग्रह से तादात्म्य रखती थी जिसका विषेष रंग होता था।

	ग्रहों का नाम	मेसोपोटामियन नाम	प्रतीक रंग
(सबसे ऊपर)	सूर्य	शमश	सुनहला
	चन्द्र	सिन	रूपहला

	म्ंगल	नर्गल	लाल
	बुध	नेबु	नीला
	बृहस्पति	मार्दुक	बैंगनी
	शुक्र	इश्तर	श्वेत
(सबसे नीचे)	शनि	निनिवि	काला

हम्मूरबी के काल में मारी व किश से भी जिगुरत प्राप्त हुए हैं।

मूर्तिकला पर भी परम्परा का प्रभाव है जिसके कारण मौलिकता का अभाव है। प्राप्त मूर्तियों की मुखाकृतियाँ लगभग एक–सी हैं। शासक को लम्बे, चौड़े व गठीले बदन का दिखाया गया है। मूर्तियों में हम्मूरबी का शीश तथा मारी से प्राप्त उर्वरता की देवी की मूर्ति उल्लेखनीय है।

भित्ति चित्र में बेबीलोनियन कलाकारों ने कुछ निपुणता पायी है। विधि संहिता को देवता शमश से हम्मूरबी द्वारा ग्रहण करने वाले दृश्य को काफी कुशलता से दीवार पर उकेरा गया है।

मुहरों (सील) का भी निर्माण किया जाता था। संगीत कला का प्रचलन था। वाद्य यन्त्रों में बाँसुरी, बीन, सारंगी, ढोल, तुरही, झांझ इत्यादि का प्रयोग किया जाता था।

3.7. लिपि एवं साहित्य

सुमेरियन लिपि की भाँति बेबीलोनिया में भी कीलाक्षर लिपि का प्रचलन था किन्तु इनके आकार–प्रकार में परिवर्तन तथा परिवर्द्धन हुआ तथा इसकी लोकप्रियता और बढ़ गयी। अब इसे राजाश्रय भी प्राप्त हुआ था तथा साहित्यिक कृतियों, शासकीय कार्यों में इसका प्रयोग होता था।

बेबीलोनियावासियों की साहित्यिक कृतियों में 'गिल्गिमेश महाकाव्य' का उल्लेख किया जा सकता है। एक अन्य कृति जगत उत्पत्ति के आख्यान से सम्बन्धित है जिसका नाम 'एनुमा–एलिश' है। अन्य प्रसिद्ध बेबीलोनियन आख्यानों में 'भाग्य लेख', 'एटन गड़रिये की कथा' एवं 'आदप कछुए की कथा' प्रमुख हैं।

प्रमुख दर्शनिक कृतियों में 'लुडलुल बेल नेमकी' या 'बेबीलोनियन जॉब' है। दार्शनिक कृतियों में 'द बेबीलोनियन थिऑडिसी' का उल्लेख किया जा सकता है जिसमें विपत्ति में पड़े एक व्यक्ति तथा उसके मित्र के बीच का संवाद है। एक अन्य कृति 'डायलाग ऑफ पेसिमिज्म' में स्वामी तथा दास के बीच का संवाद है। उद्देश्यपरक नीति साहित्य के रूप में 'कौंसिल ऑफ विज्डम' की चर्चा की जा सकती है। इसमें पिता अपने पुत्र को शिक्षा दे रहा है।

3.8. हम्मूरबी की विधि संहिता

एक प्रबल विजेता एवं साम्राज्य निर्माता के रूप में उसने विस्तृत साम्राज्य का निर्माण किया। उसकी प्रसिद्धि का दूसरा प्रमुख कारण उसकी विधि संहिता (कोड) है, जो लगभग 8 फीट ऊँचे प्रस्तर स्तम्भ पर 3600 पंक्तियों में उत्कीर्ण हैं। इसमें 285 धाराएँ हैं। पाषाण स्तम्भ पर हम्मूरबी सूर्य भगवान से विधि का दान लेता हुआ दिखाया गया है। प्रारम्भ में इसे बेबीलोन के प्रधान देव 'मर्दुक के मन्दिर' में स्थापित किया गया था। एलम के शासक इसे सूसा उठा ले गए थे जहाँ से यह खण्डित अवस्था में फ्रांसीसी पुरातत्ववेत्त 'द मोर्गा' को 1901–02 ई0 में प्राप्त हुआ। वर्तमान में यह लूब्रे संग्रहालय (पेरिस) में सुरक्षित है।

हेज और मून नामक विद्वानों ने कहा है कि "हम्मूरबी का नाम उसकी नहरों तथा उसके द्वारा निर्मित देवालयों की अपेक्षा उसकी विधि संहिता के कारण जानते हैं।"

हम्मूरबी ने बेबीलोनिया में एक शासन तन्त्र स्थापित करने के लिए अपने शासनकाल के अन्तिम दो–तीन वर्षों में एक विधान संहिता की स्थापना की। इसके स्रोत पूर्व बेबीलोनियन स्थानीय कानून ही थे जिन्हें उसने सम्पूर्ण राष्ट्र में लागू किया। इनमें वर्णित धाराओं में अब प्राप्त 282 धाराओं को निम्न अध्यायों– वैयक्तिक, सम्पत्ति, व्यापार, वाणिज्य, अपराध, परिवार, परिश्रम तथा ऋण आदि में विभक्त किया जा सकता है। उत्खनन से कुछ मृदा पट्टिकाएँ भी प्राप्त हुई हैं जिनमें उसके पत्र, आज्ञाएँ तथा निर्णय उत्कीर्ण हैं, जिनका प्रयोग न्यायालयों में किया जाता था। हम्मूरबी की विधि संहिता के कुछ विधान निम्न प्रकार हैं।

दण्ड विधान– दण्ड के विधान अपराध के आधार पर अलग–अलग थे–

1. कुछ अपराध जैसे राजप्रासाद व मन्दिरों में चोरी, नाबालिग से लिखा–पढ़ी द्वारा उसकी सम्पत्ति हथियाना, चोट पहुँचाने पर मृत्यु हो जाना, अपराध न सिद्ध कर पाने पर, सेना में भर्ती के प्रति अनिच्छा जताने पर मृत्यु दण्ड दिया जाता था।

2. अन्य अपराधों में विभिन्न प्रकार के दण्ड प्रचलित थे, जैसे– किसी स्थान पर चोरी से होने वाली धन की हानि की पूर्ति स्थानीय शासन द्वारा किया जाता था।

3. यदि कोई पुत्र अपने पिता को मारता था तो उसके हाथ काट लिए जाते थे।

4. कर्जदार यदि कर्ज न चुका पाए तो उससे तीन वर्ष तक कार्य लिया जाता था।

5. समान सामाजिक स्तर में किसी व्यक्ति द्वारा यदि किसी व्यक्ति का अंग विच्छेद किया जाता था तो अपराधी का भी वही अंग विच्छेद किया जाता था।

6. चिकित्सक के द्वारा ईलाज के दौरान रोगी की मृत्यु हो जाने पर चिकित्सक का हाथ काट लिया जाता था।

उपर्युक्त विवेचन से हम्मूरबी के दण्ड विधान के कठोरतम स्वरूप का पता चलता ह। उसके राज्य में दण्ड निर्धारण का स्वरूप 'जैसे को तैसा' के सिद्धान्त पर आधारित था तथा सामाजिक प्रतिष्ठा का भी ध्यान रखा जाता था।

न्याय विधान–

हम्मूरबी ने मन्दिरों से पृथक् राजकीय न्यायालयों की व्यवस्था की। शासक का न्यायालय सर्वोच्च था। न्यायालय में वादों की संख्या कम करने के लिए आरोप सिद्ध न होने पर वादी को कठोर दण्ड देने की व्यवस्था थी। गाँवों में वयोवृद्ध एवं पंच ही होते थे। एक न्यायालय दूसरे न्यायालय के अधिकारों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता था।

विधि संहिता के अनुसार बेबीलोनिया का समाज तीन वर्गों में विभक्त था। प्रथम वर्ग (उच्च वर्ग या आमेलू) में कठोर दण्ड व्यवस्था थी। तीनों वर्गों के कर्त्तव्यों को निश्चित किया गया था। दूसरा वर्ग सर्वसाधारण या 'मशकीनू' तथा तीसरा वर्ग दास या 'अरद' था। दासों की स्थिति सुधारने के लिए हम्मूरबी ने महत्त्वपूर्ण कार्य किए।

सामाजिक समन्वय एवं सन्तुलन की ही भाँति हम्मूरबी अपनी विधि संहिता के माध्यम से आर्थिक संगठनों जिनमें कृषि, वाणिज्य–व्यापार व उद्योग–धन्धे प्रमुख हैं, पर भी विषेष ध्यान देता था। कृषि की व्यवस्था राज्य की ओर से की जाती थी। व्यापारिक गतिविधियों पर विधि संहिता के अनुसार

नियन्त्रण रखा जाता था। व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा का ध्यान रखा जाता था।

हम्मूरबी ने विधि संहिता के माध्यम से प्रशासनिक ढाँचे में महत्त्वपूर्ण सुधार किए। विधि संहिता के माध्यम से उसने सम्राट् के पद की प्रतिष्ठा स्थापित की तथा विधि का शासन स्थापित किया। प्रथम बार न्याय (विधि) को धर्म से पृथक् किया गया। आर्थिक विकास के लिए राजकीय नियन्त्रण के अधीन अनेक जनहित के कार्य किए गएं

हम्मूरबी के बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व का मूल्यांकन करने से स्पष्ट है कि वह एक विजयी सम्राट्, योग्य प्रशासक, जनहित का परम चिन्तक, महान विधि निर्माता व बेबीलोनिया की महानता का संस्थापक था।

क्रिस्टोफर डाउसन के अनुसार, "सभी दृष्टियों से हम्मूरबी शासनकाल में बेबीलोनिया भौतिक सभ्यता के शिखर पर पहुँच गया था, जिसे एशिया में कभी भी पीछे नहीं किया जा सका।"

सेवाइन के शब्दों में, "वास्तव में बेबीलोनिया ने ज्ञान के सागर पर अज्ञात मार्गों को अंकित किया। उनके प्रबुद्ध लोग आने वाली कई शताब्दियों के विद्वानों के लिए मार्गदर्शक संकेत बने रहे।"

3.8.बोध प्रश्न

1. बेबीलोनियन सभ्यता की मुख्य विषेषताओं पर प्रकाश डालिए।

2. हम्मूरबी की विधि संहिता पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

3.9. सन्दर्भ ग्रन्थ

1. श्रीराम गोयल, विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ,वाराणसी, 2011

2. वी0 के0 पाण्डेय, प्राचीन विश्व की सभ्यताएँ, इलाहाबाद

इकाई–4 असीरिया की सभ्यता

इकाई की रूपरेखा

4.0. प्रस्तावना

4.1. उद्देश्य

4.2. राजनीतिक स्थिति

4.3. सामाजिक स्थिति

4.4. आर्थिक स्थिति

4.5. आर्थिक स्थिति

4.6. कला व स्थापत्य

4.7. बौद्धिक उपलब्धियाँ

4.8. बोध प्रश्न

4.9. सन्दर्भग्रन्थ

4.0.प्रस्तावना

पश्चिमी एशिया में दज़ला नदी के ऊपरी भाग पर असीरिया का एक छोटा प्रदेश अवस्थित था। यहाँ सर्वप्रथम सुमेरिया राज्य बना, जिसका पतन तीन सहस्त्र वर्ष ई0पू0 में हो गया। तत्पश्चात् बेबीलोनिया का पूव साम्राज्य बना जो 1595 ई0पू0 के लगभग समाप्त हो गया। इसके अनन्तर असीरिया के साम्राज्य का उदय हुआ। पर्वतीय प्रदेश होने के कारण यहाँ की जलवायु अत्यधिक शक्तिवर्द्धक थी। ऐसा माना जाता है कि असीरियन जाति पहले अरब के शुष्क प्रदेशों में निवास करती थी। 3000 ई0पू0 के पूर्व इनका एक समुदाय दज़ला नदी के किनारे असुर नामक स्थान पर आकर बस गया था। अतः इनका राजनीतिक और सांस्कृतिक क्रिया–कलापों का केन्द्र 'असुर' नामक नगर ही रहा। यही कारण है कि इन्हें असीरियन नाम से सम्बोधित किया जाने लगा। ये यायावर थे तथा इनकी अपनी जमीन बंजर एवं बलुई थी इसलिए यह सम्पन्न समुदायों को लूटते थे, यही इनका पेशा बन गया था। ये अत्यन्त क्रूर व निर्दयी स्वभाव के हो गए थे। इनकी सभ्यता का केन्द्र असुर, कालाख, निनवेह, आखेला था। बारहवीं शताब्दी ई0पू0 के आरम्भ से लेकर सातवीं शताब्दी ई0पू0 के अन्तिम पद में निनवेह के पतन तक 'निकट–पूर्व' का इतिहास मुख्य रूप से

असीरियन साम्राज्य का इतिहास रहा।

4.1.उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य दज़ला फ़रात नदी के मध्य विकसित असीरियन सभ्यता के विषय में ज्ञान प्राप्त करना है। उसके उत्थान–पतन, बौद्धिक उपलब्धियों व कला–स्थापत्य पर प्रकाश डालना है।

4.3. राजनीतिक स्थिति

कानून व्यवस्था शक्ति की स्थापना हेतु असीरियनों ने साम्राज्यिक सिद्धान्त को ही महत्ता दी तथा असुर को अपना राजनीतिक केन्द्र बनाकर शक्ति विस्तार में संलग्न हो गए। धीरे–धीरे उनकी शक्ति विकसित होती गयी और उन्हें कई छोटे–छोटे नगर राज्यों की स्थापना में सफलता प्राप्त हुयी। 2000 ई0 पू0 के आरम्भ मे उन्होंने बेबिलोनियन शासक हम्मूरावी की अधीनता को स्वीकार कर लिया। मितन्नियों के काल में भी वे लुप्त–सा प्रतीत होने लगे थे।

मितन्नी शक्ति के नष्ट होने पर असीरियन असुर उवैलित प्रथम के नेतृत्व में अपनी राजनीतिक गतिविधियाँ तीव्र की। तत्पश्चात् एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की। असीरियन साम्राज्य की अपनी कुछ प्रशासनिक विषेषताएँ थीं, जिनका विवरण निम्नलिखित हैं–

सम्राट्– असीरिया एक सैनिक राज्य था तथा उसकी सत्ता सैन्य बल पर निर्भर थी। ऐसे में सम्राट् के अधिकार असीमित थे। सम्राट् अस्सुर देव का पुत्र माना जाता था, इनके अनुसार देश में एक ही राजा का अस्तित्व सम्भव है। जो दैवीय शक्ति का प्रतीक माना जाता था, जिसे ये लोग 'लिम्मू' भी कहते थे। राजा की शक्ति असीमित तो थी परन्तु उस पर पुरोहित का प्रभाव था। सम्राट् उसके विरुद्ध मत नहीं प्रकट कर सकता था। असीरिसन साम्राज्य में प्रशासन की सुविधा के लिए शासन को निम्नलिखित स्वरूप में वर्गीकृत किया गया था।

सम्राट् को असुर देव का प्रतिनिधि माना जाता था। कुछ कार्य जैसे युद्ध एवं उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति के समय ईश्वर से प्रार्थना की जाती थी। शासक की सहायता के लिए सेनानायक (वर्तनु) होता था। रैब शाकी नामक अन्य सम्राट् के सहायक के विषय में साक्ष्य मिले हैं। इसके अतिरिक्त नगिर–एकाली, जो राजप्रासाद का अधीक्षक था। अबरक्कु एवं शक्नु नामक तीन अधिकारियों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।

असीरिया का विस्तृत साम्राज्य प्रांतों में बँटा हुआ था। यहाँ शासक द्वारा नियुक्त गवर्नर शासन करते थे। प्रांतों का निर्धारण तीन श्रेणियों में किया गया था। करद प्रांत, करद बेगार प्रांत, केन्द्र प्रभात परिधि प्रांत। इन प्रांतों के गवर्नर को 'शक्नु' कहते थे। **करद प्रांत** वे प्रांत जिन्हें प्रतिवर्ष केन्द्र को निश्चित मात्रा में कर देना पड़ता था। करद–बेगार वे प्रांत जिन्हें कर के साथ बेगार भी देना पड़ता था। ऐसे राज्यों में शासक का एक प्रतिनिधि भी रहता था, जो कर व्यवस्था को नियंत्रित करने का कार्य करता था। केन्द्र प्रभाव परिधि जो कि तीरा प्रांत था, वे प्रांत जो केन्द्रीय शासन के प्रत्यक्ष प्रभाव में रहते थे।

इन प्रांतों के शासक की नियुक्ति राज–परिवार से पृथक व्यक्तियों की होती थी। इन्हीं पर प्रांत के शासन संचालन की पूरी जिम्मेदारी होती थी। केन्द्रिय शासक गुप्तचरों के माध्यम से इन प्रांतों के शासन की जानकारी रखता था। तिग्लैथपिलीशर तृतीय ने इन प्रांतों को कई छोटे–छोटे जिलों में बाँट दिया था, जिसे पयाती कहा जाता था। पयाती स्वामी को बेल–पखात कहते थे। शासक प्रांत के गवर्नर तथा बेलपखती के मध्य पारस्परिक सम्पर्क बनाये रखने के लिए राजदूत नियुक्त किए गए थे। भार शिप्री नामक ऐसे ही एक दूत का उल्लेख मिलता है। करबुतु गुप्त सन्देश भेजने वाले अधिकार होते थे।

असीरियन अर्थव्यवस्था मुख्यतः करों पर आधारित थी। साक्ष्यों के माध्यम से स्पष्ट होता है कि इनकी कर प्रणाली अत्यन्त कठोर थी। प्रांतपतियों एवं अधिकारियों के कर्त्तव्यों में कर संग्रह का कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता था। जो शासक पराजित हो जाता था, उसके द्वारा तमर्तु तथा उपराज्यों द्वारा भी कर दिया जाता था। उन करों में 'मन्दतु' नामक कर प्रमुख था।

असीरियन विधि संहिता सम्बन्धित लेख कल–ऊँट–शेरकात से प्राप्त हुए हैं। इस विधि संहिता में व्यापारियों की सुविधा के लिए बहुत से कानून मिलते हैं। यदि कोई व्यक्ति लिखित अनुबन्ध करने और धन लेने के पश्चात् उसे तोड़ने का प्रयत्न करता था तो उसे धन का दस गुना देवता के मन्दिर में जमा करना पड़ता था और मन्दिर से जुड़ी अन्य सेवाएँ भी देनी होती थीं। कल–ऊँट–शेरकात से प्राप्त लेख जिसमें तीन तख्तियों पर असीरिया के प्राचीनतम कानूनों की निन्यानबे धाराएँ उत्कीर्ण हैं। प्रथम स्त्रियों से सम्बन्धित है, जिसके अन्तर्गत कुल 60 अनुच्छेद हैं। द्वितीय में भूमि व्यवस्था से सम्बन्धित इकत्तीस अनुच्छेद तथा तृतीय में विश्वासघात से सम्बन्धित नियम हैं जो खण्डित अवस्था है।

असीरियन सभ्यता में भ्रूण हत्या एवं अप्राकृतिक व्यसन पर मृत्यु दण्ड का

प्रावधान था। इसके अतिरिक्त कठिन परिश्रम लेना, कोड़े मारना, अंग–भेद, शूली चढ़ाने, सिर काटने जैसे दण्ड प्रचलित थे। यहाँ का न्याय विधान भी बेबिलोनिया की तुलना में कठोर एवं निर्मम था।

असीरियन साम्राज्य के निर्माण में सैन्य तत्व की महत्वपूर्ण भूमिका रही, इसलिए नियमतः यहाँ प्रत्येक नागरिक को अनिवार्य रूप से सेना में भर्ती होना पड़ता था। यहाँ दो प्रकार की सेना थी, एक पर शासक का पूर्ण अधिकार था जो केन्द्रीय सेना थी। दूसरी सेना प्रांतपतियों की सेना थी, जिन पर प्रांतों की सुरक्षा का भारत था। असीरिया की सेना के तीन प्रमुख अंग थे– पदाति, अश्वारोही तथा रथारोही। सैनिक युद्ध में लोहे की तलवार, विशाल धनुष, ढाल, धातु निर्मित रक्षा कवच, दीर्घप्रास, भित्ति पातक का प्रयोग करते थे।

4.3. सामाजिक स्थिति

असीरियन व्यापारिक और कानूनी अभिलेख जो अभी तक ज्ञात हुए हैं, अधिकांशतः राज–परिवार से सम्बन्धित है, इसलिए इनसे असीरियन समाज पर प्रत्यक्ष रूप से कोई प्रमाण नहीं मिलता। परन्तु इनसे असीरियन सामाजिक स्थिति के विषय में कुछ मूल तथ्य स्पष्ट हो जाते हैं। असीरियन समाज स्वतंत्र एवं दास दो वर्गों में विभाजित था। स्वतंत्र वर्ग की तीन श्रेणियाँ थीं– प्रथम के अन्तर्गत शासक, धर्माधिकारी तथा उच्च अधिकारी थे, इन्हें श्रीमन्त या माखमुनि कहते थे। द्वितीय वर्ग शिल्पी थे, इसमें श्रेष्ठिन या तामकरू, लिपिक या तुपशर्रु, नग्गरू आदि थे। तृतीय वर्ग में श्रमिक खुश्शी थे। असीरियन दास भी दो प्रकार के होते थे, युद्धों में पकड़े हुए बन्दी और ऋण न चुका सकने के कारण स्वतंत्रता खो देने वाले नागरिक सम्मिलित थे। उनको समाज के उच्च वर्गों की सेवा करके जीवन व्यतीत करना होता था।

समाज मुख्यतः पितृसत्तात्मक था। यहाँ स्त्रियों की स्थिति दयनीय थी, उनके समस्त अधिकार सीमित थे। विवाह के नियम बेबिलोनियन समाज की भाँति ही थे। उच्च वर्ग की महिलाओं को कुछ अधिकार प्राप्त थे जिसका उदाहरण महिलाओं के शासन पद संभालने के रूप में प्राप्त होते हैं, परन्तु यह उदाहरण अत्यल्प ही हैं।

4.4. आर्थिक स्थिति

असीरियन सभ्यता में राज्य और नागरिकों के मध्य आर्थिक सम्बन्ध घनिष्ठ थे। राज्य के प्रत्येक नागरिक को राज्य की सेवा अनिवार्य रूप से सेना में कार्य करके, राज्य के निर्माण कार्यों में बिना पारिश्रमिक लिए सहयोग देने

और अपनी उपज के एक भाग को मन्दिरों में भेंट चढ़ाकर करनी होती थी। असीरियन साम्राज्य का आर्थिक संगठन मुख्यतः कृषि, उद्योग–धन्धे तथा व्यापार–वाणिज्य पर ही निर्मित था।

असीरिया का आर्थिक जीवन बेबिलोनिया के आर्थिक जीवन से अधिक भिन्न नहीं था। दोनों देशों में नदियों और नहरों से सिंचाई होती थी। दोनों देशों में मुख्यतः गेहूँ, जौ, बाजरा और तिल की खेती होती थी। यहाँ कृषि की स्थिति अपेक्षाकृत अच्छी थी। वे भू–स्वामी होना व्यापारी होने से ज्यादा पसन्द करते थे।

कुछ अभिलेखों में भूमि पट्टे पर लेने का उल्लेख हुआ है परन्तु इसकी शर्तें बहुत कठोर बताई गयी हैं। मजदूरी सस्ती थी और भूमि भी वर्तमान की अपेक्षा अधिक उर्वर थी। अतः यह अनुमान लगाया जा सकता है कि 'उम्माने' वर्ग में समृद्ध कृषकों की संख्या काफी रही होगी।

असीरियनों के आर्थिक संगठन का मुख्य आधार उद्योग धन्धे थे। प्रमुखतः यहाँ धातु उद्योग प्रचलित था। धातुएँ खानें खोदकर निकाली जाती थीं अथवा विदेशों से आयात की जाती थीं। स्वर्ण, रजत, ताम्र, कांस्य एवं लोहे से अनेक प्रकार के उपकरण बनाए जाते थे। शीशे के उपकरण बनाना, कपड़ा बुनना और रंगना अथवा बर्तनों पर मीनाकारी उनके प्रमुख उद्योग थे। सेर्नेकेरिव के एक लेख में वृक्ष से उत्पन्न होने वाली एक ऊन का उल्लेख मिलता है। पश्चिमी एशिया में कपास के अस्तित्व का यह प्राचीनतम उदाहरण है। प्रायः उद्योग–धन्धे वंशानुगत होते थे।

असीरियों में उच्च वर्ग व्यापार को घृणा की दृष्टि से देखता था, उनका विचार था कि कम दाम की वस्तुएँ अधिक दाम में विक्रय करना एक अपराध है, इसलिए असीरियन श्रीमन्त वर्ग विषेष सक्रिय नहीं था। उच्च वर्ग की उदासीनता का लाभ विदेशी एरोमियनों को मिला। उन्होंने धीरे–धीरे समस्त असीरियन व्यापार को अपने कब्जे में कर लिया। विनिमय में सोने, चाँदी तथा ताँबे के टुकड़े का उल्लेख मिलता है। व्यापार का संचालन अशुर नगर से किया जाता था। व्यापार–वाणिज्य का उल्लंघन करने वाले को कठोर दण्ड दिया जाता था। इनके व्यापारिक सम्बन्ध सीरिय, पेलेस्टाइन, साइप्रस तथा ईजियन द्वी समूह से थे। साहूकार या बैंकर 25 प्रतिशत ब्याज की दर से ऋण भी देते थे।

4.5. धार्मिक जीवन

असीरियनों का धर्म प्रारम्भ में बेबिलोनियन धर्म से मिलता–जुलता रहा।

असमानता केवल इतनी थी कि उनका प्रमुख देवता मर्दुक न होकर अशुर था। अशुर को एक सौर–देवता माना जाता था। पक्षयुक्त–सूर्यचक्र उसका प्रतीक था। इस चक्र के मध्य में खुद अशुर को चित्रित किया जाता था। अशुर नगर जब असीरिया की राजधानी बना तत्पश्चात् 'अशुर' को राष्ट्रीय देवता के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया गया। प्रथम सहस्त्राब्दी ई0पू0 में असीरियनों को अनेक युद्ध लड़ने पड़े। इसलिए उनका देवता अशुर भी युद्ध देवता माना जाने लगा। असीरियन समाज में अशुर को शत्रुओं की बलि देने का भी साक्ष्य प्राप्त होता है। बलि देने से अशुर को संतुष्टि प्राप्त होगी ऐसी मान्यता थी।

असीरियन अंधविश्वासी थे एवं अशुभकारिक शक्तियों से डरते थे। इनसे बचने का उपाय मंत्र–तंत्र को मानते थे जिस पर पुजारियों का एकाधिकार था। अंधविश्वास तो बहुत से देशों में देखने को मिलते हैं लेकिन असीरिया में इनकी अति हो गयी थी। पुजारियों का एक वर्ग शकुनों के शुभ–अशुभ फल पर विचार करता था। उन्हें 'बरू' (ज्योतिष) कहा जाता था। असीरिया के लोग संगीत द्वारा देवता को प्रसन्न करने का प्रयास करते थे धार्मिक कार्यों के समय देव–मूर्तियों का जलाभिषेक कराते थे।

4.6. कला एवं स्थापत्य

असीरियन सभ्यतावासियों ने कला के क्षेत्र में इन्होंने खूब प्रगति की थी। असीरियन अच्छे योद्धा के साथ–साथ कुशल कलाकार भी थे। प्रस्तर चित्रों के उत्कीर्णन में वे अत्यन्त निपुण थे। इन्होंने निनिवेह, असुर आदि नगरों में अनेक भवनों, मूर्तियों, प्रस्तर चित्रों का निर्माण किया। असीरियन कलाकारों ने सुन्दर ताम्र मूर्तियाँ, श्रृगारोपकरण, फर्नीचर, आभूषण और चित्रादि बनाये। असीरियन मूर्तिकारों ने शासक तथा देवताओं की मूर्तियाँ बनायीं। सपक्ष मानव शीश, वृषभ तथा सिंह की मूर्तियाँ बनायी जाती थीं। यहाँ की पशु मूर्तियाँ अत्यन्त सजीव एवं स्वाभावित थीं।

असीरियन शासक भवन निर्माण में अत्यधिक सक्रिय थे। अतः यहाँ वास्तुकला का विकास हुआ तथा कुछ नयी विषेषताओं का उद्भव हुआ। यहाँ निर्माण में ईंटों का प्रयोग किया जाता था। मेहराब व स्तम्भों का प्रयोग भवन निर्माण में किया जाता था। तिगलथपिलीजर प्रथम ने अशुर नगर में मन्दिर बनवाये। असुरनिजरपाल द्वितीय ने अपनी राजधानी निनेवेह के स्थान पर कल्खी नगर को बनाया। वहाँ उसने प्रासाद तथा मन्दिरों का निर्माण करवाया। सैनेकेरिब के निनेवेह में बने राजप्रासाद के जर्जर होने पर असुरनिजरपाल ने पुनः बनवाया।

असीरियन कलाकार मिट्टी के अतिरिक्त सेलखड़ी पर भी चित्रों को उत्कीर्ण करते थे। दीवारों की शिलापट्टियों पर भी चित्रांकन के साक्ष्य मिलते हैं। कुयुंजिक और अशुर से प्राप्त अवषेषों से प्रतीत होता है कि असीरियन रंगीन और ग्लेज़ किए हुए 'टेम्परा' चित्र बनाने में कुशल थे।

4.7. बौद्धिक उपलब्धियाँ

लिपि के रूप में असीरियन कीलाक्षर (क्यूनीफॉर्म) लिपि का प्रयोग करते थे। यहाँ सेमेरिक भाषाएँ भी प्रचलित थीं, जिसमें एरेमियन भाषा का उल्लेख किया जा सकता है। एरेमियन भाषा में उत्कीर्ण बहुत से लेख असीरियन नगरों से प्राप्त हुए हैं। प्रारम्भ में असीरियन साहित्य को देव वाणी के रूप में सृजन किया गया। इन्हीं देव वाणियों के माध्यम से असीरियन दैवज्ञ शुभाशुभ घटनाओं की भविष्यवाणी करते थे। आगे चलकर इन्हीं पर आधारित राजकीय लेख लिखे गए। असीरियन सम्राटों ने प्राचीन ज्ञान–विज्ञान के संरक्षण हेतु पुस्तकालय स्थापित किए। असुरबनिपाल के समय में विशाल ग्रन्थागार का निर्माण करवाया गया था। जहाँ लगभग तीस हजार ग्रन्थों को सुरक्षित किया गया। उसने निनेवेह के ग्रन्थागार में बाइस हजार मिट्टी की पट्टियों पर राजकीय अभिलेख भविष्यवाणियों, ज्योतिष सिद्धान्तों, औषधि सूचियों, रोगों के निवारण उपाय तथा मंत्रों आदि को उत्कीर्ण कराया जो उत्खनन से सुरक्षित अवस्था में प्राप्त होते हैं। बहुत से अभिलेखों पर असुरबनिपाल के द्वारा पढ़े जाने का चिह्न लगा है। दो अभिलेख ऐसे हैं जिनमें असुरबनिपाल ने अपने ज्ञान और शौर्य का वर्णन किया है।

असीरियन समाज क्रूर एवं हिंसा के वातावरण में यहाँ केवल युद्ध से जुड़ी विद्या और विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति कर पाया। यहाँ सैनिकों के स्वास्थ्य के हित के लिए अनेक औषधियों की खोज की गयी। ज्योतिष के अध्ययन में असीरियन शासकों को अत्यधिक रुचि थी। उन्होंने ऐसे पदाधिकारियों को नियुक्त किया था जिनका कार्य खगोल विद्या सम्बन्धी आँकड़ें इकट्ठा करना था। असीरियन चिकित्सकों के पास शरीर–रचना–शास्त्र पर एक विशाल शब्दावली थी। यहाँ के चिकित्सकों ने रोगों के लक्षणों के विषय में भी गहन अध्ययन किया था।

रसायन–शास्त्र में उनकी रुचि उद्योग–धन्धों, मीनाकारी में काम आने वाली रसायन प्रक्रियाओं तक सीमित थीं। सेनैकेरिब के काल में निर्मित एक कृत्रिम जल मार्ग इंजीनियरिंग ज्ञान का ज्वलन्त प्रमाण है। यहाँ एक स्थान पर जल को नदी के ऊपर से लाया गया था।

असीरियन सभ्यता ने इतिहास मे सर्वप्रथम सैनिक शक्ति के बल पर एक अति विस्तृत साम्राज्य की स्थापना की सम्भावना को असीरियनों ने यथार्थ में परिवर्तित कर दिया। इनके द्वारा स्थापित सैन्यवाद का प्रभाव भावी साम्राज्य निर्मात्री शक्तियों पर पड़ा। वास्तुकला के क्षेत्र में भी इन्होंने प्रगति करेन का प्रयास किया। भवन निर्माण से लेकर मूर्तिकला तक के क्षेत्र में सराहनीय कार्य किए। इन्होंने ज्योतिषशास्त्र एवं चिकित्साशास्त्र से परवर्ती यूनानी ज्योतिष व विज्ञान को प्रभावित किया। असीरिया के लोग किसी महान संस्कृति के निर्माता नहीं अपितु संरक्षक थे। उन्होंने बेबीलोनिया की सांस्कृतिक धरोहर को सुरक्षित करने का प्रयास किया, जिसकी छाया हमें असीरियन साहित्य से लेकर विधि–संहिता, स्थापत्य कला में भी दिखायी देती है।

डॉ0 एस0आर0 गोयल ने लिखा है– "अगर असीरिया न होता तो बेबीलोन का बहुत–सा विज्ञान पश्चिमी एशियाई जातियों की समान सम्पत्ति बने बिना विलुप्त हो जाता और आधुनिक इतिहासकार पश्चिमी एशिया के इतिहास का इतने विस्तार से पुनर्निर्माण न कर पाते" यही उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि थी। असीरिया के लोगों ने एक कठोर तथा विशाल सैन्य तंत्र की स्थापना की थी, जिसके द्वारा उन्होंने एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया। असीरिया के सैनिक युद्धकला में बहुत दक्ष थे। ये युद्ध अभियानों में निर्दयता के लिए विश्व विख्यात थे। इनकी सैन्य शक्ति ही इनके विशाल साम्राज्य के पराभव का कारण बनीं।

असीरियन सम्राटों ने लगभग 150 वर्षों तक शासन किया। उनकी निरंकुश नीति के कारण राज्य में अशान्ति एवं अव्यवस्था बनी रही। यहाँ का सामाकि जीवन धीरे–धीरे भ्रष्ट हो गया। महिलाओं की स्थिति भी दयनीय हो गयी। असुरबनिपाल की मृत्यु होते ही साम्राज्य–विघटन की प्रक्रिया तीव्र हो गयी। असीरिया साम्राज्य के पतन का मुख्य कारण प्रांतीय व्यवस्था में उपस्थित दोष, सैनिक और धार्मिक दलों का सतत् संघर्ष, आर्थिक व्यवस्था में उपस्थित दोष (जिसके अन्तर्गत आर्थिक जीवन का मुख्य स्रोत व्यापार न होकर कृषि कार्य था) और असीरियन क्रूरता थी। असीरियनों ने विजित राज्यों को अत्याचार के माध्यम से भयभीत करते रहना प्रारम्भ किया। उन्हें लगता था, वे ऐसा करके विरोध को कम कर सकते हैं परन्तु विरोध कम होने के बजाय और बढ़ता गया और विद्रोह होने लगे। असीरियनों के बढ़ते अत्याचार के साथ उनके प्रतिरोधियों की संख्या में भी वृद्धि होती गयी। अन्ततः असीरियन नगरो को ही नहीं, असीरियन जाति और सभयता भी नष्ट हो गयी।

4.8. बोध प्रश्न

1. असीरियाई सभ्यता के आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डालिए।
2. असीरियाई सभ्यता के पतन के कारणों की व्याख्या कीजिए।

4.9. सन्दर्भ ग्रन्थ

1. श्रीराम गोयल, विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ,वाराणसी, 2011
2. वी0 के0 पाण्डेय, प्राचीन विश्व की सभ्यताएँ, इलाहाबाद

इकाई–5 कैल्डियन सभ्यता

इकाई की रूपरेखा

5.0 प्रस्तावना

5.1 उद्देश्य

5.2 राजनीतिक स्थिति

5.3 धर्म एवं विज्ञान

5.4 कला

5.5 बोध प्रश्न

5.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

5.0.प्रस्तावना

असीरिया की सभ्यता के पतन में फरात नदी के मुहाने पर रहने वाली कल्दू/कैल्डियन जाति का महत्त्वपूर्ण योगदान माना जाता है। कैल्डियन सेमेटिक जाति की एक शाखा थे जिन्होंने असीरियन सम्राट् की क्षीण होती हुई शक्ति व अनुकूल परिस्थितियों का लाभ उठाया तथा मेसोपोटामिया की सभ्यता के महत्त्वपूर्ण केन्द्र बेबीलोन पर अधिकार कर लिया। बेबीलोन की भौगोलिक स्थिति व उर्वर भूमि सदैव ही आकर्शण का केन्द्र रही। निःसन्देह ही कैल्डियन जाति भी इससे आकृष्ट होकर 1000 ई0पू0 से प्रारम्भ कर समय–समय पर इस पर आक्रमण करती रही। सारगोन द्वितीय के शासनकाल से ही कैल्डियन सरदारों की शक्ति व प्रतिष्ठा में वृद्धि के साक्ष्य मिलने लगते हैं। मर्दुक बल्दान सारगोन द्वितीय का समकालीन एक योग्य कैल्डियन सेनापति/सरदार था।

मर्दुक बल्दान ही वो सरदार था, जिसने कैल्डियन जाति को एकता के सूत्र में बाँधा व असीरिया के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया परन्तु व असफल रहा।

5.1.उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के परिणामस्वरूप निम्नलिखित जानकारी प्राप्त होंगी–

1. असीरिया की सभ्यता के पतन में कैल्डियन जाति का कितना योगदान था।

2. कैल्डियन सभ्यतावासिसयों के मिस्र व बेबीलोन के सम्बन्ध कैसे थे?।

3. कैल्डियन धर्म व दर्शन को पुनर्जागरण से क्यों समेकित किया जाता है।

5.2. राजनीतिक स्थिति

असीरिया की शक्ति का पतन होने के पश्चात् उसके अधीनस्थ प्रांतों ने स्वयं को स्वतंत्र घोषित करना प्रारम्भ किया। नबोपोल्लसर जो अशुरबनिपाल के द्वारा नियुक्त एक प्रांतपति था, उसने स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर बेबीलोन को कैल्डियन सत्ताधीन एक स्वतंत्र राज्य बना लिया। इस राज्य के दो प्रमुख शासक हुए– नेबोपोल्लसर और नबूचेड्रेजार।

नबोपोल्लसर

नबोपोल्लसर केवल एक प्रांतपति न होकर एक कूटनीतिज्ञ एवं योद्धा भी था। असीरिया के पतन के समय इसने मीडिया का साथ देकर उसके विरुद्ध विद्रोह किया। दोनों अर्थात् मीडिया शासक और नबोपोल्लसर युद्ध क्षेत्र में गए अन्ततः इनकी विजय हुई। दोनों ने असीरियाई साम्राज्य को आपस में बाँट लिया। नबोपोल्लसर को पश्चिम एशिया के उर्वर अर्द्धचन्द्र वाला वह भाग मिला जिस पर असीरिया का अधिकार हो चुका था। परन्तु इसने मिस्र के राजा की सहायता से इस पर आक्रमण किया। उसे बहिष्कृत करने का कार्य नबोपोल्लसर ने अपने पुत्र नबूचेड्रेजार को सौंपा जो सफल रहा। नेबोपोल्लसर के पश्चात् उसका पुत्र यहाँ का शासक बना।

नबूचेड्रेजार

पूर्व की घटनाओं न नबूचेड्रेजार की योग्यता को प्रमाणित कर दिया था। वह अशिक्षित था परन्तु उसमें युद्ध कुशलता, शासन शक्ति एवं नीतिपटुता थी। इसका अधिकार क्षेत्र सीरिया से लेकर फिलिस्तीन तक विस्तृत था। यहूदी साम्राज्य पर भी इसका प्रभाव था। इसका व्यापार नियंत्रण भूमध्य सागर से लेकर पश्चिमी एशिया तक विस्तृत था जो भी व्यापारी इस क्षेत्र में आवागमन करते उनसे वह चुंगी लेता था तथा जिन राज्यों को उसने जीता था उनसे 'कर' लेता था। इस प्रकार इसने राज्य में विशाल सम्पत्ति एकत्रित कर ली।

नबूचेड्रेजार के पश्चात् उसके पुत्र ने केवल दो वर्ष और उसके बाद नेर्गल–शर–उसुर नामक एक धनी साामंत ने 40 वर्ष राज्य किया तत्पश्चात् अयोग्य उत्तराधिकारियों ने शासन किया। सामंतवाद की शक्ति इस समय अपने चर्मोत्कर्श पर थी। ईरान के शासक द्वारा मीडिया तथा लीडिया को विजित किया गया और साथ ही साथ बेबीलोन को भी अधिकृत कर लिया। इस प्रकार इसकी स्वतंत्र सत्ता का

अन्त हो गया।

5.3 धर्म और विज्ञान

कैल्डियन अपने आप को प्राचीन बेबिलोनियनों का वंशज मानते थे, यही कारण रहा कि उन्होंने प्राचीन बेबिलोनियन सभ्यता को पुर्नस्थापित करने का प्रयास किया। कैल्डियनों के प्रमुख देवता 'मार्दूक्य' थे। नबेचेड्रेजार अपने एक अभिलेख में प्रार्थना करते हुए कहता है– "मैं तुम्हारा आज्ञाकारी सम्राट् हूँ, तुम्हारी ही कृपा पर राजा बन सकता हूँ।" अतः इस अभिलेख से मर्दूक्य देवता के प्रति उसकी अटूट श्रद्धा देखने को मिलती है। यहाँ देवताओं को सर्वशक्तिमान माना जाता था और उनके ग्रहों से तादात्म्य पर बल दिया। ये ग्रहों की गतिविधियों द्वारा देवताओं के विषय में कुछ अनुमान लगाते थे। देवता को प्राप्त करने का एकमात्र साधन उनकी आराधना को मानते थे जिसके माध्यम से ही केवल सुख–समृद्धि को प्राप्त किया जा सकता है अन्यथा नहीं।

वे भौतिकवादी थे। वे नैतिक जीवन का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं मानते थे। स्वर्ग सुख को वे भाग पर अवलम्बित मानते थे। केवल जो कार्य देवताओं की प्रसन्नता के लिए किया गया हो वही सदाचार मानते थे। बलि प्रथा यहाँ प्रचलित थी। तप तथा यज्ञ में इनका विश्वास था। मन्दिरों में पूजा–अर्चना करते थे। कैल्डियन धर्म में पुरोहितों को विषेष स्थाान प्राप्त था। सभी को उनके प्रति सम्मान भाव रखना होता था। पुजारियों को दान देने की प्रथा भी प्रचलित थी। मन्दिरों में देवदासियाँ भी होती थीं। ये सम्भोग की वस्तु समझी जाती थीं। कैल्डियनों का यह विश्वास था की शारीरिक यातना से पाप की मुक्ति नहीं होती। पाप का फल सबको भोगना पड़ता है।

कैल्डियन खगोल को माता मानते थे क्योंकि यह उनकी आय के प्रमुख स्रोतों में से एक था। कैल्डियन ग्रहों को देवता मानते थे और सिद्धान्ततः यह भाग्यवादी थे, इसलिए यह खगोल विद्या और ज्योतिष विद्या में अत्यधिक रुचि लेते थे। धर्म की अपेक्षा विज्ञान के क्षेत्र में कैल्डियन लोगों ने अधिक प्रगति की। दिन को 24 घण्टों में विभाजित करने और एक घण्टे में 60 मिनट का विभाजन, सात दिन के सप्ताह आदि का उन्हें ज्ञान था। पृथ्वी की धुरी के वार्षिक झुकाव का भी पता लगाया। यहाँ धूपघड़ी व जलघड़ी का अविष्कार किया जा चुका था। मनुष्य का भाग्य आकाश स्थित ग्रहों की गति से आँका जाता था। ज्योतिर्विज्ञान के साथ ही भैशज्यविज्ञान में भी पर्याप्त उन्नति की थी। यहाँ 500 से अधिक औषधियों का भी प्रयोग होता था। वैद्य कांस्य औजारों के प्रयोग में भी कुशल थे।

5.4.कला

बेबीलोन नगर का पुनर्निर्माण कैल्डियन शासकों द्वारा करवाया गया। नेबोपोलस्सर, नेबूचेड्रेजार तथा नबोनिडस निर्माण कार्य में विषेष रुचि रखते थे। नेबोपोलस्सर ने एक राजप्रासाद का निर्माण करवाया और बेबीलोन के पुनर्निर्माण की योजना बनायी। बेबीलोन के चारों ओर एक चौड़ी चहारदीवारी बनवायी। दज़ला नदी के ऊपर विशाल पुन का निर्माण करवाया जिससे आागमन को सुगम बनाया जा सके। नगर में भवनों का निर्माण व पुनर्निर्माण कार्य भी किया गया। यहाँ की ईटों पर नेबूचेड्रेजार का नाम उत्कीर्ण मिलता है। इस नगर के मध्य में एक सुसज्जित, सात मंजिल की रंगीन स्तम्भाकार आकृति बनी थी जिसे 'मीनार' या 'जिगुरत' कहते हैं। नगरो में जो मन्दिर बने थे वे प्रायः एक पंक्ति में बने हुए थे।

नबूचेड्रेजार ने अपनी मीडियन रानी के लिए झूलता हुआ बगीचा बनवाया जो विश्व प्रसिद्ध है। अनेक मन्दिरों का भी निर्माण करवाया गया। इन्होंने बहुरंगी ईटों से रिलीफ मूर्तियों का भी निर्माण किया। इनके द्वारा काँच पर कारीगरी के नमूने भी मिलते हैं। वे मन्दिरों की दीवारों पर चित्रकारी भी करते थे। अन्य कलाओं में संगीत कला, मुद्रा निर्माण कला, आभूषण निर्माण में इन्होंने विषेष प्रगति की।

5.5.बोध प्रश्न

1. कैल्डियन सभ्यता पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

5.6.सन्दर्भ ग्रन्थ

1. श्रीराम गोयल, विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ,वाराणसी, 2011
2. राजछत्र मिश्र, प्राचीन सभ्यतायें।

इकाई–6 मिस्त्र की सभ्यत

इकाई की रूपरेखा

6.0. प्रस्तावना

6.1. उद्देश्य

6.2. राजनीतिक स्थिति

6.2.1. प्राग्वंशी युग

6.2.2. प्राचीन राज्य युग/पिरामिड युग

6.2.3. मध्य राज्य युग

6.2.4. साम्राज्य युग

6.3. सामाजिक स्थिति

6.3.1. प्राचीन राज्य युगीन सामाजिक स्थिति

6.3.2. मध्य राज्य युगीन व साम्राज्य युगीन सामाजिक स्थिति

6.4. आर्थिक स्थिति

6.4.1. प्राचीन राज्य युगीन अर्थव्यवस्था

6.4.2. मध्य राज्य युगीन अर्थव्यवस्था

6.5. धर्म व दर्शन

6.5.1. प्राचीन राज्य युगीन धर्म व दर्शन

6.5.2. मध्य राज्य युगीन धर्म व दर्शन

6.5.3. साम्राज्य युगीन धर्म व दर्शन

6.6. बौद्धिक उपलब्धियाँ

6.7. कला व स्थापत्य

6.8. अख्नाटन का धर्म व मूल्यांकन

6.9. बोध प्रश्न

6.10. सन्दर्भ ग्रन्थ

6.0. प्रस्तावना

मिस्र अफ्रीका महाद्वीप के उत्तर–पूर्वी भाग में अवस्थित है। इसके पूर्व में

लाल सागर, पश्चिम में लीबिया रेगिस्तान, उत्तर में भू—मध्य सागर तथा दक्षिण में सूडान स्थित है। नील नदी मिस्र के मध्य भाग से प्रवाहित होती है। मिस्र को अपनी भौगोलिक स्थिति का प्रचुर लाभ प्राप्त हुआ। उत्तर में समुद्र, पूर्व तथा पश्चिम में मरुस्थलों तथा दक्षिण में नील नदी के मध्य उच्च भाग द्वारा यह देश सदैव बाह्य आक्रमणों से सुरक्षित रहा। दजला—फरात घाटी की सुसम्पन्न भूमि के स्वाभाविक विकास में विदेशी आक्रमणों द्वारा निरन्तर विघ्न पड़ता रहा, परन्तु इन प्राकृतिक बाधाओं से सुरक्षित रहने के कारण मिस्र पर ऐतिहासिक युग में हिक्सोस को छोड़कर कोई अन्य विदेशी जाति आधिपत्य स्थापित नहीं कर पायी। प्राचीन काल से लेकर उन्नीसवीं शती ई0 के उत्तरार्द्ध तक यह राजनीतिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से अफ्रीका की अपेक्षा एशियाई देशों से अधिक सम्बद्ध रहा।

मिस्र की प्राचीन सभ्यता के सृजन एवं समुन्नयन में मिस्र की भौगोलिक परिस्थितियों के साथ ही साथ नील नदी की भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। पाँचवीं शताब्दी ई0पू0 में मिस्र की यात्रा करने वाले यूनानी इतिहासकार 'हेरोडोटस' ने मिस्र को नील नदी की देन कहा है। जनसंख्या घनत्व की दृष्टि से एक आधुनिक औद्योगिक देश होते हुए भी प्राचीनकाल से मिस्र एक कृषि प्रधान देश रहा है, परन्तु यहाँ वर्षा नाममात्र की होती है, अतः मिस्रवासियों को कृषि हेतु पूर्णतः नील नदी पर निर्भर रहना पड़ता है।

नील नदी कृषि के साथ—साथ यातायात की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। नील नदी के मार्ग द्वारा ही मिस्र में व्यापार—वाणिज्य का विकास हो सका। ऐतिहासिक युग में राजनीतिक एकता स्थाई करने व आक्रमणकारियों से मिस्र की रक्षा करने में भी नील नदी का उल्लेखनीय योगदान है। मिस्र की कला, विज्ञान व प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नील नदी की अहम भूमिका है।

6.1. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययनोपरान्त आप निम्न तथ्यों से परिचित हो सकेंगे—

(1) मिस्त्र की सभ्यता के उद्भव व विकास के लिए कौन सी परिस्थितियाँ उत्तरदायी थीं।

(2) मिस्त्र की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक स्थिति के कैसी थी।

(3) मिस्त्र के कला व स्थापत्य के विकास में वहाँ के शासकों का कितना योगदान था।

6.2. राजनीतिक स्थिति

ब्रेस्टेड ने मिस्र के समग्र राजनीतिक इतिहास तो प्रागराजवंशीय काल, प्राचीन राज्यकाल, मध्य राज्यकाल एवं साम्राज्यकाल नामक चार कालों व अनेक भागों में विभाजित किया है। इनमें कुल तीस राजवंशों द्वारा शासन किया गया जिनका विवरण निम्नवत् है–

3400 ई0पू0 के पूर्व	– प्राग्वंशीय युग
3400 ई0पू0	– मेनिज़ द्वारा संयुक्त राज्य की स्थापना
3400–2980 ई0पू0	– प्रथम दो वंशों का शासन
2980–2475 ई0पू0	– प्राचीन राज्य युग अथवा पिरामिड युग (तीसरे–छठे वंश का शासन)
2475–2160 ई0पू0	– सामन्तवादी युग (सातवें–दसवें वंश का शासन)
2160–1788 ई0पू0	– मध्य राज्य युग (ग्यारहवें–बारहवें वंश का शासन)
1788–1580 ई0पू0	– सामन्त संघर्ष व हिक्सोंस आधिपत्य (तेरहवें–सत्रहवें वंश का शासन)
1580–1090 ई0पू0	– साम्राज्य युग (18वें–20वें वंश का शासन)

6.2.1. प्राग्वंशीय युग

प्राग्वंशीय काल में मिस्र छोटे–छोटे नगर–राज्यों में विभक्त था। यह नगर–राज्य 4000 ई0पू0 जिन्हें 'नोम' कहा गया है, में संयुक्त होकर दो राज्यों के रूप में एकीकृत हो गए। नील नदी के मुहाने के क्षेत्र को उत्तरी व नील की घाटी के क्षेत्र को दक्षिणी राज्य कहा गया। उत्तरी राज्य की राजधानी बूटो तथा दक्षिणी राज्य की राजधानी नेखेब थी। पांचवे राजवंश के एक लेख के माध्यम से उतरी मिस्र के सात राजाओं के विषय में जानकारी प्राप्त है, परन्तु दक्षिणी मिस्र के राजनीतिक गतिविधियों के विषय में कोई जानकारी नहीं मिलती है।

3400 ई0पू0 में मेनिज द्वारा उत्तरी व दक्षिणी राज्यों को संयुक्त कर प्रथम वंश की स्थापना की गई। मेनिज/मेना दक्षिणी मिस्र में तेनी नामक स्थान का निवासी था। मिस्र में मेनिज के सम्बन्ध में अन्य साक्ष्यों का सर्वथा अभाव है। मिस्र के प्रथम 2 वंशों के 18 नरेशों ने 3400 से 2980 ई0पू0 तक शासन किया। इन्होंने लीबियन व सोमाइटों के निरन्तर होने वाले विद्रोहों का सफलतापूर्वक

दमन किया। 'होरूस' इन शासकों का महत्वपूर्ण विरोधी था।

द्वितीय वंश के अंत तक दलदलों को साफ कर लिया गया था। रीति–रिवाजों पर आधारित कानून व्यवस्था, चित्राक्षर लिपि, सौर पंचांग का अविष्कार कर लिया गया। विभिन्न प्रकार के आभूषण, लिलन के वस्त्र, मृदभाण्ड, पाषाण भाण्ड आदि निर्माण की कला विकसित हो गयी। इस काल का प्रमुख देवता 'होरूस' था व 'हियराकोनपोलिस' में स्थित मन्दिर उसका पवित्रतम स्थान माना जाता था। होरूस के अतिरिक्त ओसिरिस, सेत, अनुबिस, टॉथ, सोकर, मिन तथा टाः इत्यादि अन्य देवताओं का भी उल्लेख मिलता है। इस काल के लोग पारलौकिक जीवन में भी विश्वास करते थे जिसकी जानकारी एबाइडोस में स्थित तत्कालीन राज्य समाधियों से होती है।

6.2.2. प्राचीन राज्य युग अथवा पिरामिड युग

मिस्र में तृतीय राजवंश के शासनकाल से प्रारम्भ कर छठे राजवंश के शासनकाल तक का समय प्राचीन राज्य युग के अन्तर्गत रखा गया है। विश्व के आश्चर्यजनक पिरामिड इसी युग की देन है, इसीलिए इस युग को पिरामिड युग की भी संज्ञा दी गई है। मिस्र के तृतीय राजवंश की स्थापना 2980 ई0 पू0 में जोसेर के नेतृत्व में की गई। जोसेर की सफलता का प्रमुख कारण उसका कलाविद्, शिल्पी, वैज्ञानिक व साहित्यकार मंत्री 'इम्नहोतेप' था। सक्कर का सोपान पिरामिड इम्नहोतेप द्वारा बनवाया गया। अनुश्रुतियों में इम्नहोतेप को मिस्री लिपि का सुधारक कहा गया है।

जोसेर के उत्तराधिकारियों में 'नेफ्रू' अन्तिम नरेश माना जाता है, जिसने विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन प्रदान करने के उद्देश्य से जलपोत का निर्माण करवाया व उत्तरी नूबिया की जातियों के विद्रोंहों को दबाया।

तृतीय वंश के पश्चात् मिस्र में खुफू के नेतृत्व में चतुर्थ राजवंश की स्थापना हुयी। मिस्र के विशालतम पिरामिडों का निर्माण इसी काल में किया गया। खुफू की उपलब्धियों का शाश्वत प्रतीक 'गीजा का पिरामिड' है। इसी के समय राज्य का पूर्ण नियत्रण राजा के हाथ में आ गया। खुफू के पश्चात् उसका उत्तराधिकारी 'डेडेफ्रे' हुआ। डेडेफ्रे के पश्चात् 'खेफ्रे' शासक हुआ। खेफ्रे के समय पिरामिड तथा नारसिंह मूर्तियाँ बनाई गयीं, जिन्हें 'स्फिंक्स' कहते है। खेफ्रे के समय 'रे' देवता के पुजारियों की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुयी। खेफ्रे के पश्चात् मेन्कुरे/मेंकुर ने शासन सम्भाला। मेंकुरे द्वारा निर्मित पिरामिड से तत्कालीन आर्थिक अवनति का ज्ञान प्राप्त होता है।

मिस्र के पंचम राजवंश की स्थापना यूसेरकॉफ द्वारा 2750 ई0पू0 में की गयी। यूसेरकॉफ के पुत्र 'सहुरे' ने नौशक्ति में वृद्धि कर 'फिनीशिया' और 'पुन्ट' पर सफल आक्रमण किए। इसके काल में 'रे' के पुजारियों, सामन्तों व सेनापतियों की शक्ति में वृद्धि व फराओ/राजा की शक्तियों का ह्रास होता गया तथा केन्द्रीय सत्ता क्षीण होती गयी। साहुरे के पश्चात् इस वंश में अनेक राजाओं ने शासन किया, परन्तु उनकी राजनीतिक गतिविधियाँ अज्ञात हैं।

मिस्र के छठे राजवंश का संस्थापक 'तेती द्वितीय' था। तेती द्वितीय के पश्चात् 'यूसेरकेरे' व तत्पश्चात् 'पेपी I' ने शासन सम्भाला। पेपी के पश्चात् उसे पुत्र 'मर्नेरे' ने तथा मर्नेरे के पश्चात् उत्तराधिकार मर्नेरे के सौतेले भाई 'पेपी II' को मिला। पेपी द्वितीय का शासन को इतिहास में दीर्घतम था। मनेथो भी इसका उल्लेख करता है। पेपी द्वितीय के दुर्बल व अयोग्य उत्तराधिकारी सामन्तों पर नियन्त्रण नहीं रख पाये व 2475 ई0पू0 में छठे राजवंश के पतन के साथ ही पिरामिड युग समाप्त हो गया।

मिस्री शासन व्यवस्था पूर्णतः धर्मतान्त्रिक (Theocratic) थी। मिस्री नरेश 'सूर्यदेव रे' के प्रतिनिधि होने के कारण खुद देवता माने जाते थे। मिस्र का राजा सिद्धान्ततः राज्य का सर्वेसर्वा व सर्वोच्च पुजारी व सर्वोच्च न्यायाधीश होता था, परन्तु व्यवहारतः सामन्त, पुरोहित व महारानी की इच्छाएँ तथा राज्य की परम्पराएँ फराओ पर नियन्त्रण रखती थी।

फराओ के पश्चात् राज्य का सर्वाधिक शक्तिशाली व्यक्ति 'प्रधानमंत्री' था। वह राज्य का प्रधान, प्रधान न्यायाधीश और राज्याभिलेख संग्रहालय का अध्यक्ष होता था। चौथे वंश के शासनकाल में इस पद पर युवराज को नियुक्त किया जाता था। तीसरे वंश के मंत्री 'इम्नहोतेप, केगेम्न' अत्यन्त प्रसिद्ध थे।

प्रशासकीय सुविधा हेतु मिस्र लगभग 40 प्रान्तों में विभाजित किया गया था। मिस्री राजव्यवस्था का एक अन्य महत्त्वपूर्ण पदाधिकारी 'प्रधान कोशाध्यक्ष' था। यह सम्पूर्ण देश की वित्त–व्यवस्था को नियंत्रित रखता था। मिस्र में न्याय व्यवस्था बनाए रखने हेतु किसी विषेष पदाधिकारी का उल्लेख नहीं मिलता है। प्रधानमंत्री ही राज्य का प्रधान न्यायाधीश होता था और प्रान्तों में गवर्नर। मिस्र के पाँचवें वंश के शासनकाल तक कानून व्यवस्था अत्यन्त जटिल हो गयी।

6.2.3. मिस्र का मध्य राज्य–यु़ग

2475 ई0पू0 में छठे वंश के पतन के साथ मिस्र के प्राचीन राज्य अथवा पिरामिड युग का भी पतन हो गया। प्राचीन राज्य काल मिस्र के इतिहास में

राजनीतिक एवं कलात्मक दोनों दृष्टियों से प्रगति का काल था, परन्तु व्ययशील निर्माणात्मक कार्यों ने आने वाले तीन सौ वर्ष तक मिस्र में आर्थिक व राजनीतिक दुर्बल बनाए रखा। मध्य राज्य–युग में स्थानीय सामन्त स्वतन्त्र रूप से शासन करने लगे। अतः इसे सामन्तवादी युग की संज्ञा भी दी जाती है। सातवें और आठवें वंशों के शासनकाल (2475–2445 ई0पू0) में मेम्फाइट शासकों की प्रतिष्ठा लगभग समाप्त हो गयी। नवें तथा दसवें वंशों के शासनकाल में (2445–2160 ई0पू0) राजनीतिक शक्ति का केन्द्र 'हेराक्लियोपोलिस' नामक नगर हो गया। इस काल में दक्षिणी मिस्र के थीब्ज सामन्तों ने विषेष प्रतिष्ठा अर्जित कर 2160 ई0 पू0 में ग्यारहवें राजवंश की नींव डाली।

मिस्र के ग्यारहवें राजवंश (2165–2000 ई0पू0) का संस्थापक होरूस 'वहेनेख–इन्तेफ प्रथम' था। इसके समय में 'हेराक्लियोपोलिस' का बर्बरतापूर्वक दमन किया गया। ग्यारहवें राजवंश के अनेक राजाओं में 'निभपेत्रे–मेंतुहोतेप चतुर्थ' व 'सेनेकेरे–मेंतुहोतेप पंचम' के विषय में ही सूचना प्राप्त होती है। बारहवें राजवंश का संस्थापक 'एमेनेम्हेत प्रथम' (2000–1970 ई0पू0) था। यह सम्भवतः ग्यारहवें वंश के अन्तिम फराओ का मंत्री था। इसने सामन्तों की शक्ति को थोड़ा कम किया व फराओ पद की प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित किया। एमेनेम्हेत के पश्चात् उसका पुत्र 'सेसोस्रिस प्रथम' (1970–1905 ई0पू0) शासक बना। इसने नील नदी को एक नहर द्वारा लाल सागर से मिलाया, नूबिया के आक्रमणों को विफल किया तथा हेलियोपोलिस, एबाइडोस तथा कार्नाक में विशाल मन्दिरों का निर्माण करवाया। इसके पश्चात् 'सेसोस्रिस तृतीय' (1905) शासक के पश्चात् 'एमेनेम्हेत तृतीय' (1894–1811 ई0पू0) ने शासन सम्भाला। इसने विभिन्न नहरें खुदवायीं व सिंचाई का समुचित प्रबन्ध किया। मिस्र के प्रसिद्ध लैबिरिंथ भवन का निर्माण एमेनेम्हेत तृतीय के शासनकाल में हुआ। इसके उत्तराधिकारी अत्यन्त दुर्बल सिद्ध हुए व 13 वर्षों के उपरात इस राजवंश का अन्त हो गया व मिस्र में घोर अव्यवस्था फैल गयी।

मध्य राज्यकाल सामन्ती व्यवस्था के विकास के लिए प्रसिद्ध है। इस काल के पूर्व ही मिस्र में मध्यकालीन यूरोप की भाँति सामन्तवाद का उदय हुआ व देश छोटे–छोटे राज्यों में विभाजित हो गया। इन नगर–राज्यों के शासक नाम मात्र के लिए फराओं के अधीन रहते थे, परन्तु व्यवहारतः पूर्ण स्वतन्त्रता का उपभोग करते थे। बारहवें राजवंश के शासकों ने सामन्तों की इस स्थिति पर अंकुश लगाया। केन्द्रीय शासन मेम्फिस से हटाकर मध्य मिस्र में 'इथेट–तावी' नगर में स्थापित किया। मध्य राज्यकालीन मिस्री शासक प्राचीन राज्यकालीन मिस्री शासकों से दुर्बल माने जाते हैं। मध्य राज्यकाल के केवल

बारहवें राजवंश के शासक सामन्तों की निरंकुशता रोकने में सफल हुए।

मध्य राज्ययुग में फराओ के कुछ ऐसे अधिकारों व नियम बनाये गये, जिससे सामन्ती अधिकारों में कमी आयी। बड़े–बड़े सामन्तों के पास पैतृक व राजकीय दो प्रकार की जागीरें थी। राजकीय भूमि पर फराओ का अधिकार था व फराओ की अनुमति के बिना सामन्त अपना अधिकार नहीं बता सकते थे। इस नियम से सामन्तों के ऊपर फराओ का कुछ नियन्त्रण स्थापित हुआ। इसी प्रकार अन्य कई नियमों का निर्माण किया गया।

मध्य राज्ययुग की शासन व्यवस्था में प्राचीन राज्ययुग की अपेक्षा परिवर्तन प्राप्त होता है। प्रधानमंत्री का पद जो पहले किसी युवराज अथवा सामन्त को मिलता था, अब बड़े जागीरदार को मिलने लगा। प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में एक नवीन संस्था 'तीस का सदन' अस्तित्व में आयी। इसका सम्बन्ध न्याय व्यवस्था से था। इस काल में फराओ सामन्तों की सेना के अतिरिक्त अपनी व्यक्तिगत सेनाएँ रखने लगे।

मध्य राज्ययुग में फराओ की आय पिरामिड युग के फराओ की अपेक्षा बहुत कम हो गयी। इस युग में प्रान्तों व अधीन सामन्तों से 'कर' के रूप में कम आय प्राप्त होती थी। व्यक्तिगत जागीरों का निर्माण भी कम आय का एक कारण था। इसीलिए आय में वृद्धि हेतु नूबिया की स्वर्ण खानों व बहुमूल्य रत्नों का दोहर किया गया। सीरिया व फिलिस्तीन पर भी यदा–कदा आक्रमण कर आय में वृद्धि की जाती थी।

6.2.4. मिस्र का साम्राज्य युग

बारहवें राजवंश के अन्त के साथ 1788 ई0पू0 में मध्य राज्ययुग का पतन हो गया व आन्तरिक संघर्ष प्रारम्भ हो गए। इस अराजकता के कारण 1765 ई0पू0 में एशिया से आने वाले हिक्सॉस नामक आक्रमणकारियों ने मिस्र पर आक्रमण किया। मनेथो इस नाम का अर्थ 'पशुपालक राजा' बताता है। हिक्सॉस सांस्कृतिक दृष्टि से मिस्रियों से पिछड़े हुए थे, परन्तु अश्वों व रथों के प्रयोग से परिचित थे। हिक्सॉस आधिपत्य स्थापना से मिस्र के तेरहवें राजवष का आरम्भ हुआ, परन्तु हमें इस राजवंश के विपक्ष में कोई सूचना नहीं मिलती। वास्तव में तेरहवें राजवंश से प्रारम्भ कर सत्रहवें राजवंश तक मिस्र का इतिहास अराजकता, बर्बरता एवं अव्यवस्था का इतिहास है। सत्रहवीं शताब्दी ई0पू0 के अन्त तक मिस्र में हिक्सॉस विरोधी आन्दोलन प्रारम्भ हो गए। इस आन्दोलन का सफल नेतृत्व थीबिज नरेश अहमोस प्रथम ने किया।

'अहमोस प्रथम' के द्वारा अट्ठारहवें वंश की स्थापना से (1580—1557 ई0पू0) मिस्र के इतिहास में साम्राज्य युग का सूत्रपात हुआ। अहमोस प्रथम युद्धों में लिप्त रहा। उसके पश्चात् अमेनहेतेप प्रथम ने शासन सम्भाला। 'अमेनहेतेप' ने एशिया, नूबिया तथा लीबिया पर आक्रमण किए। अमेनहेतेप प्रथम के पश्चात् उसका पुत्र 'थुट्मोस प्रथम' शासक बना व अपनी सत्ता कार्शेमिश तक स्थापित की। इसी के काल में मिस्र व पश्चिम एशिया का संघर्ष प्रारम्भ हुआ। थुट्मोस प्रथम के बाद सत्ता उसकी पुत्री 'हतशेपसुत' के हाथ में आयी। यह विश्व इतिहास की पहली पूर्ण सत्ता सम्पन्न शासिका थी। हतशेपसुत के शासनकाल के अन्तिम समय में 'थुट्मोस तृतीय' ने सहशासक के रूप में राज्य किया व हतशेपसुत की मृत्यु के पश्चात् पूर्ण शासक बना। इसे प्राचीन मिस्र का नेपोलियन कहा जाता है। इसने पश्चिम एशिया पर पन्द्रह बार आक्रमण किए। थुट्मोस तृतीय के पश्चात् क्रमशः आमेनहोतेप द्वितीय (1448—1420 ई0पू0), थुत्मोस/थुट्मोस चतुर्थ (1420—1411 ई0पू0), आमेनहोतेप तृतीय (1411—1375 ई0पू0), सेकरे, तुतेनखामेन ने राज्य किया। इनमें प्रारम्भिक तीन शासकों का काल मिस्र में राजनीतिक एवं आर्थिक सफलता का काल माना जाता है।

आमेनहोतेप तृतीय के पश्चात् आमेनहोतेप चतुर्थ को उत्तराधिकार मिला, जो इतिहास में इख्नाटन/अख्नाटन के नाम से जाना जाता है। वह शासक से अधिक दार्शनिक व कवि था। उसे हम विश्व इतिहास का सम्भवतः प्रथम धर्म सुधारक कह सकते हैं। तत्कालीन समाज में प्रचलित बहुदेववाद का खण्डन कर उसने एकेश्वरवाद का उपदेश दिया।

अख्नाटन ने सौर्य देवता 'एटन' की उपासना को लोकप्रिय बनाया व अपनी नई राजधानी का नाम 'अख्नाटन' रखा। अमेनहोतेप चतुर्थ की धार्मिक नीति के परिणामस्वरूप दूरस्थ प्रान्तों में विद्रोह होने लगे व मिस्र एक विशाल साम्राज्य के स्थान पर एक छोटा—सा राज्य रह गया। 30 वर्ष की अवस्था में अमेनहोतेप चतुर्थ की मृत्यु हो गयी।

अमेनहोतेप की मृत्यु के दो वर्ष पश्चात् उसका दामाद तूतेनखामेन शासक हुआ। इसने पुराने देवताओं की उपासना पुनः प्रारम्भ कर दी, परन्तु वह साम्राज्य के गौरव को लौटाने में पूर्णतः असफल रहा। तूतेनखामेन के पश्चात् मिस्र के इतिहास में उथल—पुथल के बाद उन्नीसवें राजवंश की स्थापना हुयी।

उन्नीसवें राजवंश की स्थापना का श्रेय ब्रेस्टेड महोदय 'हर्महाब' को देते हैं। हर्महाब ने देश की शासन व्यवस्था में अनेक सुधार किए। इसके पश्चात् उत्तराधिकार 'रेमेसिस प्रथम' को प्राप्त हुआ। रेमेसिस प्रथम के बाद 'सेती प्रथम'

शासक हुआ। सेती प्रथम के बाद उत्तराधिकार 'रेमिसिस/रैमिसीज द्वितीय' को मिला। सम्भवतः यह मिस्र का अन्तिम महान शासक था। रैमिसीज द्वितीय ने साम्राज्य को संगठित एवं सुव्यवस्थित करने के महत्त्वपूर्ण कार्य किए। इसके काल में मिस्र की सेनाएँ फरात के तट तक विजयघोष करने लगी। 'रैमिसीज द्वितीय' ने ही 1296 ई0पू0 में हित्तियों से इतिहास प्रसिद्ध सन्धि की। यह इतिहास में व्यसनों व रचनात्मक गुणों के लिए भी प्रसिद्ध है। रैमिसीज द्वितीय ने कार्नाक मन्दिर के मुख्य कक्ष व आबूसिम्बेल के गुहा मन्दिर को पूर्ण करवाया, लक्सोर के मन्दिर में वृद्धि की, नील नदी को लाल सागर से जोड़ने वाली एक नहर बनवायी। 1225 ई0पू0 रैमिसीज द्वितीय की मृत्यु हो गयी। इसके पश्चात् 'मेर्नेप्टा, 'आमेनमिसीज', 'सिप्ता' तथा 'सेती द्वितीय' ने क्रमशः राज्य किया। सेती द्वितीय के साथ ही मिस्र के उन्नीसवें राजवंश का अन्त किया।

मनेथो के अनुसार 'सेतनख्त' ने 1200 ई0पू0 के आस–पास बीसवें राजवंश की नींव डाली। सेत्नख्त का उत्तराधिकारी रैमिसीज तृतीय हुआ। इसके शासनकाल में मिस्र का एशियाई प्रान्तों पर निमन्त्रण बना रहा, परन्तु इसकी मृत्यु के पश्चात् मिस्र का जो अधःपतन प्रारम्भ हुआ, वह फिर कभी न रूका। रैमिसीज तृतीय के पश्चात् रैमिसीज नामधारी 10 शासकों ने शासन किया। रैमिसीज द्वादश की मृत्यु के पश्चात् आमोन का श्रेष्ठतम पुजारी मिस्र का शासक बना तथा इसी के साथ साम्राज्य युग समाप्त हो गया।

मिस्र में 21वें वंश की स्थापना 1090 ई0पू0 में हुयी। उसके बाद मिस्र एक शती तक दुर्बल परन्तु स्वतन्त्र रहा, दसवीं शती के मध्य मिस्र की स्वतन्त्रता का भी अन्त हो गया व 945 ई0पू0 में लीबियनों का अधिकार हो गया। उनका आधिपत्य 712 ई0पू0 तक चला (22वें से 24वें राजवंश) लीबियनों के पश्चात् इथियोपियनों ने (25वां राजवंश) मिस्र पर नियन्त्रण रखा। 670 ई0पू0 से 663 ई0पू0 तक मिस्र पर असीरियनों का शासन रहा।

663 ई0पू0 में नील के मुहाने पर स्थित राज्य के शासक 'साम्तिक' ने असीरियन सेनाओं को खदेड़ दिया। 525 ई0पू0 में मिस्र हरवामशी साम्राज्य में मिला लिया गया। इसके साथ ही मिस्र के स्वतन्त्र इतिहास का भी अन्त हो गया। 323 ई0पू0 में फारसी आधिपत्य के बाद मिस्र पर पहले यूनानियों (332–48 ई0पू0) और तत्पश्चात् रोमनों ने शासन किया व 30 ई0पू0 में मिस्र को एक प्रान्त बना लिया।

प्राचीन राज्यकाल एवं मध्य राज्यकाल की अपेक्षा साम्राज्यकालीन सैनिक संगठन उत्तम था। हिक्सॉस आक्रमण के परिणामस्वरूप मिस्र की परम्परागत

शासन—व्यवस्था में मूलभूत अन्तर उत्पन्न हो गए। साम्राज्यकाल में राज्य और फराओ की शक्ति सेना पर आधृत हो गयी। हिक्सॉस आधिपत्य के समय में मिस्रवासी अश्वचालित रथों तथा आक्रमणात्मक युद्धकला से परिचित हो गए थे। इस काल में सेना को स्थायी रूप दे दिया गया। साम्राज्यकाल में मिस्र से मध्य—राज्ययुगीन सामन्तवाद का विलोप हो गया व पुराने सामन्त फराओ के सेनापति अथवा सभासद रह गए। इस काल में फराओ साम्राज्य की शासन व्यवस्था के प्रत्येक अंग को नियन्त्रित करने लगा।

साम्राज्यकाल में भी प्राचीन राज्यकाल की भाँति शासन प्रबन्ध हेतु मन्त्री रखे जाते थे, परन्तु इनकी संख्या दो कर दी गयी, एक उत्तरी मिस्र (हेलियोपोलिस) व दूसरा दक्षिणी मिस्र (थीब्ज) के लिए। इनमें दक्षिणी मिस्र का मन्त्री अधिक शक्तिशाली होता था।

न्याय—व्यवस्था के क्षेत्र में साम्राज्ययुगीन मन्त्री अपने पूर्वजों से अधिक शक्तिशाली थे। छः न्यायालयों का प्रावधान अब नाम मात्र को रह गया। मन्त्री के न्यायालय के अतिरिक्त स्थानीय न्यायालय भी थे, जहाँ मन्त्री के प्रतिनिधि जाते थे। दण्ड विधान एवं दण्ड प्रक्रिया दोनों अमानवीय थीं। कुछ अपराधियों को आत्महत्या की छूट दे दी जाती थी।

6.3. सामाजिक स्थिति

मिस्त्री सभ्यता कालीन समाज को विभिन्न राजनीतिक कालों में अध्ययन के द्वारा बेहतर समझा जा सकता है।

6.3.1. पिरामिड / प्राचीन राज्य युगीन सामाजिक स्थिति

पिरामिडयुगीन सामाजिक संरचना सामान्य एवं सरल थी। प्राचीन राज्य युग में मिस्री समाज पाँच वर्गों में विभाजित था— राजपरिवार, सामन्त, पुजारी, मध्यमवर्ग तथा सर्फ और दास। मध्यम वर्ग में लिपिक, व्यापारी, कारीगर और स्वतन्त्र किसान सम्मिलित थे। राजपरिवार, सामन्त व पुजारियों को सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त थी। उच्च व निम्न वर्ग के रहन—सहन में भारी अन्तर विद्यमान था। उच्च वर्ग के लोग प्रायः विशाल भवनों में रहते थे। भवनों के चारों ओर उपवन तथा कृत्रिम सरोवर होते थे। पुरुष दाढ़ी बाँधते थे, परन्तु सिर पर बड़ी—बड़ी विग धारण करते थे। उच्च वर्ग के स्त्री—पुरुष सादे परन्तु बहुमूल्य वस्त्र पहनते थे। इसके विपरीत निम्न वर्ग के लोग छोटी—छोटी झोपड़ियों में रहते थे, जहाँ स्वच्छ वायु भी उपलब्ध नहीं थी। बर्तनों के नाम पर केवल भद्दे मृद्भाण्ड ही उनके पास होते थे।

प्राचीन राज्यकाल में मिस्री समाज की इकाई परिवार था। सामान्य पुरुष केवल एक पत्नी रखता था, परन्तु समृद्ध पुरुष अनेक उप–पत्नियाँ रख सकते थे। मिस्री समाज में भाई–बहन के विवाह की प्रथा प्रचलित थी। परिवार के अन्य सदस्यों में पारस्परिक स्नेह को अत्यावष्यक गुण माना जाता था।

मिस्री समाज में स्त्रियों को अत्यन्त प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था। विवाह स्थिर करते समय कन्या की राय को महत्व दिया जाता था। वंश परम्परा माता से ही चलती थी पिता की तुलना में माता और मातामह के सम्बन्ध को अधिक घनिष्ठ माना जाता था। स्त्रियों को पर्याप्त सामाजिक स्वतन्त्रता प्राप्त थी।

6.3.2. मध्य राज्य युगीन व साम्राज्य युगीन सामाजिक स्थिति

मध्य राज्ययुग में मिस्र की सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था में कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इस युग में सामन्त समाज का सर्वाधिक प्रतिष्ठित वर्ग बन गया। समाज का केन्द्र प्रान्तीय नगर हो गए व एक नवीन प्रान्तीय उच्च वर्ग अस्तित्व में आया। प्राचीन राज्य युग की अपेक्षा इस युग में मध्यम वर्ग प्रतिष्ठित व समृद्ध हो गया। बारहवें वंश के शासनकाल में व्यापारियों, सौदागरों, लिपिकों व दस्तकारों का समाज में सम्मान बढ़ा। उनकी कब्रें व स्मारक बनाए जाने लगे। इस युग में भी विवाह सम्बन्धी नियम–कानून पूर्ववत् बने रहे। सामान्यतः तलाक का प्रचलन नहीं था। स्त्रियों को समाज में सम्माननीय दृष्टि से देखा जाता था। उत्तराधिकार सम्बन्धी विषेषाधिकार इस काल में भी कुछ मामलों में स्त्रियों के पास सुरक्षित था।

साम्राज्यकाल में सामन्तवाद का अन्त हो जाने के परिणामस्वरूप स्थानीय प्रशासन हेतु राजकर्मचारियों की अधिक आवष्यकता पड़ी। साम्राज्यकाल में सैनिकों तथा दासों के दो और वर्ग अस्तित्व में आ गए थे। इस काल में ऐसा राजपुरुष वर्ग अस्तित्व में आया जिसमें पुराने सामन्त और मध्यम वर्ग, दोनों के लोग सम्मिलित थे। यह वर्ग धीरे–धीरे केन्द्रीय राजपुरुष वर्ग के साथ घुल मिल गया। इसी वर्ग का उच्च स्तर नया कुलीन वर्ग था, जिससे फराओ अपने सभासद का चयन करते थे। अट्ठारहवें राजवंश के एक अधिकारी के जनगणना प्रतिवेदन में मिस्री जनता को सैनिक, पुरोहित, शिल्पी तथा राजकीय सर्फ नामक चार वर्गों में विभाजित किया गया था।

मिस्री सामाजिक गठन में उच्च एवं निम्न वर्ग के जीवन स्तर में पर्याप्त अन्तर विद्यमान था। उच्च वर्ग के सदस्य शानदार भवनों में निवास करते थे, उनका जीवन सुखमय था, जबकि निम्न वर्ग की स्थिति अति शोचनीय थी। समृद्ध परिवार के सदस्य धनुष–बाण एवं कुत्तों की सहायता से शिकार करते

थे। मल्लयुद्ध, मुष्टियुद्ध तथा वृषभयुद्ध भी इनके प्रिय विनोदों में थे। सम्भवतः उच्च वर्ग के लोग शतरंज भी खेलते थे। सैनिकों में युद्धनत्य का प्रचलन था।

फराओ ने देश के अधिकाधिक उद्योग–धन्धों पर राज्य का एकाधिकार घोषित कर दिया। विदेशी व्यापार पर पूर्णतः राज्य का आधिपत्य हो गया, परन्तु इससे स्थिति बिगड़ती चली गयी। अर्थव्यवस्था में गिरावट आने लगी। आन्तरिक व्यापार पर राज्य का पूर्ण नियन्त्रण नहीं था, परन्तु यह आंशिक नियन्त्रण के साथ फराओ व उसके मन्त्रियों द्वारा संचालित किया जाता था।

6.4. आर्थिक स्थिति

प्राचीन मिस्त्रवासियों की अर्थव्यवस्था अत्यन्त समृद्ध थी। किसी भी देश की अर्थव्यवस्था पर राजनीतिक अवस्थिति का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। मिस्त्र की आर्थिक दशा पर वहाँ की राजनीतिक गतिविधियों का प्रभाव पड़ा। अतः हम यहाँ अर्थव्यवस्था का अध्ययन पिरामिडकाल व मध्य राज्य युग के विषेष सन्दर्भ में करेंगे।

6.4.1. पिरामिड युगीन आर्थिक स्थिति

प्राचीन मिस्र का आर्थिक स्तम्भ कृषिकर्म था। गेहूँ, जौ, मटर, तिलहन, अलसी, जैतून, खजूर व अंगूर की खेती की जाती थी। सिंचाई व्यवस्था का आधार नील नदी थी। कृषिकर्म में मिस्री सरकार किसानों की सहायता करती थी। सौर पंचांग का अविष्कार किसानों की सुविधा हेतु किया गया था। उपज का 10 से 20 प्रतिशत भाग 'कर' के रूप में देय होता था।

मिस्रियों का दूसरा प्रमुख उद्यम पशुपालन था। गाय, भेड़, बकरी और गधा प्रमुख पालतू पशु थे। इनके अतिरिक्त बन्दर, मुर्गियाँ, मछलियाँ व अन्य पशु–पक्षियों का शिकार करते थे।

मिस्र में प्रस्तर, इमारती लकड़ी और खनिज पदार्थों के अभाव के कारण उद्योग–धन्धों का विकास नहीं हो पाया, परन्तु पड़ोस से आवष्यक माल का आयात कर विभिन्न उद्योग–धन्धों का प्रारम्भ कर लिया गया। प्राचीन राज्य युग में तम्रकार, स्वर्णकार, जलपोत निर्माण, कुम्हारों का उल्लेख मिलता है। यहाँ ईंट बनाने की कला भी बहुत सम्मुन्नत थी। निम्न वर्ग की स्त्रियाँ कातने व बुनने का कार्य करती थीं। लिनन वस्त्र निर्माण में मिस्रवासी निपुण थे।

मिस्र में आवागमन और यातायात का प्रमुख माध्यम नील नदी थी। विनिमय का माध्यम वस्तु विनिमय था, परन्तु बड़े सौदों में वस्तुओं का मूल्य,

सोने, चाँदी अथवा ताँबे का निश्चित भार छल्लों के रूप में चुकाया जाता था। चाँदी अनातोलिया से आती थी व सोने से मंहगी थी। व्यापारी आपस में लिखित अनुबन्ध करते थे। वसीयतनामे लिखे जाते थे। एलिफेंटाइन नामक स्थल से 26वीं शताब्दी ई0पू0 में एक सामन्त के अनेक व्यापार पत्र उपलब्ध हुए हैं।

6.4.2. मध्य राज्य युगीन आर्थिक स्थिति

कृषि व पशुपालन इस काल में भी मिस्र की अर्थव्यवस्था की रीढ़ थे। मध्य राज्यकाल में कृषि को उन्नत बनाने हेतु बारहवें राजवंश के शासकों द्वारा नहरों का निर्माण करवाया गया। इन नहरों द्वारा नील नदी का जल कृषक अपने खेतों तक शडूफ के माध्यम से पहुँचाते थे। इस काल में भी गेहूँ, जौ, मटर, तिलहन, जैतून, खजूर आदि अन्न फलों की कृषि का प्रमाण मिलता है। कृषि के पश्चात् पशुपालन को महत्व दिया गया। इस काल के लोग ऊँट व घोड़ों से परिचित नहीं थे। उद्योग–धन्धों में विभिन्न नवीन व्यवसायों का विकास हुआ। पिता के बाद पुत्र उसका पेशा अपना लेता था। कुछ स्थलों पर उद्योगशालाओं का भी साक्ष्य मिलता है। मध्य राज्यकाल में भी मिस्र भूमध्य सागरीय क्षेत्रों से भाण्ड, सिनाई से नीलमणि, नूबिया अथवा एशिया माइनर या भारत से स्वर्ण तथा एशिया माइनर से चाँदी का आयात करता था। इस काल में भी नकद व विनिमय दोनों का प्रावधान मिलता है।

6.5. धार्मिक स्थिति

मिस्त्र की सभ्यता प्राचीन सभ्यताओं में अपने धर्म के लिए विख्यात मानी जाती है। मिस्त्र की सभ्यताकालीन धर्म पर वहाँ की तत्कालीन राजनीतिक दशा का पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। अतः मिस्त्र के प्राचीन धर्म का अध्ययन विभिन्न राजनीतिक कालों के अन्तर्गत करना अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है।

6.5.1 पिरामिड युगीन धर्म व दर्शन

प्राचीन मिस्रवासियों के जीवन में धर्म का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान था। मिस्र के राजनीतिक एकीकरण का प्रभाव तत्कालीन धर्म पर भी पड़ा। मिस्री सभ्यता निवासी अति प्राचीनकाल से बहुदेववादी थे। मिस्र के अधिकांश देवता प्राकृतिक शक्तियों का दैवीकरण थे। सूर्य प्रमुख देवता माना जाता था। उत्तरी मिस्र में इसे 'रे' तथा थीब्ज़ में 'आमोन' कहा जाता था तथा दक्षिणी मिस्र में 'होरूस' कहा जाता था। 'आमोन रे' के प्रतीक 'सपक्षसूर्य चक्र' को मिस्र के राजचिन्ह के रूप में स्वीकार कर लिया गया। इसे नैतिक व्यवस्था का 'नियामक' कहा गया है। 'आमोन रे' के पश्चात् द्वितीय प्रमुख देवता 'ओसिरिस' था। ओसिरिस

अधोलोक का देवता था, प्रारम्भ में इसका सम्बन्ध पृथ्वी से था। ओसिरिस सत्यवादी, न्यायप्रिय तथा कर्त्तव्यपरायण देवता था। इसने मानव जाति को कृषि कर्म तथा विभिन्न कलाओं का ज्ञान दिया। मिस्र देवमण्डल में 'आइसिस' नामक देवी को महत्व दिया गया है। 'आइसिस को ओसिरिस' की पत्नी कहा गया है। इसे पृथ्वी पर समस्त वस्तुओं की जन्मदात्री कहा गया है।

आमोन रे 'ओसिरिस' व 'आइसिस' के अतिरिक्त मिस्र के धर्म में केब़ (पृथ्वी), सिन (चन्द्रमा), नूत (आकाश), हथौर (गौ) का भी उल्लेख मिलता है। 'मेम्फिस' का प्रमुख देवता था। मिस्रिओं ने अपने देवताओं की कल्पना प्रायः मनुष्य अथवा पशु–पक्षियों के मिश्रित रूपों में की थी।

प्राचीन राज्यकाल में मिस्रवासी अपने देवी–देवताओं की उपासना देवालयों में करते थे व उन्हें देव गृह मानते थे। देवगृह अपने मकानों के समान बनवाते थे। पिरामिड युगीन मन्दिरों में आगे एक खुला प्रांगण, उसके पीछे स्तम्भयुक्त विशाल कक्ष व उसके पीछे भण्डार के रूप में काम आने वाले लघु कक्ष होते थे। इन लघु कक्षों के मध्य गर्भगृह था, जिसमें काष्ठ निर्मित 1 से 6 फीट तक ऊँची देव प्रतिमा स्थापित रहती थी। देवोपासना के मुख्य अंग प्रतिमा को उत्तम भोजन, पेय और वस्त्रादि अर्पित करना तथा गायन–वादन से सन्तुष्ट करना था। सामान्यतः यहाँ देवताओं का अधिकृत एवं प्रधान पुजारी शासक स्वयं था। कालान्तर में मन्दिर में कई पुजारी हो गए व उनकी प्रतिष्ठा में वृद्धि हो गई। 'मेम्फिस' और 'हेलियोपोलिस' के पुजारी विषेष रूप से शक्तिशाली थे।

परलोकवाद का मिस्री धर्म में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। मिस्रियों में मृत्योपरांत जीवन के नैरन्तर्य में विश्वास था। मिस्री मृत्यु को एक घटना मानते थे न कि जीवन का अन्त। उन्होंने पारलौकिक जीवन की कल्पना बहुत कुछ अपने ऐहिक जीवन के रूप में की है। मिस्रियों का विश्वास था कि प्रत्येक मनुष्य की एक शक्ति विषेष 'का' होती है जिसकी तुलना पार्थिव शरीर से की गई है। इसीलिए मृत्योपरांत इसकी उदरपूर्ति के लिए मृतक की समाधि में भोजन सामग्री, आवष्यकता की प्रत्येक वस्तुओं व शौचालयों की व्यवस्था प्राप्त होती है। पिरामिडकालीन मिस्रवासियों के उच्चतम दार्शनिक विचार 'मेम्फिस का नाटक' व 'मेम्फिस का धर्मशास्त्र' नामक कृति में सुरक्षित है। इसे विश्व की प्राचीनतम दार्शनिक रचना माना जा सकता है। मिस्र के नैतिक दर्शन का केन्द्र बिन्दु 'मात का सिद्धान्त' था। 'मात' शब्द को न्याय, सत्य, नियम व व्यवस्था आदि से सम्बन्धित किया गया है। 'मात' से तात्पर्य प्राकृतिक शक्तियों व या नियमों से है। यह नियम ही प्रकृति में नियमितता, समाज में न्याय व व्यक्तिगत जीवन में सत्य के रूप में अभिव्यक्त होते हैं।

6.5.2 मध्य राज्य युगीन धर्म एवं दर्शन

प्राचीन राज्यकालीन सूर्य (रे) व ओसिरिस की उपासना मध्य राज्यकाल में अधिक प्रतिष्ठित हो गयी। 'रे' मध्यकाल के सर्वाधिक सम्मानित देव बन गए व दूसरे देवताओं को भी 'आमोन रे' से समन्वित किया जाने लगा। उदाहरणार्थ घड़ियालदेव को 'सोब्क रे' कहा जाने लगा। सम्भवतः यह एकेश्वरवादी प्रवृत्ति का प्रारम्भिक रूप था, जिसका पूर्ण विकास साम्राज्यकाल में मिलता है।

मध्य राज्यकाल में 'रे' के समान ही ओसिरिस की प्रतिष्ठा में भी वृद्धि हुयी। यह साधारण जनों में अधिक लोकप्रिय था। ओसिरिस के जन्म, मृत्यु व पुनर्जन्म की कथा को एबाइडोस के पुजारी प्रतिवर्ष नाटक रूप में प्रस्तुत करते थे। इस काल में एबाइडोस मिस्र का प्रमुख तीर्थ बन गया।

इस काल में पारलौकिक जीवन के सम्बन्ध में लोगों का विश्वास और मजबूत हो गया। सम्भवतः ओसिरिस की महत्ता का महत्त्वपूर्ण कारण उसका पारलौकिक जीवन का नियन्ता होना था। मध्य राज्यकाल में ओसिरिस को परलोक का न्यायाधीश माना जाने लगा। परलोक में ओसिरिस अपने 42 न्यायाधीशों की सहायता से मृतात्मा के कर्मों की जाँच करता था कि उसने 42 पाप किए हैं या नहीं। इन 42 पापों में हत्या, चोरी, असत्य भाषण, व्यभिचार, परगमन, ईशनिन्दा आदि का उल्लेख किया गया है। तत्पश्चात् श्रृगालमुखी अनुबिस सत्यता की जाँच हेतु मृतात्मा का हृदय एक पर से तौलता था व दुराचारी होने पर घोर यातनाएँ दी जाती थीं।

मध्य राज्यकालीन पारलौकिक मान्यताओं के फलस्वरूप मिस्री धर्म नैतिकता व सदाचार से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित था। पारलौकिक जीवन के सुख–दुःख नैतिक कर्मों पर आधारित होते थे। मध्य राज्ययुगीन परलोकवाद की एक अन्य विषेषता, पारलौकिक जीवन का विविध प्रकार के संकटों से परिपूर्ण माना जाता है, जिनका उल्लेख पिरामिड टेक्स्ट्रम में भी हुआ है। इन संकटों से बचने हेतु शव पेटिका पर जादुई मंत्र लिखे जाने लगे। इन्हीं के आधार पर कालान्तर में मृतक ग्रन्थों की रचना हुयी।

6.5.3 साम्राज्य युगीन धर्म व दर्शन

मध्य राज्यकाल में मिस्री धर्म पूर्णतया नैतिक था, परन्तु हिक्सॉस आक्रमण के परिणामस्वरूप कालान्तर में पुजारी वर्ग की शक्तियों में वृद्धि होती गयी। साम्राज्यकाल में राजपुरुषों और सैनिकों के अतिरिक्त पुजारी वर्ग का प्रभाव निरन्तर बढ़ता गया। मन्दिरों की भेंट के साथ–साथ उदारचेता शासकों

द्वारा भी पुजारियों को पर्याप्त भूमि मिलने लगी। मन्दिर अब पुजारियों की सुख–सुविधा एवं श्रीवृद्धि के साधन हो गए। पारलौकिक जीवन का कष्ट दिखाकर वह जनता को बहकाने लगे। इन कष्टों का नाश करने हेतु धन लेकर पापमोचक मन्त्र शव पेटिका में रखने लगे। इस काल में पुजारी ऐसे पापमोचक प्रमाणपत्र बेचने लगे, जिनमें ओसिरिस के न्यायालय की पूरी कार्यवाही और मृतात्मा की मुक्ति का विवरण लिखा रहता था। इस काल में नैतिक आदर्श व सदाचार निर्मूल हो गए तथा धर्म व नैतिकता के पारस्परिक सम्बन्ध टूट गए। मिस्र के धर्म की इसी विकृत अवस्था में यहाँ आमेनहोतेप चतुर्थ ने राज्यग्रहण किया।

6.6. बौद्धिक उपलब्धियाँ

मिस्र के प्राचीन राज्यकाल में प्रचलित विविध बौद्धिक उपलब्धियों का ज्ञान प्राप्त होता है। इन बौद्धिक उपलब्धियों में लिपि सर्वप्रमुख है। प्राचीन मिस्री लिपिकला का प्रारम्भ प्रथम राजवंशीय काल में हुआ तथा चतुर्थ राजवंश के समय यह पूर्णतया विकसित हो गयी। मिस्र की प्राचीन लिपि चित्राक्षर लिपि (हाइरोग्लाइफिक) कही जाती थी। 'इरोग्लाइफ' यूनानी शब्द है, जिसका अर्थ पवित्र चिन्ह है। इस लिपि में कुल मिलाकर 2000 चित्राक्षर थे। सुमेरियन कीलाक्षर लिपि की भाँति मिस्री लिपि के चिन्ह भी तीन प्रकार के हैं– भाव बोधक (आइडियोग्राफिक), ध्वनि बोधक (फोनेटिक) तथा संकेत सूचक (डिटर मिनेटिव्ज़)। मिस्री लिपि में प्राचीन राज्य युग में 24 अक्षरों की एक वर्णमाला का आविष्कार किया गया। मिस्र मे प्राचीन राज्यकाल से ही पेपाइरस (नरकुल के गूदे से बना कागज) लिखने का सामान्य साधन था।

शिक्षा साहित्य के क्षेत्र में भी प्राचीन राज्यकाल के लोग विकासशील थें यहाँ पर प्रारम्भिक शिक्षा मन्दिरों में स्थित पाठशालाओं में मिलती थी। पाठ्यक्रम का अधिकांश भाग लेखन कला से सम्बद्ध था। साहित्य रचना में भी मिस्रवासी अग्रणी थे। मिस्री साहित्य विशाल था, परन्तु आज–कल इसका अंश मात्र शेष है। यहाँ के साहित्य हमें धार्मिक, लौकिक व दार्शनिक तीन रूपों में प्राप्त होते हैं। मिस्री साहित्य प्रकृत्या व्यावहारिक था, इसीलिए वह महाकाव्यों, नाटकों और यहाँ तक कि साहित्यिक दृष्टि से आख्यानों की भी रचना नही कर पाये। इस युग की विशिष्ट धार्मिक रचनाएँ पिरेमिड टेक्ट्स हैं। इम्होतेप, केगेम्ने तथा टाः होतेप इत्यादि मन्त्रियों ने अपने अनुभवजनित ज्ञान को लेखबद्ध किया, यह कृतियाँ नीति–ग्रन्थ कहलाती हैं।

विज्ञान के विकास के लिए इस काल के लोगों को पर्याप्त अवसर नहीं

प्राप्त हुआ। उन्होंने विज्ञान के क्षेत्र में व्यावहारिक जीवन से सम्बन्धित ज्ञान का विकास किया। मिस्रवासियों ने ग्रहों और नक्षत्रों का भेद मालूम किया। नक्षत्रों की स्थिति का सही अंदाज करके ब्रह्माण्ड का मानचित्र बनाया। सौर पंचांग का अविष्कार तत्कालीन मिस्रवासियों की महत्त्वपूर्ण सफलता थी। गणित के क्षेत्र में जोड़, घटाना और भाग का ज्ञान उन्हें था, परन्तु गुणा व दशमलव पद्धति से अपरिचित थे। बीजगणित व रेखागणित की प्रारम्भिक समस्याओं का का ज्ञान मिस्रवायियों को था। चिकित्साशास्त्र में भी उन्होंने पर्याप्त प्रगति कर ली थी। प्राचीन मिस्र का प्रथम चिकित्सक इम्नहोते को माना जाता है।

मध्य राज्ययुग में ऐसे अनेक ग्रन्थों की रचना की गयी, जिन्हें साम्राज्य युग में 'क्लासिक' माना जाता था। ऐसी रचनाओं में 'सिनुहे नामक सामन्त की कथा' उदाहरणीय है। प्राचीन मिस्र की यात्रा सम्बन्धी दो कहानियाँ 'सिन्दबाद नाविक की कहानी' तथा 'पोतभंग नाविक की कहानी' विषेष प्रसिद्ध है।

प्राचीन मिस्र का अधिकांश नीति–साहित्य मध्य राज्ययुग में रचा गया। मध्य राज्ययुग ने पिरामिड युगीन नीति साहित्यों में सम्भवतः नवीन सामग्री जोड़ी गयी। इन कृतियों में 'टाः होतेप की नीति' सर्वाद्धिक प्रसिद्ध है। नीति ग्रन्थों के अन्तर्गत ही हम 'मुखर कृषक का आवेदन' (Plea of Allowent Peasant) को रख सकते हैं। यह सम्भवतः किसी उदार फराओ ने लिखवाया था, जो अपने पदाधिकारियों में कर्त्तव्यपरायणता और निश्पक्षता की भावनाएँ दृढ़तर करना चाहता था। एमेनेम्हेल के उपदेशों को भी साहित्य की श्रेणी में रखा गया है। मिस्री निराशावाद की सर्वाधिक प्रभावषाली अभिव्यक्ति सम्भवतः 'वीणावादन का गान' (Song of the Harp Player)। इसकी रचना 11वें वंश के शासनकाल में हुयी। 'वीणावादन' के गान के समान 'इपुवेर की भविष्यवाणी' भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

6.7. कला व स्थापत्य

मिस्रवासियों ने सभ्यता के अन्य क्षेत्रों की भाँति कला व स्थापत्य में भी मानव कला के इतिहास को गौरवान्वित किया। कला के क्षेत्र में मिस्रवासियों का दृष्टिकोण पूर्णतः उपयोगितावादी था। वे प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रेमी थे। मिस्र के प्राचीन राज्य युग की राष्ट्रीय व्यवस्था धर्म पर आधारित था, इसलिए व्यवहार में उनकी कला धार्मिक विश्वासों को स्थूल रूप देने का साधन बन गयी।

मिस्रियों के राष्ट्रीय जीवन के आदर्शों सर्वोत्तम अभिव्यक्ति पिरामिडों में हुयी है। पिरामिड शब्द मिस्री पि–रे–मस से उत्पन्न है, जिसका अर्थ ऊँचा होता है। पिरामिड का निर्माण फराओ की अनश्वरता व गौरव को अभिव्यक्त करेन हेतु किया गया था। पिरामिड के निर्माण में वृहत् पाषाण खण्डों का प्रयोग

प्राचीन राज्य युग में किया गया। 3000 ई0पू0 के लगभग 'मस्तबा' नाम से प्रख्यात समाधियाँ विकसित हुयीं। सक्कर के समीप इम्नहोतेप द्वारा बनवाया गया 195′ ऊँचा सीढ़ीदार पिरामिड प्रमुख है। पिरामिडों की सफलता का अनुमान गिजेह के विशाल पिरामिड को देखकर लगाया जा सकता है। यह 480′ ऊँचा व 755′ लम्बा है। इसमें 2) टन के 23 लाख पाषाण खण्डों का प्रयोग किया गया है।

मन्दिर निर्माण कला का प्रारम्भ प्राचीन राज्यकाल में हो गया। मन्दिर निर्माण में एकाश्म स्तम्भों का प्रयोग किया गया है। मेट्रीपोलिस के प्रथम मन्दिर तथा टाः के मन्दिर का निर्माण मेना के संरक्षण में किया गया।

मिस्री मूर्तिकला वास्तुकला की सहायक और धर्म से सम्बद्ध थी। मूर्तिकला में भी वास्तुकला के समान विशालता, सुदृढ़ता व रुढ़िवादिता का प्रमाण मिलता है। प्राचीन राज्यकालीन पाषाण मूर्तियों में खेफ्रे एवं हेमनेत की बैठी मूर्तियाँ प्रमुख हैं। खड़ी मुद्रा में रैनोफर पुजारी की मूर्ति विशिष्ट उल्लेखनीय है। 'स्फिंक्स' मिस्र की पाषाण मूर्तिकला का अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत करती है।

मिस्री कलाकार द्वारा निर्मित सामान्य जनों की मूर्तियों में अधिक यथार्थता दिखती है। इनमें काहिरा संग्रहालय में संग्रहित ओवरनियर (शेख की मूर्ति) की काष्ठ प्रतिमा विख्यात है। लूबे के संग्रहालय में संग्रहित लिपिक की मूर्ति भी अत्यन्त प्राणवान् प्रतीत होती है। पिरामिड युगीन मिस्र क कलाकारों ने धातु से पूर्णाकार मानव मूर्तियों का भी निर्माण किया। इनमें पेपी प्रथम की काष्ठ के ऊपर ताम्र चढ़ाकर बनायी गयी मूर्ति विश्व प्रसिद्ध है।

प्राचीन राज्यकाल में मन्दिर और मस्तबाओं में रिलीफ चित्रों का अंकन प्राप्त होता है, अपितु यह रिलीफ चित्र अस्वाभाविक प्रतीत होते हैं, परन्तु यह कला के दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है। यहाँ पर चित्रकला का विकास रिलीफ चित्रों के साथ ही प्राप्त होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मिस्र के प्राचीन राज्य युग में कला, विज्ञान, गणित, औषधिशास्त्र काफी उन्नत दशा में था। लोगों को लेखनकला का ज्ञान था। समाज में अधिक भेदभाव व वैमनस्य की स्थिति नहीं थी, स्त्रियों को पर्याप्त सम्मान प्राप्त था।

साम्राज्य युगीन मिस्र के पारलौकिक जीवन–सम्बन्धी विचारों में मूलभूत परिवर्तन उत्पन्न हो गए व फराओ के राज्य के प्रतीक होने की आस्था निर्बल हो गयी व

पिरामिड बनाना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं रह गया। इस काल में विभिन्न मन्दिरों का निर्माण किया गया। इस काल में निर्मित 'कार्नाक का मन्दिर' सम्भवतः विश्व का विशालतम भवन है। यह मन्दिर 1300 फीट लम्बा है। इसका मध्यवर्ती कक्ष 170′ लम्बा व 338′ चौड़ा है। इस कक्ष की छत 6 पंक्तियों में बनाये गये 136 स्तम्भों पर टिकी हैं व मध्यवर्ती बारह स्तम्भ 79′ ऊँचे हैं।

आबू सिम्बेक व लक्सोर के मन्दिरों का निर्माण भी इसी काल में किया गया। 'आबू सिम्बेल का मन्दिर' वस्तुतः एक गुहा मन्दिर है। इसका निर्माण सेती प्रथम व रैमिसिज द्वितीय द्वारा करवाया गया। यह 175′ लम्बा व 90′ ऊँचा है। इसका मध्यवर्ती कक्ष 20′ ऊँचे आठ स्तम्भों पर आधारित था, जिनमें 17′ ऊँचे ओसिरिस की प्रतिमा स्थापित थी। इसके द्वार पर 60′ ऊँची फराओ की चार मूर्तियाँ लक्षित हैं।

मध्य राज्ययुग में साहित्य के साथ–साथ कला व स्थापत्य के भी छिटपुट प्रमाण प्राप्त होते हैं। इस युग की वास्तुकला के अध्ययन में सबसे बड़ी कठिनाई तत्कालीन भवनों की दुश्प्राप्यता है। इस काल में गुहा समाधियों का प्रचलन मिलता है। मध्य राज्ययुग में फायूम के समीप स्थित पिरामिड बहुत छोटे और अधिकांशतः ईंटों के बने हैं। 'हवारा का पिरामिड' सर्वाधिक प्रसिद्ध है। इस युग के मूर्तिकार प्राचीन राज्ययुगीन मूर्तिकारों से अधिक कुशल थे व विशाल मूर्तियाँ बना सकते थे। एमेनेम्हेत की 50′ ऊँची प्रतिमा इसका उदाहरण है, परन्तु इसके साथ ही वह पहले की अपेक्षा परम्परागत बन्धनों में अधिक जकड़े हुए प्रतीत होते हैं।

लक्सोर का मन्दिर अमेनहेतेप तृतीय द्वारा बनवाया गया। मिस्र के मन्दिर विशालता की वेदी पर सौन्दर्य, सन्तुलन अथवा सौष्ठव को अनदेखा नहीं करते। मन्दिरों के साथ–साथ विशालकाय मूर्तियों का निर्माण भी इस काल में किया गया थट्मोस तृतीय, रैमेसिज द्वितीय की कठोर पाषाण निर्मित मूर्तियाँ तो आकाश को छूती हैं। अख्नाटन के काल में हुयी धार्मिक क्रान्ति से याथार्थिक मूर्तिकला को बल प्राप्त हुआ। याथार्थिक मूर्तियों में चूने, पत्थर से निर्मित अख्नाटन व बलुआ प्रस्तर से निर्मित नोफ्रेतीति (अख्नाटन की रानी) की मूर्ति विश्व प्रसिद्ध है।

6.8. अख्नाटन का धर्म व मूल्यांकन

कविह्रदय आमेनहोतेप चतुर्थ एकेश्वरवादी था, पर पुराणपंथिता का विरोधी था। यह मिस्र का ही नहीं, अपितु विश्व का एक विलक्षण व्यक्ति था। आमेनहोतेप चतुर्थ में भावुकता, संवेदनशीलता, आदर्शवाद, संकल्पशक्ति इत्यादि

गुणों का अभूतपर्वू समन्वय था। प्रारम्भ से ही आमेनहोतेप चतुर्थ ने तत्कालीन समाज में धर्म के प्रति विद्यमान बुराइयों को सफलतापूर्वक दूर करने की कोशिश की, परन्तु सफलता न मिलने पर कठोर कदम उठाये।

आमेनहोतेप चतुर्थ ने प्रारम्भ में अन्य देवताओं के प्रति सहिष्णुता का व्यवहार करते हुए अपने धर्म को लोकप्रिय बनाने की चेष्टा की। अपने शासनकाल के प्रारम्भ में उसने नवीन देवता के लिए एक भव्य मन्दिर बनवाया और उसका नाम 'एटन महान की प्रभा' रखा। थीबिज का भी नाम परिवर्तित कर 'एटन की प्रभा का नगर' रखा। परन्तु आमोन के पुजारियों ने इस नए अज्ञात देवता का विरोध किया, जब विरोध असह्य हो गया तो आमेनहोतेप ने उग्र उपायों का अवलम्बन किया। उसने सर्वत्र 'एटन' की पूजा का आदेश दिया। सार्वजनिक स्मारकों पर उत्कीर्ण पुराने देवताओं यथा– आमोन, ओसिरिस आदि का नाम हटवा दिया। आमेनहोतेप ने अपना नाम बदलकर अख्नाटन/इख्नाटन धारण किया, जिसका अर्थ है आतोन या एटन की आत्मा।

अख्नाटन द्वारा प्रयुक्त एटन मूलतः सूर्यदेव 'रे' का ही नाम था। उसने 'एटन' की कल्पना भौतिक सूर्य के रूप में न करके उसके द्वारा प्रदत्त जीवनदायिनी ऊष्मा व प्रकाश के रूप में की है। वह एटन को ऐसी निराकार दैवीय शक्ति मानता था जो अपनी किरणों के रूप में समस्त विश्व में व्याप्त है। यह कल्पना प्रकृत्या सर्वथा आधुनिक व पूर्णतः वैज्ञानिक है। उसने एटनवाद में पुराने अन्धविश्वासों की छाया तक नहीं पड़ने दी। अख्नाटन ने अपने धर्म का नैतिकता से भी घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया। उसका देवता न्यायशील, सत्यप्रिय व हिंसापूर्ण उपायों से प्राप्त विजय का विरोधी था। एटन मनुष्य का ही नहीं प्राणी मात्र का कृपालु पिता कहा जाता था। एटन की उपासना सूर्योदय व सूर्यास्त के समय की जाती थी, स्तुति के लिए कुछ पत्र, पुष्प व फल चढ़ाना पर्याप्त था। अख्नाटन ने सूर्यचक्र को अपने साम्राज्य का प्रतीक माना।

अख्नाटन के धर्म का परलोकवाद का विचार भी बहुत सरल था। उसने 'एमन रे' के पुजारियों द्वारा प्रस्तुत पारलौकिक जीवन व ओसिरिस के अस्तित्व को सत्य मानने से इंकार कर दिया। अख्नाटन के अनुसार मृतात्मा कुछ समय तक उन स्थानों पर निवास करती है, जो जीवितावस्था में प्रिय होते हैं। उसके परलोकवाद में नरक की कल्पना नहीं मिलती है।

परन्तु अख्नाटन के विचार व कार्य उसके समय के अनुकूल नहीं थे। उसके द्वारा स्थापित एकेश्वरवाद स्थायी नहीं सिद्ध हुआ व उसकी मृत्यु के साथ ही उसका धर्म भी समाप्त हो गया। उसके पश्चात् तूतेनखामेन ने पुराने धर्म को

पुनः प्रतिष्ठित किया। अख्नाटन धार्मिक चिन्तन के क्षेत्र में अपने समय से बहुत आगे था और मिस्रवासी इसके सिद्धान्तों को समझने में असमर्थ रहे।

इतिहास के विवादास्पद व्यक्तियों की भाँति अख्नाटन के विषय में भी विद्वानों में मतभेद हैं। ब्रेस्टेड व आर्थर विगेल अख्नाटन को विश्व इतिहास का प्रथम मनुष्य मानते हैं, जिसने धार्मिक, सामाजिक बन्धनों का त्यागकर आदर्शवाद को मूर्त रूप देने चेष्टा की। कुछ विद्वानों अख्नाटन को एक मूर्ख व लोभी शासक मानते हैं। एच0 सी0 राय चौधरी अख्नाटन की तुलना भारतीय सम्राट् अशोक से करते हैं, परन्तु अशोक एक धर्म सहिष्णु शासक था व अख्नाटन द्वारा किए गए धार्मिक सुधार नगण्य हैं। निःसन्देह ही उसकी गणना हम विश्व के महान धर्म सुधारकों में कर सकते हैं।

6.10. बोध प्रश्न

(1). मिस्त्र नील नदी का वरदान है या अभिशाप, व्याख्या किजिए।

(2). अख्नाटन के धर्म पर प्रकाश डालिए।

(3). मिस्त्र की सभ्यता के कला व स्थापत्य पर टिप्पणी कीजिए।

6.11. सन्दर्भ ग्रन्थ

(1). वी. के. पाण्डेय, प्राचीन विश्व की सभ्यताएँ, इलाहाबाद।

(2). श्रीराम गोयल, विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ,वाराणसी, 2011

(3). राजछत्र मिश्र, प्राचीन सभ्यतायें।

(4). आर.एन. पाण्डेय,प्राचीन विश्व की सभ्यताएं,विद्यासागर,इलाहाबाद,1994

(5).बर्न्स, वेस्टर्न सिविलाइजेशन्स,लन्दन,1994

इकाई–7 हित्ती की सभ्यता

इकाई की रूपरेखा

7.0 प्रस्तावना

7.1 उद्देश्य

7.2 राजनीतिक स्थिति

7.2.1 प्राचीन राज्य युग

7.2.2 साम्राज्य युग

7.3 सामाजिक स्थिति

7.4 आर्थिक स्थिति

7.5 धर्म व कला

5.6 बोध प्रश्न

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

7.0.प्रस्तावना

हित्ती सभ्यता का उद्भव प्राचीन एशिया माइनर में हुआ, जिसे हम 'अनातोलिया' के नाम से भी जानते हैं। अनातोलिया को वर्तमान समय में 'टर्की' के रूप में अभिहित किया जाता है। इसी क्षेत्र में हित्तियों ने एक विकसित सभ्यता का विकास किया। हित्ती सभ्यता के विकास में अनातोलिया की भौगोलिक स्थिति का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। इसके उत्तर में काला सागर, दक्षिण में भूमध्य सागर, पूर्व में आरमीनियन पर्वत शृंखला तथा पश्चिम में ईजियन समुद्र स्थित है। इसी के मध्य 700 मील लम्बे व साढ़े तीन सौ मील चौड़े प्रायद्वीप पर, जिसका पश्चिमी व उत्तरी भाग अत्यन्त उपजाऊ था, हित्ती सभ्यता का उद्भव हुआ। यह क्षेत्र खनिज सम्पदा के दृष्टिकोण से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मुख्य रूप से लौह अयस्क के लिए यह क्षेत्र महत्वपूर्ण था। इसी लौह अयस्क की प्रचुर उपलब्धता के कारण पश्चिम एशिया में लौह तकनीकी के उद्भव व विकास का श्रेय हित्तियों को दिया जाता है। हित्तियों को खत्ती नाम से भी जाना जाता है।

हित्ती जाति को भारोपीय परिवार (भारतीय आर्य परिवार) से सम्बन्धित माना जाता है, जिन्होंने अनातोलिया को अपना कार्यस्थल बनाया। हित्तियों के

पूर्व इस क्षेत्र में निवास करने वाले लोगों को 'प्रारम्भिक अनातोलियन' कहा जाता रहा है। गुर्नी महोदय ओल्ड टेस्टामेण्ट के आधार पर हित्ती जाति को प्रारम्भिक अनातोलियन जाति का वंशज माना है।

हित्ती सभ्यता के सन्दर्भ में साहित्यिक व पुरातात्विक साक्ष्यों से जानकारी प्राप्त होती है। साहित्यिक साक्ष्यों में ओल्ड टेस्टामेण्ट का उल्लेख महत्त्वपूर्ण है। ओल्ड टेस्टामेण्ट, हित्तियों का उल्लेख कबीलों के रूप में करता है। मिस्र व असीरियाई कीलाक्षर अभिलेख क्रमशः 'हेता' नामक राज्य व हित्ती देश का उल्लेख करते हैं। हित्ती जाति व सभ्यता के इतिहास के दृष्टिकोण से 1887 ई0 में मिस्र से तेल–एल–अमर्ना पत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह पत्र बेबिलोनियाई अक्कादी भाषा व कीलाक्षर लिपि में उत्कीर्ण है। यह पत्र हित्ती शासक सुप्पिलिल्युमान का है, जिससे हित्ती जाति के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। बोगजकोई अभिलेख हित्ती सभ्यता के विषय में जानकारी प्रदान करता है।

हित्ती जाति के लोगों का मूल निवास स्थान अनातोलिया नहीं था, वह प्रव्रजन कर इस क्षेत्र में आये थे। इनके अनातोलिया आगमन के विषय पर विद्वानों के मध्य मत वैभिन्नय है, परन्तु प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र में हित्ती जाति का आगमन 18वीं शताब्दी ई0पू0 से पहले हुआ नहीं होगा। इन्होंने 1600 ई0 पू0 से 1180 ई0 पू0 के मध्य हित्ती सभ्यता का विकास हुआ। हित्ती जाति ने पहले कुसरा को राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र बनाया तत्पश्चात् कनेरा। नेशा से राज्य की स्थापना कर हित्ती सभ्यता को अपने उत्कर्ष पर पहुँचाया।

7.1.उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य हित्ती सभ्यता के इतिहास के विषय में ज्ञान प्रदान करना है। हित्ती सभ्यता के महत्व, उसके अन्य सभ्यताओं व संस्कृतियों पर प्रभाव, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व अन्य अनेक पहलुओं पर प्रकाश डालती है।

7.2.राजनीतिक स्थिति

प्रारम्भिक हित्ती जाति के इतिहास को हम छोटे–छोटे नगर राज्यों को इतिहास के रूप में समझ सकते हैं। यह नगर स्वतंत्र इकाई के रूप में शासन करते थे। हित्तियों से पूर्व कुसरा/कुस्सर/किस्सुर नाम नगर राज्य का वर्चस्व था, जिसका शासक अक्ति था, जिसे हित्तियों ने परास्त कर हत्ती नामक नगर राज्य की नींव डाली, कालांतर में इसी नगर राज्य ने अन्य नगरी पर अपना

प्रभुत्व स्थापित किया। इन्होंने 'हित्तुमस' को अपनी राजधानी बनाया, जिसे वर्तमान समय में बोगजकोहे कहा जाता है। हित्ती जाति के राजनीतिक इतिहास का अध्ययन मुख्यतः दो युगों के सन्दर्भ में किया जा सकता है– (1) प्रथम युग– प्राचीन राज्य युग, (2) द्वितीय युग–साम्राज्य युग।

7.2.1. प्राचीन राज्य युग–

इस युग में हित्ती साम्राज्य की स्थापना हुयी, जिसका श्रेय 'लबर्नस' को जाता है। लबर्नस ने हददुसा के दक्षिणी व उत्तरी क्षेत्रों को जीता। इसने सीरिया के सेमेटिक अमोराइट साम्राज्य के विरुद्ध अभियान किया, परन्तु राजधानी 'अलेप्पो' पर कब्जा नहीं किया। इसके द्वारा हित्तियों के एकीकरण व लबर्नस के पश्चात् हत्तुसिलिस प्रथम शासक बना।

साम्राज्य विस्तार की जानकारी 16वीं शताब्दी ई0पू0 के द एडिक्ट ऑफ टेलीपिनु (The edict of Telepinu) से होती है। हत्तुसिलिस प्रथम अपने भाषण अभिलेख (The edict of Telepinu) के लिए भी प्रसिद्ध है। इसी के द्वारा हित्ती राजधानी किस्सुर से हत्तुसस स्थानांतरित की गयी।

हत्तुसिलिस प्रथम के पश्चात् उसका पौत्र मुर्सिलिस हित्ती साम्राज्य का शासक बना। इसने अपने दादा के विजय क्रम को बनाए रखा। मुर्सिलिस ने बेबीलोन से एमोराइट शासकों की सत्ता पूर्णतः समाप्त कर बेबीलोन पर अधिकार कर लिया। इसने सम्पूर्ण एशिया माइनर में हित्ती साम्राज्य को सुदृढ़ किया तथा उत्तरी सीरिया पर अधिकार किया। बेबीलोन पर मुर्सिलिस के आक्रमण व अधिकार को क्षणिक कह सकते हैं, क्योंकि हित्ती साम्राज्य अभी भी आंतरिक संघर्षों में व्यस्त था। मुर्सिलिस प्रथम की हत्या उसके बहनोई हार्टली प्रथम द्वारा की गयी, जिसके फलस्वरूप सम्पूर्ण हित्ती साम्राज्य में अराजकता व्याप्त हो गयी। हंटिली प्रथम के बाद तेलिपिनस प्राचीन राज्य युग का अगला शासक हुआ। तेलिपिनस आंतरिक संकट व अव्यवस्था के दौर से साम्राज्य को बाहर निकालने का प्रयास किया। उसका एक महत्त्वपूर्ण कार्य था उत्तराधिकार के नियमों का सुनिश्चितिकरण। इसने युद्ध नीति के स्थान पर शान्ति नीति को महत्व दिया। तेलिपिनस द्वारा तैयार विधि संहिता बोगजकोई उत्खनन से खण्डित अवस्था में प्राप्त हुयी है। तेलिपिनस के उत्तराधिकारी अयोग्य सिद्ध हुए जिसके परिणामस्वरूप प्राचीन राज्य काल का अन्त हो गया।

7.2.2. साम्राज्य युग–

पन्द्रहवीं शताब्दी ई0पू0 में प्राचीन राज्य युग के पतनोपरांत हित्ती

साम्राज्य के नए युग का प्रारम्भ हुआ। इस युग के प्रारम्भिक इतिहास के विषय में अधिक ज्ञान नहीं प्राप्त होता है। क्योंकि इसे अपने शासन की शेषवास्था में ही क्रमशः मिस्र के फराओ थटमोस तृतीय व मितन्नी शासकों के आक्रमणों का सामना करना पड़ा। साम्राज्य युग हित्ती साम्राज्य के पुनर्रूत्थान का श्रेय सुप्पिलिल्युमस्/सिप्पिलिल्युमस को दिया जाता है। सिप्पिलिल्युमस ने 1380 ई0पू0 से 1335 ई0पू0 तक शासन किया। इसका शासन कालकोहित्ती साम्राज्य के उत्कर्ष काल माना जाता है।

सिप्पिलिल्युमस ने सत्ता संभालते ही सर्वप्रथम आन्तरिक सुरक्षा पर विषेष ध्यान दिया। उसने हित्ती राजधानी हत्तुसस को चाहरदीवारी से घिरवाया तत्पश्चात् उसने साम्राज्य विस्तार का क्रम प्रारम्भ किया। इस विजय अभियान में भाग्य ने भी सिप्पिलिल्मुमस का पूर्ण सहयोग किया। इस समय हित्तियों के दोनों शत्रु मिस्र व मितन्नी अपनी आंतरिक समस्याओं में उलझे हुए थे। इस सुअवसर का लाभ उठाते हुए सिप्पिल्लियुमस ने मितन्नियों पर दो आक्रमण किए। प्रथम आक्रमण में वह असफल रहा, परन्तु द्वितीय आक्रमण में उसे सफलता प्राप्त हुयी। मितन्नी विजय के परिणामस्वरूप सीरिया पर हित्तियों का अधिकार हो गया तथा सिप्पिल्लिुमस ने अपने पुत्र मुर्सिलिस द्वितीय को सीरिया का गवर्नर नियुक्त किया।

सिप्पिलिल्युमस के पश्चात् उसका योग्य पुत्र मुर्सिलिस द्वितीय हित्ती साम्राज्य का शासक बना। मुर्सिलिस द्वितीय ने 1334 ई0पू0 से 1306 ई0पू0 तक शासन किया। इसके शासनकाल को हित्ती साम्राज्य के उत्कर्ष का तथा मिस्र के पराभव का काल कहा जा सकता है। मुर्सिलिस ने सीरिया व उत्तरी–पूर्वी राज्य के विद्रोहों को शान्त किया। मुर्सिलिस का उत्तराधिकारी मुबतल्लिस् हुआ। मुबतल्लिस् का समकालीन मिस्र का शासक सेती प्रथम था, जिसने हित्ती साम्राज्य के प्रांत केनान को जीतकर मिस्र में मिला लिया, जिसके परिणामस्वरूप हित्ती व मिस्र के सम्बन्ध कटुतापूर्ण हो गए। मिस्री शासक रेमेसिस द्वितीय (1300 ई0पू0–1234 ई0पू0) के काल में इन सम्बन्धों में और कड़वाहट आ गयी। साम्राज्य विस्तार के प्रश्न पर मुबतल्लिस व रेमेसिस द्वितीय के मध्य युद्ध हुआ। इस युद्ध में मुबतल्लिस की विजय ने एक बार पुनः हित्ती साम्राज्य की प्रतिष्ठा को स्थापित किया।

मुबतल्लिस के पश्चात् क्रमशः अर्हीतेशुब (1282 ई0पू0–1275 ई0पू0), हत्तुसिलिस तृतीय (1275 ई0पू0–1250 ई0पू0) ने शासन किया। हत्तुसिलिस तृतीय ने राजधानी हत्तुसा ने तारहुंतसा (द0म0 अनातोलिया) स्थानांतरित की। उसका भाई मुवतल्ली द्वितीय है। यह अपने वंश का अन्तिम प्रसिद्ध सम्राट् था।

12वी शताब्दी से उत्तरार्द्ध तक आते–आते हित्ती साम्राज्य का पूर्णतः पतन हो गया। इस पतन का मुख्य कारण असीरिया का उदय माना जाता है। जैसा कि बोगजकोई अभिलेख से ज्ञात होता है कि इस साम्राज्य का अन्तिम सम्राट् अनुरवन्दा था, जो मिस्री परम्पराओं से अधिक प्रभावित था। हित्ती साम्राज्य के पतन के पश्चात् नव–हित्ती राज्य का उदय हुआ परन्तु नव हित्ती राज्य के अभिलेख हाइरोग्लाइफिक लिपि में उत्कीर्ण है, जिसका उद्वाचन अभी तक नहीं किया गया है। अतः इनका इतिहास अन्धकारमय है।

7.3.सामाजिक स्थिति

हित्ती साम्राज्य से सम्बन्धित प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि यह समाज तीन वर्गों यथा– शासक, शासित व दास में विभाजित था। इस विभाजन का आधार सम्भवतः रक्त सम्बन्ध माना जाता है। हम यह देख चुके हैं कि हित्तियों की सौम्यता भारोपीय परिवार से की जाती रही है। इसे ही शासक वर्ग की श्रेणी में रखा जाता है क्योंकि हित्ती राज्य में सामंतों का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। अतः सामंत ही शासक वर्ग था। शासक वर्ग भाषा व जाति के दृष्टिकोण से भी अन्य वर्गों से भिन्न था। इस वर्ग के स्वजनों का भी समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान था। मुख्य प्रधान पदों पर नियुक्ति इसी वर्ग 'महापरिवार' से की जाती थी, जिन्हें 'पानकू' नाम से पुकारा जाता था।

हित्ती समाज के शासित वर्ग के अन्तर्गत साधारणजन को रखा जाता है। इस वर्ग के विषय में हमारा ज्ञान शून्य है, क्योंकि इनसे सम्बन्धित साक्ष्यों का पूर्णतः अभाव है। यह वर्ग सम्भवतः छोटे–छोटे कस्बों में निवास करता था, जिसका शासन प्रबन्ध ज्येष्ठ व्यक्तियों द्वारा संचालित एक संस्थान द्वारा किया जाता था। नगरों के गवर्नर इन स्थानीय सभाओं/संस्थाओं के संचालन में सहयोग प्रदान करते थे।

हित्ती साम्राज्य में शासित वर्ग को पुनः दो वर्गों कृषक व दस्तकार में विभाजित किया गया था। कृषक वर्ग की जनसंख्या अधिक थी। दस्तकार के अन्तर्गत कुम्हार, चर्मकार, लुहार व जुलाहों को रखा जाता था। हित्ती समाज में नागरिक पूर्णतः स्वतंत्रत थे परन्तु हित्ती शासक वर्ग उनसे बेगार करवा सकता था।

हित्ती समाज में तृतीय वर्ग दासों का था। दासों के विषय में हमें परस्पर विरोधी साक्ष्य प्राप्त होते हैं अतः इनकी वास्तविक स्थिति/दशा के विषय में कुछ भी स्पष्ट कह पाना कठिन लगता है। युद्ध में विजित लोगों को बन्दी बनाकर दास वर्ग में रखा जाता था। कुछ अभिलेखों में दासों के स्वामी को

अनन्त अधिकार की बात रते हैं वहीं हित्ती विधि संहिता में दासों के लिए शासित वर्ग के ही कानूनों व नियमों का उल्लेख मिलता है। दास सम्पत्ति नहीं अर्जित कर सकते थे और न ही वह स्वतंत्र स्त्रियों से विवाह ही कर सकते थे। दासों के प्रति किए गए अपराधों की क्षति पूर्ति अन्य नागरिकों की तुलना में कम थी। साक्ष्यों के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि हित्ती समाज में दो प्रकार के दास थे, प्रथम वह जो पूर्णतः अपने स्वामियों के अधीन थे व द्वितीय वह जिनको कुछ अधिकार प्राप्त थे।

हित्ती समाज में स्त्रियों की दशा अच्छी थी। हित्ती प्रशासन ने कुछ पद यथा पुजारीगण तथा राजमाता हित्ती प्रशासन में स्त्रियों के योगदान को दर्शाते हैं। इनकी अपनी व्यक्तिगत मुद्रायें होती थीं, जिनका प्रयोग यह सन्धि पत्रों आदि पर करती थी। हित्ती समाज में स्त्रियों को उच्च पदों के योग्य भी माना जाता था। यह शासन का संचालन भी करती थीं। हित्ती साम्राज्य में पितु–हप नामक रानी के अपने पति के मृत्योपरांत सह संरक्षिका के रूप में शासन करने का उल्लेख मिलता है। इनके जीवन में मातृशक्ति की प्रतिष्ठा भी तत्कालीन सामज में स्त्रियों की उच्च दशा की द्योतक है।

अनातोलिया के मूल निवासियों का समाज मातृसत्तात्मक था परन्तु हित्तीजन पितृसत्तात्मक समाज को मानने वाले थे। पिता का पुत्र पर सर्वोच्च अधिकार समझा जाता था तथा पुत्र हत्या को जघन्य अपराध की श्रेणी में रखा जाता था। हित्ती समाज में विवाह को महत्व दिया जाता था। निकट रक्त सम्बन्ध में विवाह को वर्जित माना जाता था। कुछ साक्ष्य दहेज प्रथा के प्रचलन का भी प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

हित्ती समाज में दो प्रकार के मृतक संस्कारों का प्रचलन देखने को मिलता है। प्रारम्भ में यह मृतक शरीर को दफनाते थे परन्तु कालांतर में इन्होंने दाह संस्कार की प्रथा को अपना लिया। यह दाह संस्कार के पश्चात् मृतक अवषेष को कपड़े में लपेटकर पर्वत की गुफा में डाल देते थे।

7.4.आर्थिक स्थिति

अनातोलिया/टर्की की भौगोलिक अवस्थिति व जलवायु अत्यन्त विपरीत है। यहाँ ग्रीश्म ऋतु व शीत ऋतु अत्यन्त भीषण होती है। इसका मध्य भाग मरुस्थल है। इस दृष्टिकोण से नदियों के आस–पास का क्षेत्र ही मानव सभ्यता–संस्कृति के विकास योग्य माना जा सकता है। नदियों का यह क्षेत्र अत्यन्त उर्वर था, जिसका लाभ हित्ती समाज ने उठाया। हित्तियों की अर्थव्यवस्था जानने का प्रमुख स्रोत हित्तियों की विधि संहिता है। जिससे यह

ज्ञात होता है कि हित्तियों की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि था।

हित्ती साम्राज्य में विभिन्न प्रकार के भू–स्वामित्व थी। साम्राज्य की अधिकांश भूमि पर राजा का अधिकार था, वह भूमि का समय–समय पर विभाजन अपने सामंतों व कृपा पात्रों में करने के लिए स्वतंत्र था। हित्ती शासक के पश्चात् सर्वाधिक भूमि, मन्दिरों के पास थी परन्तु वह भी राजा को कर प्रदान करते हैं। अर्थात् हित्ती साम्राज्य में भूमि का सर्वाधिकार राजा के पास सुरक्षित था। वह सामंतों, मन्दिरों व सैनिकों के मध्य भूमि विभाजित कर उनसे कर वसूल करता था। यहाँ की प्रमुख कृषि उपजों के अन्तर्गत गेहूँ और जौ को रखा जाता है। भूमध्य सागर के समीप स्थित होने के फलस्वरूप यहाँ की जलवायु फलों की बागबानी के लिए अत्यन्त अनुकूल थी। यहाँ अंगूर, अंजीर व जैतून मुख्य रूप से उगाया जाता था। अंगूर का प्रयोग मुख्य रूप से शराब निर्माण में किया जाता था।

हित्तियों की अर्थव्यवस्था में कृषि के पश्चात् द्वितीय स्थान पशुपालन का था। यह घोड़ा, खच्चर, बैल, सुअर, भेड़, गाय, बकरी व गधे को बोलते थे। हित्तियों की विधि संहिता में पशुपालन से सम्बन्धित अनेक विधि–विधानों का उल्लेख मिलता है। सम्भवतः एशिया माइनर क्षेत्र में सर्वप्रथम घोड़े के प्रयोग का श्रेय हित्तियों को दिया जा सकता है। पशुओं में आदान–प्रदान व उससे सम्बद्ध अनेक नियम विधि संहिता में उल्लिखित है।

हित्ती साम्राज्य की अर्थव्यवस्था में कृषि व पशुपालन के पश्चात् तृतीय परन्तु महत्त्वपूर्ण स्थान धातु उद्योग का था। ध्यातव्य है कि अनतोलिया का क्षेत्र खनिज सम्पदा की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है। हित्तियों के इस क्षेत्र में आगमन से पूर्व ही रजत व ताम्र धातु प्रचलन में थी। साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि असीरियन व्यापार के माध्यम से ताँबे का निर्यात करते थे व विनिमय हेतु चाँदी का प्रयोग किया जाता था। यहाँ चाँदी के शेकेल प्रचलन में थे। यह क्षेत्र लौह अयस्क के भण्डार के लिए प्रसिद्ध था, परन्तु लोहे की उच्च धात्विकी तकनीकी के ज्ञान के अभाव में अधिकांशतः ताँबे व कांसे के उपकरण अधिक प्रचलन में थे। हित्तियों ने इस क्षेत्र में लौह धात्विकी तकनीक का विकास किया। आज एक दशक पूर्व भारतीय उपमहाद्वीप में भी लौह धात्विकी की उत्पत्ति का श्रेय अप्रत्यक्ष रूप से हित्तियों को दिया जाता था परन्तु अब प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर यह मत धराशायी हो गया। परन्तु इसमें कोई भी संशय नहीं है कि अनातोलिया के क्षेत्र में लौह धात्विकी का श्रीगणेश हित्तियों द्वारा किया गया। हित्ती अभिलेखों ने लौह निर्मित उपकरणों मुख्यतः तलवारों व मूर्तियों का प्रायः उल्लेख उनके उच्च लौह धात्विकी ज्ञान को दर्शाता है।

हित्तियों की अर्थव्यवस्था में व्यापार–वाणिज्य का भी महत्त्वपूर्ण योगदान था। यहाँ विनिमय का माध्यम चाँदी की छड़ें थीं तथा बाट की प्रमुख इकाई 'शेकेल' थी। हित्तीजन चाँदी, ताँबा व लोहे के बदले वस्त्र व टिन का आयात करते थे। व्यापार में विनिमयन का प्रमुख माध्यम वस्तु विनिमय था। हित्ती साम्राज्य में बेबीलोन, साइप्रस व इजियन प्रदेश से वैदेशिक व्यापार किया जाता था। हित्ती अभिलेखों में साइप्रस का उल्लेख 'अलसिया' नाम से किया गया है।

साइप्रस अपनी ताम्र ख्दानों के लिए प्रसिद्ध था। हित्ती साम्राज्य में वस्तु का मूल्य राज्य द्वारा निर्धारित किया जाता था, जिसकी सूची हमें हित्ती विधि संहिता से प्राप्त होती है। इसमें बकरी का मूल्य 2/3 शेकेल, भेड़ का 1 शेकेल तथा घोड़े का 14 शेकेल निर्धारित था। इनकी वस्तुओं के मूल्य निर्धारण में बेबिलोनियन प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

7.5.धार्मिक स्थिति

प्रत्येक सभ्यता के प्रारम्भ में धर्म का स्वरूप प्रायः प्राकृतिक मिलता है। अनातोलिया के मूल निवासी भी प्रकृति पूजक थे। यह प्रकृति के विभिन्न रूपों की उपासना करते थे। यह पशुओं व प्राकृतिक शक्तियों यथा– वृक्ष, नदी, पर्वत, वायु, पक्षी आदि की उपासना करते थे। द्वितीय सहस्राब्दी ई0पू0 में हित्ती समाज के देवताओं का मानवीकरण हो गया। हित्ती समाज में अत्यन्त उदारवादी था, जिसका प्रभाव इनके देवमण्डल पर देखने को मिलता है। इनका देवमण्डल बहुदेववादी था तथा प्रत्येक नगर का अपना देवता था। हित्ती नगर देवताओं में 'ऋतुदेव' नामक देवता का स्थान महत्त्वपूर्ण था। यह युद्ध देवता के रूप में प्रसिद्ध था। ऋतुदेव का वाहन वृषभ, आयुध त्रिशुल व सिंहवाहिनी देवी पत्नी थी। इसलिए ऋतुदेव का तादात्म्य शिव से स्थापित करने का प्रयास करते हैं। हत्तुसिलिस तृतीय ने सिंहवाहिनी देवी की उपासना को राजधर्म की संज्ञा प्रदान की। हित्ती समाज में चन्द्रदेव को 'बराक', समुद्रदेव को 'ईया', ऋतुदेव की पत्नी देवत, सपक्ष सिंहवाहिनी देवी को 'शॉष्का' कहा जाता था। एरिका सूर्य देवी थीं। इनके देवमण्डल में उपर्युक्त वर्णित देवी–देवताओं के अतिरिक्त पाताल देव 'देसुई' व कृषक देव 'तेली पिनु' प्रसिद्ध थे। हित्ती समाज का देवमण्डल अत्यन्त विस्तृत था, जिसके सभी देवी–देवताओं का उल्लेख कर पाना भी असम्भव था। हित्तियों ने अपने देवी–देवताओं के अतिरिक्त सुमेरियन व बेबिलोनियन सभ्यता में प्रचलित कुछ देवी–देवताओं यथा– अनु, एनलिल, निनलिल व इया को भी अपने देवमण्डल में स्थान दिया था।

हित्ती साम्राज्य में प्रचलित धर्म को मान्यताओं व संरक्षण के आधार पर

राजधर्म व प्रादेशिक धर्म में विभक्त किया जा सकता है। हित्ती साम्राज्य के राजधर्म का मुख्य केन्द्र मातृदेवी उपासना था। द्वितीय सहस्राब्दी में सम्पूर्ण एशिया माइनर व पश्चिमी एशिया में मातृदेवी उपासना का प्रमुखता से प्रचलन देखने को मिलता है। प्रत्येक सभ्यता व संस्कृति के एक प्रमुख देवी–देवता का उल्लेख साक्ष्यों से प्राप्त होता है। हित्ती समाज की प्रमुख देवी एरिन्ना नगर की सूर्यदेवी थी। उसे हित्ती साम्राज्य भी रक्षा करने वाली देवी माना गया है। एरिन्ना की सूर्यदेवी को अन्य अनेक उपमानों जैसे– हित्ती देश की रानी, पृथ्वी व आकाश की रानी से विभूशित किया जाता रहा है। सूर्यदेवी के समान ही महत्व ऋतुदेव नामक देवता को प्राप्त था, यह सूर्यदेवी का पति था। हुर्री जाति के आक्रमणों के पश्चात् हित्ती साम्राज्य के लोग हुर्री देवी हेपत के सम्पर्क में आए व उसकी उपासना करने लगे। हित्ती साम्राज्य कालीन धर्म पर ईजियन धर्म का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। हित्ती नगरों में छोटे–बड़े मन्दिर बनाकर देवी–देवताओं की उपासना की जाती थी। इनके धार्मिक जीवन में जादू–टोने व तंत्र–मंत्र का महत्त्वपूर्ण स्थान था।

हित्तीजनों की परलोक विषयक अवधारणा का स्पष्ट ज्ञान नहीं प्राप्त होता है परन्तु कुछ मुद्राएँ व मुहरें अप्रत्यक्ष रूप से पारलौकिक जीवन के विषय में ज्ञान प्रदान करती है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि हित्तियों का धर्म बहुदेववादी था। इसमें कर्मकाण्ड, तंत्र–मंत्र, जादू–टोने और अप्रत्यक्ष परलोकववाद स्पष्ट रूप से दृष्टव्य है।

7.6.कला व स्थापत्य

हित्ती लौह तकनीकी ज्ञान के साथ–साथ अपने कला व स्थापत्य के लिए भी प्रसिद्ध थे। हित्ती साम्राज्य की कला को काल के आधार पर प्रारम्भिक अनातोलियन व साम्राज्यवादी हित्ती काल में विभक्त कर सकते हैं। प्रारम्भिक अनातोलियन कला के साक्ष्य अलजहुयुक नामक स्थल से प्राप्त होते हैं। अलजहुयुक स्थल से अनेक समाधियाँ, चाँदी व ताँबे की पशु मूर्तियाँ, बर्तन व आभूषण प्राप्त हुयी हैं, जो हित्तियों के कलात्मक ज्ञान का अनुपम उदाहरण हैं। हित्तियों के प्राचीन राज्य युग काल में बोगजकोई पुरास्थल को प्रमुख कला केन्द्र के रूप में देखा जा सकता है। इस काल की अन्य मुख्य कलाकृतियों में हम मृद्भाण्डों की गणना कर सकते हैं। इस काल में हमें विभिन्न प्रकार के हस्तनिर्मित मृद्भाण्डों की प्राप्ति होती है। साम्राज्यकाल कला के दृष्टिकोण से प्राचीन राज्य काल की तुलना में अधिक विकसित था। इस काल में हित्तीजनों में कला के क्षेत्र में नवीन प्रयोग करने प्रारम्भ कर दिए थे। साम्राज्यकाल में

हस्तनिर्मित मृद्भाण्डों का स्थान चाक निर्मित व परिश्कृत मृद्भाण्डों ने ले लिया। इस काल के मृद्भाण्ड लोहित वर्ण के व अत्यन्त चमकीले लेप से युक्त है।

हित्तीजनों ने कला के साथ ही साथ स्थापत्य के क्षेत्र में नवीन प्रतिमान स्थापित किए। इन्होंने अनातोलिया के स्थापत्य कला के द्वार मण्डप का निर्माण प्रारम्भ किया। प्राचीन राज्य काल में स्थापत्य कला से सम्बन्धित उदाहरणों की मात्रा अत्यल्प है। हित्ती स्थापत्य कला के लिए साम्राज्य काल, स्वर्ण काल के समान था। हित्तियों के द्वारा विकसित द्वार मण्डप स्थापत्य को 'विलहिलानी' अथवा 'हिलानी' कहा जाता था। इसका निर्माण विषेषकर राजप्रसादों में किया जाता था। विलहिलानी मुख्यतः दो पशु आकृतियों के ऊपर स्तभों को स्थापित करके बनाये जाते थे। कुछ कलाविदों का मत है कि हित्तियों का प्रस्तर स्थापत्य कला मिस्त्रियों से प्रभावित है। द्वार मण्डप में जाने हेतु सीढ़ियाँ बनी होती थीं। हित्तीजन राज्यों को विजित कर नवीन नगरों की स्थापना करने के लिए प्रसिद्ध थे। सम्भवतः यूनानियों ने भी इन्हीं के पद्चिन्हों पर चलकर विजित क्षेत्रों में नवीन नगरों का निर्माण किया होगा। हित्ती नगरों का निर्माण किसी ऊँचे स्थल पर करते थे। हित्ती राजधानी हत्तुसस को पश्चिमी एशिया की प्रथम प्रस्तर प्राचीन से घिरे नगर होने का श्रेय दिया जाता है। हत्तुसस को आधुनिक बोगजकोई से समेकित करते हैं। यह नगर क्षेत्रफल के दृष्टिकोण से बेबीलोन से भी विस्तृत था। हत्तुसस 2200 मीटर लम्बा 0 1100 मीटर चौड़ा आयताकार व दोहरी प्राचीन से युक्त नगर था। प्राचीर में तोरण द्वार का निर्माण किया गया था। हत्तुसस के अतिरिक्त हित्तियों में अनातोलिया व हित्ती साम्राज्य में अनेक छोटे–छोटे कस्बे के रूप में नगरों को विकसित किया था। इन नगरों के अन्तर्गत हम मलयाना, लोमना, ओयुक, इकोनियन, हमथ, अलेप्पो, कादेश व कार्देमिश आदि नगरों की गणना कर सकते हैं।

हित्तियों को इनके मन्दिर व रिलीफ स्थापत्य कला के लिए भी जाना जाता है। हत्तुसस नगर के उत्खनन के फलस्वरूप मन्दिर के अवषेष प्रकाश में आए हैं। हित्ती मन्दिर प्रायः एक विस्तृत प्रांगण 200 X 500 वर्गमीटर मध्य स्थित होते थे व इसके चारो ओर छोटे–छोटे कक्षों का निर्माण किया जाता था। मन्दिरों में गर्भगृह प्रांगण के मध्य में न होकर कोने में निर्मित किया जाता था। हित्ती मन्दिरों में वातायन की व्यवस्था का पूरा ध्यान दिया गया है।

हित्ती भवनों को रिलीफ के माध्यम से अलंकरण करने की कला से भली–भाँति परिचित थे। यजिलीकल की गैलरी हित्ती स्थापत्य कला का अप्रतिम उदाहरण है। इस गैलरी में देवी–देवताओं को दो पंक्तियाँ दर्शायी गयी हैं। देवियों की पंक्ति का नेतृत्व मातृदेवी 'हेपत' को करते हुए दिखाया गया है।

अनेक विद्वानों ने इस रिलीफ अंकन की व्याख्या भिन्न–भिन्न तरह से की है। रिलीफ में आकृति में धड़ को सीधे परन्तु सिर व पैर व पार्श्व की ओर बनाना हित्ती रिलीफ की प्रमुख विषेषता है। इस दृश्य के अतिरिक्त हित्ती राजधानी बोघजकोई से प्राप्त द्वारपाल योद्धा की मूर्ति भी कलात्मकता की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अलजहुयुक स्थल से प्राप्त स्फिंक्स व सिंह मूर्ति भी महत्त्वपूर्ण है।

हित्ती मुद्राएँ भी उनके कौशल व कला ज्ञान का प्रदर्शन करती हैं। हित्ती मुद्राओं पर निर्मित आकृतियाँ रिलीफ चित्रों से साम्यता रखती है। हित्ती मुद्राएँ शंक्वाकार, धनाकार व बेलनाकार है। इन पर हित्ती देवता अथवा उसके प्रतीक का अंकन तथा हाइरोग्लाइफिंक लिपि में लेख उत्कीर्ण है। हित्ती राजमुद्राओं पर सपक्ष सूर्य चक्र का अंकन मिलता है, जिसे विद्वान् मिस्र का प्रभाव मानतते हैं। कालांतर ने हित्ती मुद्राओं पर असीरियन प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

इस प्रकार हित्ती कला व स्थापत्य में निपुण थे, परन्तु स्थापत्य के क्षेत्र में उन्होंने नवीन प्रतिमानों की स्थापना की। उनके मन्दिर, भवन व रिलीफ उनके उत्कृष्ट स्थापत्य ज्ञान को दर्शाते हैं।

7.7. बोध प्रश्न

1. हित्ती सभ्यता की उपलब्धियों की व्याख्या कीजिए।
2. हित्ती सभ्यता के धर्म व कला पर प्रकाश डालिए।

7.8. सन्दर्भ ग्रन्थ

1. वी. के. पाण्डेय, प्राचीन विश्व की सभ्यताएँ, इलाहाबाद।
2. श्रीराम गोयल, विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ,वाराणसी,2011
3. राजछत्र मिश्र, प्राचीन सभ्यतायें।

इकाई–8 ईजियन सभ्यता

इकाई की रूपरेखा

8.0 प्रस्तावना

8.1 उद्देश्य

8.2 राजनीतिक स्थिति

8.3 सामाजिक स्थिति

8.4 आर्थिक स्थिति

8.5 धर्म व कला

8.6 कला व स्थापत्य

8.7 बोध प्रश्न

8.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

8.0.प्रस्तावना

ईजियन प्रदेश में विकसित होने वाली सभ्यता ही ईजियन सभ्यता के रूप में जानी जाती है। भौगोलिक रूप से यह क्षेत्र एक से अधिक इकाईयों से मिलकर बनता है जिन्हें हम प्रमुख रूप से चार हिस्सों में बाँट सकते हैं– (1) यूनान, (2) क्रीट, (3) साइक्लेड्स, (4) एशिया माइनर का पश्चिमी तट।

8.1.उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य ईजियन सभ्यता के इतिहास के विषय में ज्ञान प्रदान करना है। यह इकाई ईजियन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व अन्य अनेक पहलुओं पर प्रकाश डालती है।

(1) यूनान

यूनान बाल्कन प्रायद्वीप के दक्षिणी–पूर्वी हिस्से में अवस्थित है, जिसे उत्तरी, मध्यवर्ती और दक्षिणी तीन हिस्से में बाँटा जाता है। यह ईजियन, एडियाट्रिक एवं आयोनियन समुद्रों के मध्य स्थित है। ईजियन समुद्र इसे पूर्व में एशिया माइनर से तो एड्रियाटिक तथा आयोनियन समुद्र पश्चिम में इटली एवं सिसली से पृथक् करते हैं। कोरिंथ तथा सारोनिक खाड़ियों द्वारा यूनान दो हिस्सों में बँटा है। यहाँ की भूमि उपजाऊ है परन्तु पर्वतों से घिरा होने के

कारण इनका क्षेत्रफल अधिक नहीं है। यूनान, एशिया और अफ्रीका महाद्वीपों से निकट है अतः बेबीलोनिया, एशिया माइनर और मिस्र में विकसित होने वाली सभ्यताओं से लाभान्वित होने का अवसर इसे प्राप्त हुआ। यूनान में अनेक नगरों का उदय हुआ जिनमें से केल्सिस, एथेन्स, थीबिज, माइसीनी, हिरींस, टेगिया, मेगालोपोलिस तथा स्पार्टा आदि प्रसिद्ध थे।

(2) क्रीट

यूनान के दक्षिण में क्रीट नाम का द्वीप स्थित है जो आकार में अन्य क्षेत्रों की तुलना में वृहद है। यह ईजियन सागर को भूमध्य सागर से पृथक् करता है। यह द्वीप अफ्रीका, यूरोप और एशिया के मिलन बिन्दु पर है अतः यह एक सांस्कृतिक कड़ी के रूप में विकसित हुआ। ईजियन क्षेत्र में सर्वप्रथम साक्षर नागरिक सभ्यता का उदय यहीं पर हुआ। क्रीट द्वीप में क्नोसॉस/नोसोस सर्वप्रमुख नगर था।

(3) साइक्लेड्स

क्रीट द्वीप के उत्तर और एट्टिका तथा पेलोपोनेसस के पूर्व में स्थित डेलोस नामक छोटे द्वीप के चारों ओर बिखरे हुए द्वीप समूहों को 'साइक्लेड्स' नाम से जाना जाता है। साइक्लेड्स द्वीप समूहों में पेरोस, नेक्सोस, थेरा, सिफनोस तथा मेलोस आदि प्रमुख हैं।

(4) एशिया माइनर का पश्चिमी तट

एशिया माइनर का यह चौथा क्षेत्र पश्चिमी एशिया माइनर का तटवर्ती प्रदेश है। भौगोलिक रूप से यह क्षेत्र एशिया महाद्वीप के अन्तर्गत आता है परन्तु यदि सांस्कृतिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह क्षेत्र ईजियन एवं यूनानी सभ्यता के अधिक निकट था। ट्राय यहाँ का प्रमुख नगर था। कालान्तर में यहाँ अनेक यूनानी उपनिवेश स्थापित हुए जिनमें एओलिस, आयोनिया तथा केरिया प्रसिद्ध हैं। ऐशिया माइनर के इस पश्चिमी तट पर इम्ब्रोस, लेमनोस, लेस्बोस, किओस तथा रोहड्स आदि प्रमुख द्वीप स्थित हैं।

हेरोडोटस, थ्यूसीडाइडीज तथा अरस्तु जैसे विद्वानों के ग्रन्थों में यहाँ का इतिहास सुरक्षित है। इसके अतिरिक्त यहाँ के प्राचीनकाल एवं मध्यकाल के इतिहास को जानने के लिए होमर द्वारा रचित इलियड एवं ओडिसी नामक महाकाव्य भी उल्लेखनीय हैं। कुछ आख्यान जैसे ट्राय के राजकुमार द्वारा हेलेन नामक सुन्दरी का अपहरण, युनानियों द्वारा ट्राय को दण्डित करके उसके नगरों को नष्ट करने, क्रीट के राजा मिनोस द्वारा एक समुद्री साम्राज्य पर शासन

करने जैसे आख्यानों में ईजियन क्षेत्र के प्राचीन इतिहास की प्रतिध्वनि सुरक्षित थी, परन्तु अन्य विश्वसनीय साक्ष्यों के अभाव में इसे कल्पना ही माना जाता था। सामान्यतः यह माना जाता था कि इस क्षेत्र में मानव सभ्यता का इतिहास 1200 ई0पू0 के आस–पास लोहे का प्रयोग करने वाली 'इण्डो–युरोपियन जाति' के आगमन के साथ प्रारम्भ हुआ।

परन्तु कालान्तर में हुए पुरातात्विक अध्ययनों एवं उत्खननों से यह सिद्ध हो गया कि ईजियन प्रदेश में सभ्यता का प्रारम्भ सुमेर, सिन्धु प्रदेश और मिस्र के समान ही काफी पहले हो गया जो काफी समुन्नत थी।

ईजियन प्रदेश व सभ्यता से सम्बन्धित पुरातात्विक साक्ष्यों को खोजने का श्रेय हेनरिख श्लीनान को जाता है। श्लीमान ने होमर के महाकाव्यों ईलियड व ओडिसी के आधार पर 1871 में ट्राय नगर की खोज की व उसका उत्खनन करवाया। ट्राय नगर के उत्खनन से उसे विश्व प्रसिद्ध रानी प्रियम का खजाना प्राप्त हुआ। ट्राय के पश्चात् 1873 ई0 में माइसिनी तथा 1884 ई0 में हिरींस का उत्खान करवाया। इन सभी उत्खननों से आशातीत सफलता के फलस्वरूप ईजियन प्रदेश की समृद्ध सभ्यता प्रकाश मे आयी।

हेनरिख श्लीमान के बाद ईजियन क्षेत्र के पुरातात्विक स्रोत के सन्दर्भ में डॉ0 आर्थर इवान्स का नाम मशहूर है। इवान्स ने क्रीट की चित्रात्मक लिपि का उच्चारण कर ईजियन सभ्यता के अध्ययन में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। क्रीट के पश्चात् वासिलिनी, मोक्लोस व फेस्टॉस से भी ईजियन सभ्यता व संस्कृति के अवषेष प्राप्त हुए।

ईजियन सभ्यता का निर्माण कि लोगों द्वारा किया गया इस विषय में विद्वानों के मध्य मतभेद है। स्पेंग्लर का मत है कि ईजियन सभ्यतावासी मूलतः मिस्र के निवासी थे। ब्रेस्टेड महोदय के अनुसार इनका सम्बन्ध एशिया माइनर से था, परन्तु ईजियन सभ्यता की उत्पत्ति के सन्दर्भ में किए गए शोधों के आधार पर इन्हें भूमध्य सागरीय क्षेत्र से जोड़ना अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है। हम यह कह सकते हैं कि ईजियन सभ्यता ने समकालीन अन्य सभ्यताओं व संस्कृतियों से सामंजस्य बनाने हुए, अपनी विशिष्टता के साथ विकसित हुयी।

8.1.1 ईजियन सभ्यता का काल विभाजन

ईजियन क्षेत्र की कांस्यकालीन सभ्यता का विकास प्रमुखतः क्रीट में हुआ। कालान्तर में महासिनी नगर ने क्रीट का स्थान ले लिया। ईजियन प्रदेश के प्रमुख केन्द्र क्रीट के आधार पर इस सभ्यता को तीन कालों क्रमशः पूर्व

मिनोअन काल, मध्य मिनोअन काल व उत्तर मिनोअन काल में विभक्त किया जाता है। मिनोअन शब्द से तात्पर्य क्रीट के राजा की उपाधि से है, जिसके आधार पर ईजियन सभ्यता को मिनोअन सभ्यता के नाम से भी जाना जाता है।

पूर्व मिनोअन काल का प्रारम्भ 3400 ई0पू0 से माना जाता है। यह ईजियन क्षेत्र की कांस्यकालीन सभ्यता का प्रारम्भिक काल था। इस काल को तीन उपकालों यथा– प्रथम उपकाल (3400–2800 ई0पू0), द्वितीय उपकाल (2800–2400 ई0पू0) व तृतीय उपकाल (2400–2000 ई0पू0) में विभक्त किया गया है। प्रथम उपकाल पाषाण काल व धातु काल में संक्रमण काल था। द्वितीय उपकाल ताम्र धात्विकी के विकास का काल व तृतीय उपकाल को क्रान्ति/परिवर्तन का काल माना जाता है।

मध्य मिनोअन काल 2000 ई0पू0 में प्रारम्भ होता है। यह काल नोसास, फेस्टस व मल्लिया के राजप्रासादों के निर्माण के लिए जाना जाता है। उत्तर मिनोअन काल में पूर्व काल में ध्वस्त मिनोअन का पुनर्निर्माण किया गया। इस काल के भवनों में विलासिता स्पष्ट भवनों पर परिलक्षित होती है।

ईजियन सभ्यता को विविध नामों से जाना जाता है। इसके यह विविध नाम भ्रम की स्थिति उत्पन्न करते हैं। इसे क्रीटन/क्रीट की सभ्यता (क्रीट द्वीप पर स्थित होने के कारण), भू–मध्यसागरीय सभ्यता (भू–मध्यसागर से निकटता के कारण), मिनोअन सभ्यता (मिनोअपन उपाधि के कारण) कहा जाता है।

8.2 राजनीतिक स्थिति

ईजियन सभ्यता कालीन राजनीतिक स्थिति के विषय में साक्ष्यों का अभाव है। प्राप्त साहित्यिक व पुरातात्विक साक्ष्यों से यह ज्ञात होता है कि यह क्षेत्र प्रारम्भ में छोटे–छोटे नगर राज्यों में विभक्त था। 2500 ई0पू0 में इन छोटे–छोटे नगर–राज्यों का विलय कर केन्द्रीय शासन का प्रारम्भ हुआ। क्रीट के शासक निमोआ ने नोसस से केन्द्रीकृत शासन का प्रारम्भ किया। क्रीट की सभ्यता के लिए मिनोआ काल स्वर्ण युग के समान था। यूनानी आख्यान मानॉस को समुद्राधीश्वर की संज्ञा देते हैं। थ्युसिडाइडीज के अनुसार माइनॉस ईजियन सभ्यता का सर्वाधिक शक्तिशाली शासक था। इसका सर्वप्रमुख कार्य नौसेना का सुदृढ़ीकरण था। क्योंकि सुदृढ़ नौशक्ति के द्वारा ही भू–मध्यसागरीय द्वीपों पर विजय प्राप्त की जा सकती थी। माइनॉस ने साइक्लेडीज को अपने अधीन कर लिया। ईजियन क्षेत्र में इसकी प्रसिद्धि का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि इसके नाम का प्रयोग कालान्तर में ईजियन शासकों ने उपाधि की तरह किया। माइनॉस अपनी विशाल सेना का प्रयोग युद्ध की अपेक्षा व्यापार व

आत्मरक्षा के लिए करता था। ईजियन समाज में वह अत्यन्त प्रसिद्ध था।

ईजियन शासन प्रणाली दैवीय सिद्धान्त पर आधारित थी। ईजियन शासक ही राज्य का सर्वोच्च अधिकारी, पुरोहित, न्यायाधीश, सेनापति था। मिनोअन शासक को देवता के समान सम्मान प्राप्त था। प्रारम्भ में उसे वृषभदेव का व कालान्तर में जियस का प्रतिनिधि माना जाने लगा। पुरोहित इसे वल्भनॉस का वंशज मानते थे। मिनोअन शासक को दैवीय प्रतिनिधि कहा जाता था। ईजियन सभ्यता में शासक की सहायता हेतु अनेक अधिकारियों (मंत्री लिपिक, सहायक) की नियुक्ति की जाती थी। ईजियन राजनीतिक संगठन में राजा का स्वरूप कल्याणकारी था। उसे प्रजावत्सल शासक माना जा सकता है। वह प्रजा के कल्याण के लिए यज्ञ भी करवाता था। क्रीट का राजचिन्ह दण्ड परशु था व नॉसास का चिन्ह त्रिदल पुष्प थाा।

ईजियन राजनीति में सेना का प्रमुख स्थान था। सैनिक अस्त्र–शस्त्रों से परिपूर्ण व युद्ध में पारंगत होते थे। ईजियन शासकों ने अपनी नौ–सैनिक शक्ति के बल पर अनेक यूनानी देशों पर आधिपत्य स्थापित कर लिया था। नौसेना का प्रयोग ईजियन शासक समद्री लुटेरों से रक्षा के लिए भी करते थे।

ईजियन सभ्यता कालीन न्याय–व्यवस्था की जानकारी साहित्यिक पुरातात्विक साक्ष्यों से होती है। भित्तिचित्रों से ज्ञात होता है कि न्याय व्यवस्थामें सम्राट का स्थान सर्वोच्च था। उत्खनन में कारागारों के अवषेष अपराधों में करावास सजा के परिचायक हैं। ईयिन सभ्यता में नागरिकों की स्वतंत्रता को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया गया है। ईजियन शासक द्वारा निर्मित कानूनों को देवों की आज्ञा से निर्मित माना जाता था।

इस प्रकार प्राप्त अल्प साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ईजियन सभ्यता में प्रशासनिक व्यवस्था अत्यन्त सुदृढ थी। कई विद्वान तो समुद्री व्यापार व उपनिवेशवाद के प्रारम्भ का श्रेय ईजियन सभ्यतावासियों को देता है।

8.3.सामाजिक स्थिति

ईजियन सभ्यता कालीन जीवन को आदर्श जीवन की संज्ञा दी जा सकता है। विश्व की अन्य प्राचीन सभ्यताओं के विपरीत ईजियन समाज में वर्गभेद व असमानता का कोई स्थान नहीं था ईजियन लोगों में वर्गभेद व असमानता का कोई स्थान नहीं था। ईजियन लोग स्वभाव से उन्मुक्त व स्वतंत्र थे। जिसके लक्षण उनकी सामाजिक व्यवस्था में सरलता से देखे जा सकते हैं। पुरातात्विक उत्खनन से प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि

समाज के सभी वर्गों का जीवन समृद्ध था।

ईजियन समाज की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ईकाई समाज थी। भवनों के अवषेषों से ज्ञात होता है कि प्रारम्भ में परिवार बड़े हुआ करते थे परन्तु कालान्तर में उनक स्थान छोटे परिवारों ने ले लिया। ईजियन समाज में कई परिवारों के समूह को 'जीवस' कहा जाता था। ईजियन समाज में दासता के प्रचलन के साक्ष्य नहीं मिलते हैं। गूर्नियों पुरास्थल से प्राप्त भवनों में 6 से 8 तक कमरे प्राप्त होते हैं। इनका जीवन स्तर अत्यन्त उच्च था। ईयिन सभ्यता में राजप्रासाद अत्यन्त भव्य व सुसज्जित होते थे। ईजियन लोग स्वच्छता प्रिय थे जिसका अनुमान उत्खनन में प्राप्त प्रवाह–प्रणाली से लगाया जा सकता है। इनके जीवन में आमोद–प्रमोद का स्थान महत्त्वपूर्ण था। ईजियन साम्राज्य में नाट्य ग्रहों के प्रमाा प्राप्त होते हैं

ईजियन सभ्यता के लोगों के वस्त्राभूषण का अनुमान भित्ति चित्रों से लगाया जा सकता है। यह रंगीन वस्त्रों का प्रयोग करते थे। इनके वस्त्र भड़कीले नहीं अपितु सादे होते थे। कमर से नीचे यह जांघिया/धोती सदृश अधो–वस्त्र धारण करते थे व कमर से ऊपर के भाग के लिए अंगवस्त्रम का प्रयोग करते थे। आभूषण स्त्री व पुरुष दोनों को ही अत्यनत प्रिय थे। सोने, चाँदी के साथ–साथ कौड़ी व मूँगे से भी आभूषण ईजियन सभ्यता से सम्बन्धित पुरास्थलों से प्राप्त होते हैं। प्रायः ईजियन महिलाएँ हैट/टोपी धारण करती थीं। महिलाएँ व पुरुष दोनों ही जूते पहनते थे।

ईजियन सभ्यता में महिलाओं की स्थिति के सनदर्भ में इनकी तुलना रोमन स्त्रियों से की जाती रही है। ईजियन महिलाएँ स्वतंत्र व स्वछन्द हुआ करती थीं। ईजियन समाज में उन्हें सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। वह उत्सवों व समारोहों में प्रतिभाग करती थीं। मुष्टिटयुद्ध, कुश्ती व मानव–पशु युद्धों में स्त्रियाँ पुरुषों के समान भाग लेती थीं। पर्दा प्रथा के साक्ष्य ईजियन समाज में नहीं पाप्त होते हैं। ईजियन धर्म व शासन व्यवस्था पर भी ईजियन महिलाओं का प्रभाव देखने को मिलता है। भित्ति चित्रों से ज्ञात होता है कि मिनोअन कालीन स्त्रियों के वस्त्र आधुनिक वस्त्रों के समान थे। ईजियन धर्म भी समाज में महिलाओं की उन्नत स्थिति को दर्शाता है।

8.4.आर्थिक स्थिति

विश्व की प्राचीन सभ्यताओं की भाँति ईजियन सम्यतावासियों की अर्थव्यवस्था का आधार कृषिकर्म था। ईजियन क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति ने वहाँ की अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया। यह क्षे़त्र समशीतोष्ण जलवायु से युक्त है।

अर्थात् न ही यह अधिक उष्ण व न ही अधिक शीत है, जिसके फलस्वरूप ईजियन क्षेत्र के लोग स्वभावतः कर्मठ हो गए।

ईजियन क्षेत्रवासी गेहूँ, जौ, ज्वार, पटसन, अंजीर, टिम्बर आदि की कृषि करते थे। कृषि से अधिक पशुपालन व मत्स्य पालन की भी ईजियन अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। ईजियनवासी उत्तर मिनोअन काल में घोड़े के सम्पर्क में आए।

ईजियन सभ्यतावासी अनेक उद्योग–धन्धों से परिचित थे। यहाँ काष्ठ उद्योग, धातु उद्योग विषेषतः कांसा व जहाजरानी व्यवसाय आदि प्रचलित थे। यहाँ की अर्थव्यवस्था पूर्णतः राजकीय संरक्षण में फूली–फली। ईजियन शासक को ही राज्य का सबसे बड़ा पूँजीपति माना जाता था क्योंकि सभी व्यवसाय व उद्योग–धन्धे उसके अधीन थे। ईजियन क्षेत्र उत्तम जलवायु व खनिज सम्पदा से सम्पन्न क्षेत्र थे। खनिजों की सहज उपलब्धता ने इस क्षेत्र में उद्योग–धन्धों के विकास में महत्त्वपर्ण योगदान दिया। ईजियन प्रदेश में गूर्नियां ताम्रोद्योग, फस्टस मृद्भाण्ड उद्योग व थेरेशिया तेलशोधन कार्यशालाओं के लिए विख्यात थे। ईजियन सभ्यता के मृद्भाण्डों का मिस्र से प्राप्त होना इसके मिस्र के साथ सम्बन्धों को दर्शाता है। ईजियन अर्थव्यवस्था सुव्यवस्थित व सुदृढ़ थी। राज्य कर के रूप में आय प्राप्त करता था। यहाँ वस्त्र उद्योग भी काफी आय प्राप्ति कि दृष्टिकोण से प्रचलित उद्योग था। वस्त्र उद्योग में प्रमुख भागीदारी स्त्रियों की मानी जाती थी। ट्रेवर कहता है कि मिनोअन स्वर्णकार धातुकर्म में पारंगत थे।

ईजियन सभ्यता में आन्तरिक व वैदेशिक दोनों व्यापारों के प्रचलन के प्रमाण प्राप्त होते हैं। व्यापार गधों, घोड़ों, रथों तथा नावों द्वारा किया जाता था। ऐसा माना जाता है कि क्रीट के व्यापारियों को सामुद्रिक व्यापार में महारत प्राप्त थी। ईजियन निवासी तेल, मदिरा, अस्त्र–शस्त्र, वस्त्र, कांस्य निर्मित वस्तुओं व कलात्मक वस्तुओं का निर्यात करते थे तथा घोडा, हाथी दाँत, संगमरमर, टिन, ताँबा, प्रस्तर के मृद्भाण्ड व औषधियों का आयात करते थे। मिस्र व क्रीट का घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध था। मिस्र के साथ–साथ इटली व सिसली से भी व्यापार के प्रमाण मिलते हैं। माइसीनिया के अनेक पात्र इटली से प्राप्त हुए है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ईजियन सभ्यता कालीन अर्थव्यवस्था उन्नत थी। यह राज्य के अधीन होकर भी भली–भाँति विकसित हुयी। ईजियन निवासियों ने समुद्री व्यापार का मार्ग प्रशस्त किया।

8.5.धर्म व विज्ञान

ईजियन सभ्यता के धर्म विषयक ज्ञान हेतु हमें भौतिक/पुरातात्विक

साक्ष्यों तक सीमित होना होता है। साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि ईजियन धर्म बहुदेववादी था। इसे एक प्रकार के मिश्रित धर्म की संज्ञा दी जा सकती है। माइसीनी काल में ईजियन यूनानी धर्म व देवी–देवताओं के प्रभाव में आए। अपने प्रारम्भिक स्वरूप में ईजियन धर्म प्रकृति के प्रभाव में आए। वह ईश्वर की उपासना विभिन्न प्रतीकों के माध्यम से करते थे। यह प्रस्तर, वृक्ष, पशु व अस्त्र–शस्त्रों को ईश्वरीय प्रतीक मानकर पूजते थे। यह वृषभ, साँप व सिंह आदि पशुओं को पूजते थे। प्रतीकों में सर्वप्रमुख स्थान परशु का था जिसे प्रायः सभी स्तम्भों पर अवष्य उत्कीर्ण किया जाता था। इनके अतिरिक्त सूर्य, चन्द्र, वृक्ष, पाषाण स्तम्भ, पर्वत, गुफाओं आदि प्रतीकों की उपासना भी ईजियन सभ्यतावासियों द्वारा की जाती थी। ईजियन सभ्यतावासी भिन्न–भिन्न पाषाण प्रकारों से देवताओं को समेकित करते थे। वृक्ष पूजा व वनस्पति शक्ति के प्रतीक माने जाते थे। वृक्ष पूजा के उदाहरण अनेक भित्ति चित्रों व रिलीफ स्थापत्य के रूप में से प्राप्त होते हैं। एक दृश्य में वृक्ष के नीचे एक हाथ में पुष्प को लिए हुए, देवी को आसीन मुद्रा में दिखाया गया है। एक अन्य दृश्य में एक स्त्री को नौका में लता की छाया में आसीन दर्शाया गया है। यहाँ नौका पर आसीन देवी को सागर देवी माना जाता था। पशु व वनस्पति उपासना के साथ–साथ ईजियन सभ्यतावासी पक्षियों की भी पूजा–अर्चना करते थे। पक्षियों में सर्वाधिक महत्व कबूतर को प्राप्त था। कबूतर को पवित्रता का प्रतीक माना जाता था, इसलिए उत्खनन में प्राप्त भौतिक अवषेषों पर अनेक स्थानों पर कबूतर का अंकन मिलता है। ईजियन सभ्यता के भौतिक विकास ने वहाँ के धर्म को भी प्रभावित किया। कालान्तर में वहाँ पूजा गृहों की स्थापना की जाने लगी।

ईजियन धर्म में मातृदेवी उपासना को सर्वाधिक महत्व प्राप्त था। ईजियन समाज को विद्वान् मातृप्रधान समाज मानते हैं। जिसका प्रभाव उनके धर्म पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। इनके धर्म में देवताओं से अधिक महत्व देवियों को प्राप्त था। यूनानी ईजियन मातृदेवी को र्हि–सिविल कहते थे। ईजियन मातृदेवी को समस्त लोक की जननी मानते थे। ईजियन धर्म में मातृदेवी की विभिन्न रूपों में पूजा होती थी। ईजियन कला में मातृदेवी की मूर्तियों में बालक को लिए हुए, सिंह के साथ, नाग के साथ दिखाया गया है। ईजियन वासियों का मत था कि नागदेवी के रूप में देवी पाताल पर शासन करती थी। यहाँ तक की सूर्य व चन्द्र को भी मातृदेवी के अधीन माना गया है।

ईजियन सभ्यतावासी मातृदेवी के साथ देवताओं की भी कल्पना करते थे। प्रायः एक युवक रूपी देवता का अंकन प्रत्येक मातृदेवी के साथ मिलता है। कुछ विज्ञान इसे पुत्र की तो कुछ प्रेमी की संज्ञा देते हैं। इस देवता का प्रतीक

वृषभ था। यूनानी इस युवक देवता को 'वेल्केनोस व क्रीट वासी' जियस की संज्ञा देते थे। दोहरा परशु मातृदेवी व वेल्केनोस का संयुक्त प्रतीक माना जाता है।

ईजियन वासियों की प्रारम्भिक उपासना विधि प्रकृति पूजा थी। कालान्तर में इन्होंने उपासना के उद्देश्य से देवी–देवताओं के निमित्त लघु कक्षों का निर्माण प्रारम्भ किया। इन्हीं लघु कक्षों ने बाद में मन्दिरों का स्वरूप ले लिया। प्रायः इनका प्रयोग सामुहिक उपासना के लिए ही किया जाता था। यहाँ मातृदेवी उपासना के वर्चस्व के फलस्वरूप मन्दिरों में भी पुजारियों के स्थान पर पुजारिणें अधिक होती थीं। इनकी एक निश्चित वेशभूषा होती थी। देवी–देवता मूर्तियों को नवेद्यु फ1अर्पित किया जाता था। यदा–कदा पशु बलि के भी प्रकरण प्राप्त होते हैं।

8.6.कला एवं स्थापत्य

ईजियन कला अपनी विशिष्टता के लिए प्रसिद्ध है। ईजियन कलाकृतियाँ पूर्ण नैसर्गिक हैं। इनमें गतिभाव एवं चेतना का अभूतपूर्व समन्वय है, नौसास माइसीनी के ध्वंसावषेष आज भी ईजियन कला के जीते–जागते प्रमाण हैं। यहाँ राजप्रासादों में श्वेत प्रस्तर खण्डों का प्रयोग, अनेक कक्ष तथा स्नानागारों की सुन्दर व्यवस्था ईजियन लोगों के बौद्धिक कल्पना का परिचय देती है।

नगर व्यवस्था की दृष्टि से क्रीट की नगर निर्माण कला ही कालान्तर में यनानी तथा यूरोपीय नगरों की पृष्ठभूमि बनी। साहित्यिक विवरणों के अनुसार क्रीट में लगभग नब्बे नगर विद्यमान थे यहाँ की नगर व्यवस्था सिन्धु सभ्यता के समान थी। किन्तु वास्तुकला की दृष्टि से इनकी तुलना नहीं कर सकते। ईजियन राजप्रासाद अलंकरण के लिए नहीं अपितु उपयोगिता के लिए बनाए गए थे। ईजियन वास्तुकला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण के रूप में नोसाँस के राजप्रासाद को प्रस्तुत किया जा सकता है। इसमें बने एक विशाल कक्ष में द्विपरशु का चित्र बना था। इसलिए इसे 'हाल ऑव डबल ऐक्स' नाम दिया गया था। इसके पश्चात् क्रीट का सबसे बड़ा भवन फेस्टस में बना था इनकी किलेबन्दी नहीं की गयी थी कमरों को गर्म रखने के लिए चलती–फिरती भट्टियाँ थीं।

मूर्तिकला के सन्दर्भ में ईजियन देश में प्रचलित यह कला दो भागों में विभाजित की जा सकती है धार्मिक और लौकिक। उन्होंने मूर्तियों को जितना हो सके छोटा बनाया। मूर्तियाँ मिट्टी, हाथी दाँत तथा धातु की सहायता से बनायी जाती थीं। प्रमुख मूर्तियों में सर्वोत्कृष्ट परवर्ती माइनोअन युग की एक नागदेवी

अथवा उसकी पुजारिन की मूर्ति अर्द्धनाग व अर्धनारी के रूप में हाथी दाँत की बनी है। इसके हाथ में नाग है तथा इसने स्वर्ण पत्र निर्मित वस्त्र धारण किया है। माइसिनियन काल के स्वर्ण निर्मित प्याले पर जंगली बैलों की मूर्तियाँ भी सराहनीय है। ब्रेस्टेड के अनुसार– इसके माध्यम से कलाकारों ने अपने समय की एक आदर्श महिला का चित्रण प्रस्तुत किया है।

चित्रकला की दृष्टि से ये ईजियन लोग सर्वोत्कृष्ट माने जाते हैं। इनकी चित्रकला में भित्ति चित्रों की अधिकता है। ये चित्र लेपचित्र शैली में बने हैं, जो राजप्रासादों, प्रसादों और व्यक्तिगत भवनों पर मिलते हैं। ईजियन चित्रकला में हेराक्लियस संग्रहालय में 'सुरक्षित साकी' के नाम से प्रसिद्ध चित्र में युवक को चशक धारण किए मणिबंध बाहु, कण्ठ तथा कर्ण आभूषण से सुशोभित दिखायाा गया है। क्नोसास राजप्रासाद की भित्ति पर स्त्रियों का समूह नृत्य उल्लिखित है, जिसमें दर्शक भी स्त्रियाँ ही हैं।

ईजियन संस्कृति के प्रमुख केन्द्र क्नोसॉस, ट्रॉय एवं माइसीनी के विनष्ट हो जाने पर भी यहाँ की सांस्कृतिक परम्पराएँ जीवित रहीं तथा यूनानी सभ्यता के विकास में योगदान किया। यह सभ्यता नष्ट होकर भी नष्ट नही हुयी। डेनियर तथा फोनेशियन लोगों ने ईजिमा की कला वर्णमाला तथा जहाज निर्माण भी पद्धति पूर्णरूपेण आत्मसात कर लिया था। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि रोम और पश्चिमी जगत की सभ्यताओं की जननी यूनानी सभ्यता को ईजियन सभ्यता की पुत्री कहा जा सकता है।

8.7. बोध प्रश्न

1. ईजियन सभ्यता का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
2. ईजियन सभ्यताकालीन धर्म पर प्रकाश डालिए।

8.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. श्री रामगोयल, विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ, वाराणसी, 2011.
2. राजछत्र मिश्र, प्राचीन सभ्यताएँ, इलाहाबाद, 2008.
3. डॉ0 आर0एन पाण्डेय, प्राचीन विश्व की सभ्यताएँ, इलाहाबाद, 2013.
4. बर्न्स, वेस्टर्न सिविलाइजेशन्स,लन्दन,1980

इकाई–9 होमर काल

इकाई की रूपरेखा

9.0. प्रस्तावना

9.1. उद्देश्य

9.2 राजनीतिक स्थिति

9.3 सामाजिक स्थिति

9.4 आर्थिक स्थिति

9.5 धर्म व कला

9.7 बोध प्रश्न

9.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

9.0.प्रस्तावना

यूरोप के दक्षिण–पूर्वी कोने का कटा–छंटा और छोटे–छोटे द्वीपों से जुड़ा भू–भाग यूनान कहलाता है। यह एशिया माइनर के ठीक सामने पश्चिम की ओर स्थित है। यूनान पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण में समुद्र से घिरा है। इसके उत्तर में विस्तृत पर्वत मालाएँ अवस्थित हैं। कटे–छंटे तटीय भाग के फलस्वरूप यूनान को उत्तरी, मध्यवर्ती व दक्षिणी तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। उत्तरी भाग में थेसली, मेसीडोन व एपिरस स्थित है। मध्य यूनान के पूर्व में यूबिया के द्वीप (कैल्किस नगर) है। यूबिया के दक्षिण–पश्चिम में एट्टिका प्रदेश है, एथेंस इसी प्रदेश में स्थित है। दक्षिणी यूनान में कोरिंथ, इसके पूर्व में अर्केडिया तथा दक्षिण में लकोनिया प्रदेश है।

यूनान की भौगोलिक स्थिति का उस पर व्यापक प्रभाव पड़ा। तटीय भाग के कटे–छंटे होने के कारण यहाँ समुद्री व्यापार विकसित हुआ। जल–मार्गों के माध्यम से यूनानियों का दूर देशों से सम्बन्ध स्थापित हुआ। यूनानी जल क्षेत्रों से जुड़े होने के कारण नाविक बने तो उत्तर की ओर विभिन्न पर्वतीय प्रदेशों पर छोटे–छोटे राज्य (पोलिस) स्थापित हो गए। भौगोलिक विभिन्नता एवं अलगाव के कारण यूनानी नगर राज्यों में कभी भी एकता नहीं स्थापित हो पायी।

यूनानी, मुख्य रूप से बाल्कन प्रायद्वीप के उत्तर–पश्चिमी भाग में निवास करते थे। 2000 ई0पू0 के आस–पास ईजियन संसार पर छा गए। ईजियन

भारोपीय समुदाय से सम्बन्धित था। इनकी एकियन, डोरियन, आयोनियन व एथोलियन आदि कई शाखाएँ थीं। यूनान में सर्वप्रथम एथियन (2000 ई0पू0), फिर आयोनियन (पूर्वी–मध्य यूनान), तत्पश्चात् डोरियन (1100 ई0पू0) ने एशिया माइनर के दक्षिण–पश्चिम भाग पर अधिकार कर एथियन व आयोनियन को खदेड़ दिया। इसी प्रव्रजन के कारण पश्चिम यूनान (स्पार्टा) व पूर्वी यूनान (एथेंस) का उदय हुआ।

यूनान के इतिहास में 1200 ई0पू0 से प्रारम्भ कर 750 ई0पू0 तक का युग 'मध्यकाल' कहलाता है। 1100 ई0पू0 के आस–पास डोरियन शाखा का यूनान आगमन अप्रत्याशित एवं बर्बरतापूर्ण था। एट्टिका और अर्केडिया को छोड़कर वह समस्त यूनान में फैल गए। यह सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़े हुए थे। डोरियनों के नेतृत्व में विकसित यूनानी इतिहास एवं सभ्यता के युग को मध्यकाल की संज्ञा दी गयी है। इसे ही 'अन्धकार युग' भी कहा जाता है। मध्यकाल की प्रथम दो शतियों को 'वीरगाथाकाल' भी कहा गया है। वीरगाथाकाल की अन्तिम शती (850–750 ई0पू0) के होमर तथा हेसियड नामक कवियों की रचना से भी मध्यकाल के विषय में सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। इसीलिए मध्यकाल को 'होमरकाल' भी कहते हैं।

इस काल में यूनान में राजनीतिक अव्यवस्था तथा आर्थिक विपन्नता विद्यमान थी। शक्ति एवं सम्पत्ति पर सशक्त व युद्धशील व्यक्तियों का अधिकार हो गया था। इन्हीं शक्तिशाली लोगों के लिए भाट व चारण गीतों की रचना की गयी। यह गीत यूनान के ही नहीं यूरोप के भी प्राचीनतम साहित्य माने जाते हैं। आठवीं शताब्दी ई0पू0 में सम्भवतः होमर नामक कवि ने इन भाट व चारण गीतों को सूत्रबद्ध किया।

होमर को यूनान का गुरु माना जाता है। होमर के विषय में बहुत अधिक ज्ञान प्राप्त नहीं होता है। होमर द्वारा प्रणीत इलियड और ओडाइसी महाकाव्यों को यूनानी इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इलियड व ओडाइसी के विषय में विद्वानों में मतभेद है कि इनकी रचना एक ही लेखक ने की है या दो ने। परन्तु प्राचीन यूनानी इन्हें एक ही व्यक्ति की कृति मानते थे। जब यूनानीयों के समक्ष कोई नैतिक समस्या आती थी तो होमर का वचन निर्णायक माना जाता था राजनय सम्बन्धी विवादों में भी होमर को उद्धृत किया जाता था, इसीलिए होमर की कृतियों को यूनानी बाइबिल कहा गया है

हेरोडोटस ने होमर को नवीं शताब्दी ई0पू0 में रखा है परन्तु आधुनिक विद्वान् उसे आठवीं शताब्दी ई0पू0 में आविर्भूत हुआ मानते हैं। अनुश्रुतियों से

प्रतीत होता है कि होमर अन्धा था। वह इलियड में एकियन राजाओं के शासनकाल में हुई घटनाओं का वर्णन करता है। विद्वानों का मत है कि होमर माइसीनी सभ्यता से परिचित नहीं था क्योंकि होमर का सम्बन्ध लौहकाल से था, परन्तु उसके पात्र ताँबे की तलवार का प्रयोग करते थे। इसीलिए होमर को आठवीं शताब्दी ई0पू0 का मानने में कोई त्रुटि नहीं है।

9.1.उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के परिणामस्वरूप निम्नलिखित जानकारी प्राप्त होंगी–

1. होमर कालीन यूनान पर प्रकाश डाला जाएगा।

2. होमर कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त होगा।

9.2. राजनीतिक स्थिति

होमर कालीन राज–व्यवस्था अत्यन्त आदिम रूप में थी। इस काल में प्रत्येक राज्य कुछ ग्राम–समूहों का एक शिथिल संगठन मात्र प्रतीत होते हैं। ग्राम समूहो के निवासी अपने को किसी एक पूर्वज की सन्तान मानते थे और प्रायः एक सामन्त के अधीन रहते थे। जो सामन्त सर्वाधिक शक्तिशाली होता था, उसे राजा मान लिया जाता था। सिद्धान्ततः वह राज्य का सर्वोच्च सेनापति, न्यायाधीश और धर्माधीश माना जाता था। होमरकालीन यूनानियों का सैनिक संगठन सरल था। शासक अधिकांशतः सामन्तों की सेना पर आश्रित थे। प्रायः सैनिक–शक्ति को देखने के लिए दोनों पक्षों के नायक आपस में द्वन्द्व–युद्ध करके झगड़ों का फैसला करते थे।

होमरकाल में सिद्धान्ततः राजा की सहायता के लिए दो सभाएँ रहती थीं– ब्यूल और एगोरा। ब्यूल सामन्तों की सभा थी और एगोरा स्वतन्त्र नागरिकों की। इन्हीं से क्लासिकल युग में कलीनतन्त्र और जनतन्त्र का विकास हुआ, परन्तु होमरकाल में इन संस्थाओं का संगठन अत्यन्त शिथिल था। इस युग में निश्चित कर–व्यवस्था का भी अभाव था और राज्य की आय अधिकांशतः लूट–पाट पर निर्भर थी। वस्तुतः इस युग में यूनानियों की राजनीतिक चेतना इतनी विकसित नहीं थी कि वे सामाजिक व्यवस्था के लिए सरकार को अपरिहार्य मानते।

9.3. सामाजिक स्थिति

राजनीतिक संगठन की भाँति होमरकालीन यूनानियों का सामाजिक

संगठन भी सरल था। इस युग के समाज की इकाई परिवार था, जिसका नियन्त्रण पिता के हाथ में रहता था। पिता परिवार के सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वाधिकार सम्पन्न सदस्य के रूप में प्रतिष्ठित था। सिद्धान्ततः वह परिवार का निरंकुश शासक होता था।

होमरकालीन यूनानी समाज में स्त्रियों की स्थिति समुन्नत थी। विल डयुरैण्ट के अनुसार होमरकालीन स्त्रियाँ पेरिक्लीज कालीन यूनानी स्त्रियों से भी अधिक सम्मानित थीं। वह सार्वजनिक कार्यों में पुरुषों के समान भाग लेती थीं और पर्दे से अपरिचित थीं। होमरकालीन समाज में विवाह संस्कार को विषेष महत्व प्रदान किया गया है। सुन्दर स्त्रियों के लिए संघर्ष सामान्य घटना थी।

होमरकालीन यूनानी बहुत सादा जीवन व्यतीत करते थे। वे प्रायः लंगोट के ऊपर एक वस्त्र ओढ़ लेते थे। पुरुषों में लम्बे केश और दाढ़ी–मूँछ रखने की प्रथा थी। स्त्री–पुरुष दोनों आभूषण पहनते थे।

इलियड और ओडाइसियस में मुख्यतः सामन्तों के जीवन का वर्णन है, परन्तु समाज में वर्गभेद दृढ़ नहीं हो पाया। सभी वर्ग आपस में मिलजुल कर प्रेमभाव से रहते थे।

9.4. आर्थिक संगठन

होमरकालीन यूनानियों का आर्थिक गठन मुख्यतः कृषि, पशुपालन एव उद्योग धन्धों पर आधारित था। यहाँ कृषिकर्म का प्रचलन था, परन्तु कृषकों को कठिनाई का सामना करना पड़ता था क्योंकि यहाँ भूमि पहाड़ी व ऊबड़–खाबड़ थी। भूमि पर परिवार अथवा कुल का अधिकार था। गाँवों में जंगली पशुओं का भय बना रहता था, इसलिए शिकार करना भी आवष्यक था। पशुपालन कार्य भी किया जाता था। विषेष रूप से बकरी, भेड़, सूअर तथा अश्व पाले जाते थे। टिन, ताँबा, चाँदी तथा सोने का बाहर से आयात किया जाता था। इस काल में रथकार, कुंभकार तथा स्वर्णकार को छोड़कर अन्य उद्योगों में कुशल शिल्पी नहीं थे। यह सभी शिल्पी यहाँ स्वतन्त्र वर्ग के अन्तर्गत थे। होमरकालीन यूनानी अच्छे व्यापारी न बन सके। लोहे, ताँबे अथवा सोने के टुकड़े विनिमय के लिए प्रयुक्त किए जाते थे। बैल या गाय को मूल्य का मानदण्ड माना जाता था।

9.5. धार्मिक स्थिति

होमरकालीन यूनानी धर्म लौकिक धर्म था। भारोपिय जातियों के समान यूनानियों के देवता भी प्राकृतिक शक्तियों का दैवीकरण थे। यूनानियों के धर्म का मुख्य उद्देश्य था मनुष्य का प्राकृतिक शक्तियों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध

स्थापित करना, जिससे उनमें आत्मविश्वास और सुरक्षा की भावना जागृत हो। इनके देवताओं में मनुष्यों के समान गुण–दोष थे, वे उन्हीं के समान आहार–विहार करते तथा प्रसन्न–अप्रसन्न होते थे। देवताओं का जीवन भी मनुष्यों के समान संघर्षमय था। होमरकालीन व्यक्ति देवताओं को अमृतपान के कारण अमर मानते थे। देवताओं का आवास आकाश या नक्षत्र नहीं, अपितु ओलम्पस पर्वत था, जो उत्तरी यूनान में अवस्थित है।

होमरकालीन यूनानी धर्म भी बहुदेववादी था, किन्तु किसी एक देवता को दूसरे की अपेक्षा अत्यधिक श्रेष्ठ नहीं मानते थे। यहाँ सभी देवता लगभग समान थे। प्रमुख देवी–देवताओं में आकाश देव 'जियस', समुद्र देव 'पॉसीडन', सूर्यदेव 'अपोलो', युद्धदेव 'एरीज', 'क्रोनोस', 'डिओनिसस', मृतकों के देवता हेडीज, वास्तुविद् तथा शिल्प विषेषज्ञ 'हेफीस्टस', देवताओं के दूत 'हर्मीज', 'इरिस', 'जैनथस' तथा देवियों में प्रेमदेवी 'एफ्रोडाइट', 'अर्तेमिस', 'एथेना', 'दिमीतर', 'इलिथिया', 'पर्सीफोनी', 'हियर' इत्यादि का उल्लेख किया जा सकता है।

होमरकालीन धर्म में दैत्यों व अशुभकारी तत्वों की कल्पना स्वतन्त्र रूप से नहीं मिलती। यहाँ देवताओं में शुभ–अशुभ दोनों प्रवृत्तियाँ विद्यमान थीं। होमरकालीन यूनानी देवताओं के लिए मन्दिर अवष्य बनाते थे, परन्तु उनका उपयोग मिस्री देवगृहों की भाँति नहीं किया गया। यहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपने व राजा सामूहिक रूप से समस्त राज्य के लिए देवोपासना करता था, इसलिए यूनान में पुजारी वर्ग कभी उत्पन्न नहीं हो पाया। होमरकालीन धर्म का नैतिकता से कोई सम्बन्ध नहीं था। यह केवल मिथ्या शपथ को अपराध मानते थे।

होमरकालीन यूनानी धर्म में परलोकवाद की कल्पना नहीं थी। इनका धर्म प्रवृत्तिमार्गी और सुखार्थी होने के साथ ऐहिक भी था। पारलौकिक उदासीनता का प्रभाव इनके मृतक संस्कार पर पड़ा। यहाँ मृतक संस्कार सरल, दाह क्रिया द्वारा सम्पन्न किया जाता था। न होमरकालीन लोगों ने मृतक समाधियों का निर्माण किया और न ही मृतकों की सुख–सुविधा हेतु कोई व्यवस्था की। उनका धर्म इन सभी आडम्बरों से परे था।

परलोक के समाज में इनकी मान्यता यह थी कि आत्मा थोड़े समय के लिए यहाँ रहती थी। 'हेडीज' जो परलोक का देवता था नगण्य ही था तथा 'हेडीज लोक' के अतिरिक्त 'इलिसयन प्लेन' व 'तर्तरूस' नाम दो अन्य लोक भी थे, जिनमें 'इलिसिवन प्लेन' में ईश्वर के प्रिय विशिष्ट लोग आनन्द प्राप्त करते थे जबकि 'वर्तरूस' में विद्रोही देवता बन्दी बनाए गए थे।

9.6. कला

यूनानी कला में राष्ट्रीय तत्वों की प्रधानता दिखाई पड़ती है। यूनानी कलाकारों का प्रमुख उद्देश्य सौन्दर्य के प्रकटन के साथ–साथ आदर्श की स्थापना करना भी था। थ्यूसीडाइडीज के अनुसार यूनानीयों का सौन्दर्य प्रेम संयमित था। यूनानी चित्रों का निर्माण आदर्श व उपयोगिता को ध्यान में रखकर किया गया था। यूनानी कलाकार कला का आदर्श मनुष्य, देव, इतिहास तथा धर्म को मानते हैं।

यूनानी कला का प्रारम्भ होमर काल से माना जाता है। होमर काल को यूनानी कला के दृष्टिकोण से शेषव काल कहा जा सकता है। इस काल में यूनानी धूप में सुखायी ईंटों से मकान की दीवार, मिट्टी को कूटकर फर्श तथा बाँस व घास–फूस से छत बनाते थे। होमरकालीन कलाकारों ने यूनानी राजप्रासादों को भव्य व व्यवस्थित बनाया, परन्तु यह राजप्राासाद अलंकरणविहीन हैं। इस काल में मूर्तिकला व चित्रकला का भी प्रारम्भ देखने को मिलता है, परन्तु उसका स्वरूप अल्प विकसित है। यूनानी कला की चरम परिणति पेरिक्लीज काल में देखने को मिलती है।

9.7. बोध प्रश्न

1. होमरकालीन यूनानी सभ्यता का वर्णन कीजिए।

9.8. सन्दर्भ ग्रन्थ

1. श्री राम गोयल, विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ, वाराणसी, 2011.
2. राजछत्र मिश्र, प्राचीन सभ्यताएँ, इलाहाबाद, 2008.
3. डॉ0 आर0एन पाण्डेय, प्राचीन विश्व की सभ्यताएँ, इलाहाबाद, 2013.

इकाई–10 परिक्लीज काल

इकाई की रूपरेखा

10.0. प्रस्तावना

10.1. उद्देश्य

10.2. राजनीतिक स्थिति

10.2.1. स्पार्टा से तीस वर्षीय सन्धि

10.2.2. पेलोपोनेसियन युद्ध

10.2.3. संवैधानिक सुधार

10.3. पेरिक्लीज कालीन दर्शन व विज्ञान–

10.4. पेरिक्लीज कालीन कला व स्थापत्य

10.5. पेरिक्लीज कालीन बौद्धिक उपलब्धियाँ

10.6. बोध प्रश्न

10.7. सन्दर्भ ग्रन्थ

10.0. प्रस्तावना

पेरिक्लीज काल को एथेंस के उत्थान का काल भी कहा जा सकता है। यूनान के उत्थानकाल में विकसित दो विभिन्न शासन प्रणालियों में 'एथेंस' जनतान्त्रिक प्रणाली का प्रतिनिधित्व करता था। पाँचवीं शती ई0पू0 में जनतान्त्रिक प्रणाली का महानतम राजनीतिज्ञ व नेता 'पेरिक्लिज' हुआ। यह इस समय का सर्वाधिक प्रभावषाली व्यक्ति था। ''पेरिक्लीज' ' के समय 'एथेंस' यूनान का सिरमौर बन गया। उसकी माता सुप्रसिद्ध सुधारक 'क्लीस्थेनिज' की पौत्री 'अगरिस्ट' थी और पिता 'एथेंस' का भूतपूर्व जल सेनापति 'कज़ेन्थियस' था। 'पेरिक्लीज' ने अपने समय के सर्वोत्तम संगीतज्ञ 'डेमोनिडिज' और साहित्याचार्य 'पाइथोक्लीडिज़' से शिक्षा पायी थी। इसके वैज्ञानिक चिन्तन पर दार्शनिक मित्र 'एनेक्ज़ेगोरास' का व्यापक प्रभाव था।

10.1. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य पेरिक्लीज कालीन यूनान के इतिहास के विषय में ज्ञान प्रदान करना है। इस इकाई में पेरिक्लीज कालीन यूनान के

राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व अन्य अनेक पहलुओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

10.2. राजनीतिक स्थिति

''पेरिक्लीज' एथेंस के साम्राज्य और प्रभाव का विस्तार करके उसे 'यूनान की रानी' बनाना चाहता था, इसीलिए 'पेरिक्लिज़' ने यूनान के सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य 'स्पार्टा' के साथ मैत्रीपूर्ण नीति का विरोध किया व 'स्पार्टा' के शत्रु 'थेसली' व 'अर्गोस' से मित्रता की। 460 ई0पू0 में कोरिंथ की खाड़ी में एथेंस का प्रभाव दृढ़ किया। पेरिक्लिज़ ने ईजिना, ट्रायजेन तथा एकिया को भी मित्र बनने के लिए मज़बूर कर दिया। 449 ई0पू0 में पेरिक्लिज़ ने ईरान से 'केलियस की सन्धि' कर ली, जिससे हरवामशी सम्राट ने एथेंस पर आक्रमण न करने का वचन दिया।

केलियस की सन्धि के साथ ही डेलोस संघ की उपयोगिता का अन्त हो गया। अब डेलोस एथेंस का सहयोगी हो गया। अब कोई राज्य एथेंस की सदस्यता से अलग नहीं हो सकता था। अब कोल को डेलोस से हटाकर एथेंस में एथेना देवी के मन्दिर में रखवा दिया व इनका उपयोग निर्माण कार्यों में किया जाने लगा।

10.2.1. स्पार्टा से तीस वर्षीय सन्धि

449 ई0पू0 में एथेंस अपने चरमोत्कर्श पर था, परन्तु एथेंस के बढ़ते हुए वर्चस्व ने अधीन राज्यों में विद्रोह की भावना को प्रबल किया व उन राज्यों नें विद्रोह करना प्रारम्भ कर दिया। 447 ई0पू0 में पेरिक्लिज़ को पराजय का मुख देखना पड़ा व 445 ई0पू0 में एथेंस को स्पार्टा से तीस वर्षीय सन्धि करनी पड़ी। इस सन्धि के परिणामस्वरूप एथेंस तथा स्पार्टा एक दूसरे पर आक्रमण नहीं कर सकते थे।

10.2.1. पेलोपोनेसियन य़ुद्ध

431 ई0पू0 से 404 ई0पू0 तक एथेंस एवं स्पार्टा के मध्य जो इतिहास प्रसिद्ध युद्ध हुआ, उसे पेलोपोनेसियन युद्ध के नाम से जाना जाता है। इस युद्ध का विषद् वर्णन प्रसिद्ध यूनानी इहिासकार 'थ्युसिडाइडीज' के 'द पेलोपोनेसियन वार' नामक ग्रन्थ में मिलता है। युद्ध का मुख्य कारण था एथेंस की साम्राज्यवादी नीति के प्रति अधीन राज्यों का असंतोश व मेगारा, कोरिंथ और स्पार्टा आदि की एथेंस के उत्कर्ष से ईर्श्या। 435 ई0पू0 में एथेंस ने कोरिंथ के उपनिवेश कोरानियारा को संघ का सदस्य बना लिया। स्पार्टा ने पेलोपोनेसियन

संघ की सभा बुलायी व यूनानी राज्यों को स्वतन्त्र करने की माँग की और एथेंस ने माँग को ठुकरा दिया। इस पर 431 ई0पू0 में युद्ध छिड़ गया।

एथेंस और स्पार्टा का युद्ध परस्पर भिन्न शक्तियों का युद्ध था। एथेंस निवासी आयोनियन थे व जनतान्त्रिक शासन पद्धति पर विश्वास करते थे, वहीं स्पार्टा वाले डोरियन जाति के थे, जिनकी शासन व्यवस्था निरंकुश सैनिकवाद पर आधारित थी। दोनों पक्षों में तुलनात्मक रूप से एथेंस अधिक धनी व समुद्रों का स्वामी था, परन्तु स्पार्टा निर्धन होते हुए भी सैनिक दृष्टि से सबल था। इस युद्ध में ईजियन द्वीपों, थ्रेस, थेसली, कोरसियारा तथा एशिया माइनर ने एथेंस का तथा सेगारा, कोरिंथ, वोयोतियन व कुछ राज्यों को छोड़कर सम्पूर्ण पेलोपोनेसस ने स्पार्टा का साथ दिया परन्तु स्पार्टा में एकता की भावना प्रबल थी। यह युद्ध एथेंस के लिए बहुत घातक सिद्ध हुआ। 429 ई0पू0 में पेरिक्लीज की मृत्यु हो गयी। एथेंस का जलबेड़ा पकड़ लिया गया व 404 ई0पू0 में एथेंस ने आत्मसमर्पण कर दिया।

पोलोपेनेसियन युद्ध का यूनानी इतिहास में ही नहीं, अपितु विश्व इतिहास में भी महत्त्वपूर्ण है। इस युद्ध के फलस्वरूप न केवल एथेंस की सम्प्रभुता का अन्त हुआ, शनैः शनैः सम्पूर्ण यूनान दुर्बल हो गया व सभी राज्य स्वतन्त्रता खोने लगे। यदि इस युद्ध में एथेंस सफल हो गया होता तो यूनान की सभ्यता व संस्कृति का रंग कुछ और ही होता व यूरोपवासियों को सभ्य बनाने का श्रेय रोमनों को नहीं यूनानियों को मिलता।

10.2.3. संवधानिक सुधार–

पेरिक्लीज ने जिस समय शासन सूत्र संभाला उस समय एथेंस दो परस्पर विरोधी समूहों में विभक्त था। एक वर्ग कुलीन तथा दूसरा निर्धन वर्ग से सम्बन्धित था। पेरिक्लिज़ स्वयं भी उच्च वर्ग से सम्बन्ध रखता था, परन्तु शोषित वर्ग से सहानुभूति रखता था। पेरिक्लिज़ ने ऐसे प्रस्ताव पारित करवाए जिससे एथेंस का प्रशासन पूर्णतः जनतान्त्रिक हो गया।

पेरिक्लीज ने असेम्बली की सदस्यता प्रत्येक वर्ग के लोगों के लिए खुलवा दी। असेम्बली को कौंसिल द्वारा रखे गए प्रस्तावों को स्वीकृत या अस्वीकृत करने, युद्ध, सन्धि व उच्चाधिकारियों की नियुक्ति सम्बन्धी अधिकार प्राप्त हो गए। अधिनियम बनाने के पूर्व वह बिल ब्यूल के पास विचारार्थ जाता था। 457 ई0पू0 में पेरिक्लिज़ ने आर्कन पद पर किसी भी वर्ग की नियुक्ति का नियम बनाया। पेरिक्लिज़ ने दस सेनापतियों 'स्ट्रेटेगोई' की सभा को देश की सर्वाधिक शक्तिशाली सभा और प्रधान सेनापति 'स्ट्रेटेगोस ओटोक्रेटर' को एथेंस

का सर्वाधिक शक्तिशाली अधिकारी बना दिया।

पेरिक्लीज ने न्यायपालिका में भी व्यापक सुधार किए। अभी तक सर्वोच्च न्यायालय के रूप में 'एरियोपेगस' कार्यरत थी, किन्तु पेरिक्लिज़ ने यह अधिकार जन–न्यायालयों को दे दिया, जिन्हें 'हेलियास' कहा जाता था। एथेंस में प्रतिवर्ष जनता के प्रत्येक वर्ग द्वारा 6000 'ज्यूरर' का चुनाव होता था, इनका अध्यक्ष एक मजिस्ट्रेट होता था, परन्तु फैसले का अधिकार 'ज्यूरर' के पास सुरक्षित था। एथेंसवासियों में रष्ट्रीयता पैदा करने हेतु पेरिक्लिज़ ने नागरिकता से सम्बन्धित कुछ नियमों का निर्माण किया। इसने एथेंसवासियों तथा विदेशियों के पारस्परिक विवाह पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

पेरिक्लीज के संरक्षण में एथेंस के जनतन्त्र ने पूर्णता प्राप्त थी, परन्तु इसमें कुछ त्रुटियाँ रह गयी थीं। यद्यपि सिद्धान्ततः यह व्यवस्था जनतन्त्रवादी थी, परन्तु व्यवहारतः इसमें एथेंसवासियों के केवल 1/7 भाग को ही नागरिकता के अधिकार प्राप्त थे। दासों, महिलाओं व विदेशियों को इसमें पृथक् रखा गया पेरिक्लिज़ का जनतन्त्र समनता के सिद्धान्त पर आधारित था, जिससे प्रशासन में अल्प दक्ष व्यक्ति भी स्थान पा जाता था। पेरिक्लिज़ के पश्चात् इस व्यवस्था में गिरावट आयी व संवैधानिक सुधार धाराशायी हो गए।

10.3. परिक्लीज कालीन दर्शन व विज्ञान

पेरिक्लीज काल में यूनान में दर्शन के विकास को अनुकूल अवसर प्राप्त हुआ। छठी शती ई0पू0 में यूनान में परिवर्तनशील जगत की व्याख्या करने वाले नित्यवादी व अनित्यवादी सम्प्रदायों की उत्पत्ति हुयी। इस काल में हम 'अणुवाद' का उल्लेख पाते हैं। अरस्तु इस मत का संस्थापक 'ल्युसिप्पस' को बताता है, परन्तु इसे व्यवस्थित करेन का श्रेय थ्रेसवासी 'डेमोक्रिटस' (460–370 ई0पू0) को देता है। अणुवाद का मत था कि विश्व का निर्माण अणुओं से हुआ है, जो असंख्य, अनश्वर और अविभाज्य है। यह आकार में भिन्न होते हुए भी प्रकृति में समानता लिए हुए है। इस विचारधारा में आत्मा का अस्तित्व ही नहीं था। पेरिक्लीज का मित्र (एनक्जेगोरास) अणुवाद का समर्थन नहीं करता था। 'एनेक्जेगोरास' का मत था कि अणु एक नहीं अनेक प्रकार के हैं।

इस काल की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि 'सोफिस्टों' का उदय मानी जाती है। सोफिस्ट ऐसे विदेशी विचारकों को कहा जाता था, जो नवीन सिद्धान्तों का प्रतिपादन करें। सोफिस्ट का मूल अर्थ 'मेधावी' था। तर्कशक्ति सोफिस्टो की मुख्य योग्यता थी, जिसका प्रयोग कालान्तर में यूनानी संस्कृति के मूलभूत आदर्शों पर कुठाराघात करने हेतु करने लगे। प्रथम सोफिस्ट विचारक

'प्रोटेगोरास' था। इसने प्रतिपादित किया कि सभी वस्तुओं का मानदण्ड मनुष्य है। प्रोटेगोरास के पश्चात् 'जोर्जियस' का नाम प्राप्त होता है। जोर्जियस के बाद 'थ्रेसीमेकस' का उल्लेख प्राप्त होता है, इसने 'प्रोटेगोरास' के व्यक्तिवाद को 'निष्ठुर शक्तिवाद' में परिणत किया। विभिन्न दोषों के बावजूद भी सोफिस्ट प्रगतिशील विचारधारा से युक्त थे।

सुकारात, एथेंस का पहला दार्शनिक (469–399 ई0पू0) था। सुकरात का जन्म साधारण परिवार में हुआ, उसकी माता दाई व पिता मूर्तिकार थे। सुकरात की रुचि जन्म से ही दर्शन में थी, जिसे सोफिस्टों के विरुद्ध उत्पनन भावना ने और प्रबल बना दिया। शीघ्र ही सुकरात के अनेक शिष्य हो गए, जिनमें 'प्लेटो' प्रमुख था। सुकरात के दर्शन का प्रमाण हम प्लेटो के 'डायलॉग्स' और क्जनाफन के 'मेमोरेबिलिया' से प्राप्त होता है। सुकरात का मत था कि यदि वह शाश्वत सत्य के दर्शन करना चाहता है तो सही उपायों का अवलम्बन करे। सुकरात के विचार प्रगतिशील थे परन्तु एथेंस की सुरक्षा की दृष्टि से घातक (शासकों के अनुसार)। अतः शासकों ने उस पर आरोप लगाया कि वह यूनानी युवकों को बिगाड़ रहा है। इस संकट को समाप्त करने हेतु 399 ई0पू0 में सुकरात को विषपान द्वारा मृत्युदण्ड दिया गया।

यूनानियों में विज्ञान के प्रति अधिक रुचि नहीं थी, परन्तु गणित, चिकित्साशास्त्र व ज्योतिर्विद्या के क्षेत्र में पेरिक्लिज़ युग में कुछ अविष्कारों के प्रमाण मिलते हैं। यूनानियों का विज्ञान, दर्शन से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित था। 440 ई0पू0 में कियोस के 'हिप्पोक्रेटीज' ने बीजगणित को स्वतन्त्र आधार प्रदान किया। उसके बाद 'हिप्पियास' व 'डेमोक्रेटिज' ने इसे विकसित किया।

पेरिक्लीज युगीन यूनानियों ने सर्वाधिक प्रगति चिकित्साशास्त्र में की। चिकित्साशास्त्र का इतिहास 'एम्पिडोक्लिज़' (495–435 ई0पू0) से प्रारम्भ होता है। इसने सिद्ध किया कि रक्त हृदय की ओर से प्रवाहित होता है व त्वचा से सूक्ष्म छिद्र श्वास प्रक्रिया में पूरक होता है। 'अलक्मेयन' (यूनानी चिकित्साशास्त्र का पिता) ने 'ऑप्टिक नर्व' का पता लगाया व पशुओं की शल्य चिकित्सा प्रारम्भ की। इस युग का सबसे बड़ा चिकित्सक कॉस निवासी 'हिप्पोक्रेटिज़' था। यह गणितज्ञ हिप्पोक्रेटिज़ से भिन्न था। उसने चिकित्सकों हेतु एक व्यावसायिक शपथ भी प्रचलित थी जो आज भी श्रद्धेय मानी जाती है।

पाँचवीं शती ई0पू0 में यूनानियों ने ज्योतिर्विद्या में काफी प्रगति की। चिकित्साशास्त्री 'एम्पिडोक्लिज़' ने बताया कि विश्व चार तत्वों– पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि से निर्मित है। एलिया के दार्शनिक 'पार्मेनिडीज़' ने घोषित किया

कि पृथ्वी गोलाकार है व चन्द्रमा सूर्य द्वारा प्रकाशित है। 'डेमोक्रिटिस' ने आकाश गंगा को अनन्त विश्वों का समूह बताया। 'एनेक्जेगोरास' ने बताया कि चन्द्रमा पृथ्वी के निकटतम है व उस पर मैदान व पर्वत है। इस प्रकार हम देखते हैं कि पेरिक्लीज युगीन यूनान वासी बौद्धिक क्षेत्र में भी अग्रणी थे।

10.4. पेरिक्लीज कालीन कला एवं स्थापत्य

यूनानी कला एवं स्थापत्य यूनानी सभ्यता की आत्मा है। पेरिक्लीज काल में भी यूनानी कला एवं स्थापत्य के क्षेत्र में निरन्तर वृद्धि होती रही। पेरिक्लीज एथेंस को यूनान का राजनीतिक केन्द्र ही नहीं अपितु सांस्कृतिक हृदयस्थल भी बनाना चाहता था। पेरिक्लीज ने एथेंस का पुनर्निर्माण करवाया। एथेंस को रक्षा प्राचीन से युक्त किया। एथेंस को भव्य भवनों से अलंकृत किया, जिसके लिए उसने डेलोस संघ के कोश का प्रयोग किया। इस काल में निर्मित भवनों में सभा–भवन, संगीत भवन तथा पार्थेनोम का मन्दिर प्रमुख है। इस देवालय का निर्माण 'इक्टिनस' 'केलिक्रंटिज' नामक सुप्रसिद्ध कलाकारों द्वारा किया गया। यह देवालय पूर्ण संगमरमर से निर्मित है। यह 228′ लम्बा, 101′ चौड़ा व 65′ ऊँचा था। इस भवन के निर्माण में 'डोरिक शैली' (भारी व मोटे स्तम्भ, शीर्ष भाग सादा), 'आयोनिक शैली' (स्तम्भ पतले व हल्के, शीर्ष भाग कुण्डलाकार) का प्रयोग किया गया। पाँचवीं शती ई0पू0 की सर्वाधिक लोकप्रिय शैली 'डोरिक' थी, पार्थेनोन इसी शैली में निर्मित किया गया था।

पेरिक्लीज युगीन मूर्तिकार सुवर्ण, हस्तिदन्त व कांस्य से भी सुन्दर मूर्तियों का निर्माण कर लेते थे। संगमरमर से मूर्ति का निर्माण करने में वे दक्ष थे। यूनानी मूर्तिकला की चरम परिणति हमें इस काल में प्राप्त होती है। कलाकारों के मुख्य विषय देवता तथा मनुष्य दोनों थे, परन्तु मनुष्य की मूर्तियों में वे अधिक प्रवीण माने जाते थे। क्रीड़ारत पुरुषों एवं नारियों के प्रदर्शन में यह अतुलनीय थे। इस काल में मूर्तिकला के रेजियम, सिसोन, आर्गोस व ईजाइना आदि सम्प्रदाय विकसित हो चुके थे। रेजियम सम्प्रदाय के कलाकारों में 'पाइथागोरस' प्रमुख थे। आर्गोस के कलाकारों में सर्वाधिक प्रसिद्ध 'पोलिक्लीटस' था। इसने हेरा की सुवर्ण व हाथी दाँत निर्मित मूर्ति बनायी।

पेरिक्लीज युग का सर्वाधिक प्रसिद्ध मूर्तिकार 'फीडियास' (490–432 ई0पू0) था। पार्थेनोन की 38′ ऊँची एथेना की मूर्ति का निर्माण कीडियास द्वारा किया गया। इसने ओलम्पिया निवासियों हेतु स्वर्ण व हाथी दाँत से जियस की 60′ ऊँची मूर्ति बनायी। कांस्य निर्मित एथेना की 'लेम्नियन एथेना' फीडियास की सर्वोत्कृष्ट रचना मानी जाती है। इसे पार्थेनोन 525′ लम्बे रिलीफ चित्रों को

सजाने का कार्य भी दिया गया, जिसमें ट्राय युद्ध का अंकन है।

यूनानी चित्रकला का भी पूर्ण विकास पेरिक्लीज युग में हुआ। इस काल में चित्रकला की तीन विधियों यथा फ्रेस्को, टेम्परा व एन्कॉस्टिक का प्रयोग किया जाता था। फ्रेस्को में चित्रकार भित्ति के ताजे प्लास्टर पर चित्रकारी करता था। टेम्परा विधि में रंगों में अण्डे की सफेआी मिलाकर गीले कपड़े या बोर्ड पर चित्र अंकित किए जाते थे व एन्कॉस्टिक विधि में रंगों को मोम में मिश्रित कर प्रयोग किया जाता था। पेरिक्लीज युगीन चित्रकारों में सर्वाधिक प्रसिद्ध 'पॉलीग्नोटस' था। इसने अपने जीवनकाल में अनेक चित्रों का निर्माण किया जिनमें 'ट्रॉय का विनाश', 'रेप ऑफ दी ल्युसिपिडाई' तथा 'ओडिसियस इन हेडीज' प्रसिद्ध है। पॉलीग्नोट्स के बाद 'ज्यूक्सिज' और 'पर्रेसियस' नामक दो अन्य चित्रकार हुए। ज्यूक्सिज ने ही हेलेना का चित्र बनाया।

10.5. पेरिक्लीज कालीन बौद्धिक उपलब्धियाँ

पेरिक्लीज युगीन एथेंसवासियों की साहित्यिक विलक्षणता का प्रमाण दुःखान्त नाटकों की रचना में मिलता है। डायोनाइसस (मदिरा के देवता) के सम्मान में गाए जाने वाले गीतों व संवादों से यह नाटक अस्तित्व में आए। यह नाटक अन्य देशों के नाटकों से भिन्न थे। इनमें रंगमंच पर बहुत कम दृश्य दिखाए जाते थे। कथानक प्रायः लोकप्रिय धर्म कथाओं पर आधारित थे। यूनानी नाटक दुःखान्त व आदर्शवादी होते थे व इनमें नारी प्रेम वर्जित माना जाता था। यूनानी दुःखान्त नाटकों का संस्थापक 'एस्काइलस/ईस्किलस' (525–456 ई0पू0) को माना जाता था। वह साहित्यकार के साथ–साथ महान योद्धा भी था। एस्काइलस ने 80 नाटकों की रचना की, जिनमें मात्र सात ही प्राप्य हैं। 'प्रोमेथियस बाउण्ड', 'दि पर्शियन', 'ओरेस्टिया' तथा 'सेवेन अगेन्स्ट थीबिज' उल्लेखनीय है। इनमें भी 'प्रोमेथियस बाउण्ड' सर्वोत्कृष्ट रचना है। दूसरा प्रमुख यूनानी दुःखान्त नाटककार 'सोफोक्लीज/सॉफोक्लीज' (499–406 ई0पू0) था। इसने 113 नाटक लिखे, जिनमें वर्तमान समय में सात ही प्राप्त हैं।

इसके नाटकों में 'ओयडियस रेक्स', 'एण्टिगोन' तथा 'एलेक्ट्रा' विषेष प्रसिद्ध हैं। इसे अपनी कृतियों हेतु 18 बार पुरस्कृत किया गया था। 'यूरीपिडीज' (480–406 ई0पू0) इस काल का अन्तिम महान दुःखान्त नाटककार था। स्वभावतः यह संशयवादी, व्यक्तिवादी व मानवतावादी था, इसने युद्धों व अत्याचारों का घोर विरोध किया। यूरीपिडीज ने 75 नाटकों की रचना की जिनमें 18 ही प्राप्त हैं। 'एल्कैस्टिस', 'मीडिया' तथा 'दि ट्राजन वीमेन' प्रसिद्ध नाटक हैं। यूनानी सुखान्त नाटककारों में सर्वाधिक प्रसिद्ध 'एरिस्टोफेनीज' है।

उसके द्वारा रचित 42 नाटकों में 11 मिलते हैं, जिनमें 'दि फ्रॉग्स', 'दि बर्ड्स' तथा 'दि क्लाउड्स' प्रसिद्ध हैं। पेरिक्लीज काल में भी गीतिकाव्य परम्परा जारी रही। पेरिक्लीज युगीन यूनान का सबसे बड़ा कवि 'पिण्डार' था। नाटक एवं काव्य के अतिरिक्त पेरिक्लीज कालीन यूनानी ऐतिहासिक ग्रन्थों की रचना के लिए भी प्रसिद्ध थे। इतिहासकारों में हेरोडोटस व थ्युसिडाइडीज प्रसिद्ध थे। हेरोडोटस को 'इतिहास–शास्त्र का जनक' कहा जाता है। उसका ग्रन्थ 'हिस्टरीज' एक प्रकार से 'विश्व इतिहास' बन गया। थ्युसिडाइडीज को 'वैज्ञानिक इतिहासशास्त्र का जनक' कहा जाता है। उसने अपने ग्रन्थ 'पेलोपोनेसियन वार' में एथेंस व स्पार्टा के संघर्ष का विवरण किया है। मैकॉले उसे 'महानतम इतिहासकार' घोषित किया है।

10.6. बोध प्रश्न

1. पेरिक्लीज कौन था ? उसके युग में यूनानियों की विविध उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।

2. पेरिक्लीज कालीन यूनान पर निबन्ध लिखिए।

10.7. सन्दर्भ ग्रन्थ

1. श्री रामगोयल, विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ, वाराणसी, 2011.
2. राजछत्र मिश्र, प्राचीन सभ्यताएँ, इलाहाबाद, 2008.
3. डॉ0 आर0एन पाण्डेय, प्राचीन विश्व की सभ्यताएँ, इलाहाबाद, 2013.
4. बर्न्स, वेस्टर्न सिविलाइजेशन्स, लन्दन,1980

इकाई–11 हेलेनिक व हेलेनिस्टिक सभ्यता

इकाई की रूपरेखा

11.0. प्रस्तावना

11.1. उद्देश्य

11.2. हेलेनिक सभ्यता

11.2.1. यूनानी नगर राज्य

11.2.2. लाइकर्गस का संविधान

11.2.3. यूनानी पारसीक युद्ध

11.2.4. हेलेनिक धर्म व दर्शन

11.3. हेलेनिस्टिक सभ्यता

11.3.1. समाज व अर्थव्यवस्था

11.3.2. धर्म व दर्शन

11.3.3. साहित्य

11.3.4. कला

11.3.5. विज्ञान

11.4. बोध प्रश्न

11.5. सन्दर्भ ग्रन्थ

11.0. प्रस्तावना

होमरकाल के अवसान के पश्चात् पाँचवीं शती ई0पू0 के प्रथम चरण तक का यूनानी इतिहास समस्त भूमध्य सागरीय प्रदेशों में औपनिवेशिक प्रसार, नगर राज्यों के उत्कर्ष तथा क्लासिकी यूनानी सभ्यता की स्थापना का युग माना जाता है। यूनान के पास कृषि योग्य उर्वर भूमि का अभाव था, अतः यूनानी अधिक उर्वर भूमि की खोज में निकल पड़े। यूनान में कृषि योग्य भूमि की अल्पता के परिणामस्वरूप मध्यकाल तक भूमि वितरण की भावना को प्रबलता मिली। यूनानी औपनिवेशिक प्रसार में व्यापार एवं वाणिज्य का भी महत्त्वपूर्ण योगदान था। इसमें सर्वाधिक योगदान लीडियन मुद्रा प्रणाली का था।

आयोनियन इस क्षेत्र में अग्रणी थे। मिलेट्स के ऊनी वस्त्र, मृद्भाण्ड तथा शराब को ख्याति प्राप्त हुयी। निटिलीन एक प्रसिद्ध औद्योगिक नगर के रूप में प्रतिष्ठित हो गया। होमर काल के पश्चात यूनान में जिन दो सभ्यताओं का उदय हुआ उन्हें हम क्रमशः हेलेनिक व हेलेनिस्टिक सभ्यताओं की संज्ञा देते हैं।

सर्वप्रथम हेलेनिक व हेलेनिस्टिक सभ्यताओं सभ्यताओं के मध्य मूलभूत अंतर जान लेना आवष्यक है। हेलेनिक एवं हेलेनिस्टिक सभ्यता में आधारभूत अन्तर विद्यमान है, जो निम्नवत् हैं–

- हेलेनिक की उत्पत्ति मुख्यतः यूनानी क्षेत्र (क्रीट, यूनानी द्वीप समूहों व एशिया माइनर के तटवर्ती) में हुयी तथा हेलेनिस्टिक सभ्यता उदभव व विकास समस्त यूनान व उन सभी क्षेत्रों में हुआ जहाँ सिकन्दर का आधिपत्य था। हेलेनिक सभ्यता विषुद्ध यूनानी सभ्यता थी परन्तु हेलेनिस्टिक विभिन्न प्राच्य संस्कृतियों के सम्मिश्रण से निर्मित थी।
- दोनों सभ्यताओं के कालक्रम में अन्तर है। हेलेनिक सभ्यता का काल सिकन्दर के पूर्व 507 ई0 पू0 से प्रारम्भ कर उसकी मृत्यु अर्थात 323 ई0 पू0 तक व हेलेनिस्टिक सभ्यता का काल 323 ई0 पू0 (सिकन्दर की मृत्यु से प्रारम्भ कर) 31 ई0 पू0 (मार्क एण्टोनी की पराजय) तक माना जाता है।
- हेलेनिक संस्कृति अपनी स्वतंत्रता एवं गणतंत्रात्मक प्रणाली के लिए प्रसिद्ध थी, किन्तु हेलेनिस्टिक दैवीय शक्ति सम्पन्न, शासकों की तानाशाही एवं निरंकुशता पर आधारित थी।
- हेलेनिक अर्थव्यवस्था सीमित थी किन्तु हेलेनिस्टिक अर्थव्यवस्था विकसित पूँजीवाद पर आधारित थी।
- हेलेनिक काल में देवताओं का मानवीयकरण किया गया था, परन्तु हेलेनिस्टिक कालीन देवी–देवता उच्च गुणों से युक्त थे तथा स्वर्ग प्राप्ति के साधन थे।

इस प्रकार इन दोनों सभ्यताओं को एक–दूसरे पर आधारित माना जा सकता है। जहाँ हेलेनिक सभ्यता को यूनान का स्वर्ण युग कहा जाता है वहीं हेलेनिस्टिक सभ्यता ने विकसित व साम्राज्यवादी यूनान का मार्ग प्रशस्त किया।

11.1. उद्‌देश्य

इस इकाई से हमारा उद्‌देश्य हेलेनिक व हेलेनिस्टिक सभ्यता के विभिन्न

पहलुओं को उद्घाटित करना है। इस इकाई के अन्तर्गत हेलेनिक व हेलेनिस्टिक सभ्यता के उद्भव व विषेषताओं आदि का विस्तारपूर्वक विश्लेषण किया गया है।

11.2. हेलेनिक सभ्यता

हेलेनिक सभ्यता का प्रारम्भ 507 ई0पू0 में हुआ। हेलेनिक सभ्यता एथेंस, स्पार्टा व कोरिंथ सदृश प्रमुख नगर–राज्यों की जीवन शैली पर आधारित थी। इस काल को यूनान के इतिहास के स्वर्ण काल भी संज्ञा दी जाती है, क्योंकि इस काल में लोकतन्त्र का विकास हुआ व सुकरात, प्लेटो, अरस्तू तथा अन्य अनेक बुद्धिजीवियों का उद्भव इस काल में हुआ। कालान्तर में इन सभी ने पश्चिमी संस्कृति के उद्भव में अपना योगदान दिया। हेलेनिक सभ्यता से पूर्व यहाँ की शासन व्यवस्था सामंतवादी अथवा कुलीन तन्त्री थी। शासक स्वार्थ पूर्ति के लिए शासन करता था। ऐसे वातावरण में यूनानियों के मन में देशप्रेम की भावना रहते हुए भी वह देशत्याग कर किसी नवीन स्थान पर बसने की इच्छा रखते थे। अतः इन्होंने अन्यत्र स्थानों पर जाकर अपने उपनिवेश बसाये। यही यूनानी उपनिवेश कालान्तर में नगर राज्यों में परिवर्तित हुए व लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली का विकास किया।

यूनानी उपनिवेशों का पैतृक नगर से कोई भी राजनीतिक सम्बन्ध नहीं रहता था व यह सर्वथा स्वतन्त्र थे, परन्तु इनका धार्मिक व भावनात्मक सम्बन्ध बना रहता था। उपनिवेश स्थापना के पूर्व पोलिस डेल्फी के ऑरकल से परामर्श लेता था। औपनिवेशिक प्रसार के पूर्व यूनान संकटग्रस्त (आर्थिक दृष्टि) था, परन्तु उपनिवेशों की स्थापना ने इस समस्या का समाधान कर दिया। यूनानी व्यापार दिन–प्रतिदिन विकसित होने लगा। उपनिवेशीकरण के परिणामस्वरूप विभिन्न यूनानी नगर संगठित हुए व नगर–राज्यों की स्थापना हुयी।

11.2.1. यूनानो नगर–राज्य–

यूनानी नगर राज्य के लिए प्रायः 'पोलिस' शब्द का प्रयोग करते थे, परन्तु इनके स्वरूप में पर्याप्त भिन्नता विद्यमान थी। पोलिस मुख्य नगर ही राज्य माना जाता था। पोलिस के समीप के ग्राम तथा अन्य छोटे नगर इसी से सम्बन्धित रहते थे। अधिकांशतः पोलिस विस्तार व जनसंख्या दोनों दृष्टियों से छोटे थे। सातवीं शताब्दी ई0पू0 में छोटी–छोटी राजनीतिक ईकाइयाँ, बड़े–बड़े राजनीतिक संगठनों में परिवर्तित होने लगी तब सुरक्षात्मक दृष्टि से एक ऊँचे स्थल पर दुर्ग बनाया गया, जिसके चारों ओर आबादी बसने लगी। कालान्तर में यही नगर राजनीतिक शक्ति के केन्द्र के रूप में स्थापित हो गए।

एथेंस–

यूनानी नगर–राज्यों में सर्वाधिक प्रसिद्ध नगर–राज्य एथेंस था। एथेंस एट्टिका प्रदेश का ही नहीं समस्त यूनान का महत्त्वपूर्ण नगर था। यूनानी सभ्यता का चरम विकास एथेंस से ही हुआ। एट्टिका प्रदेश मूल्यवान धातुओं तथा प्राकृतिक बन्दरगाहों से युक्त था, इसीलिए यहाँ पर्याप्त व्यापारिक उन्नति हुयी, परन्तु यहाँ कृषि योग्य भूमि का अभाव था।

माइसीनी युग में भी एथेंस के प्रमाण प्राप्त होते हैं, परन्तु होमरकाल में इसे अधिक महत्व नहीं दिया गया। प्रारम्भ में एथेंस की शासन व्यवस्था राजतन्त्रात्मक थी। थ्यूसीडाइडीज के अनुसार थीसियस के शासन में एट्टिका के बारह नगर–राज्यों को एकीकृत किया गया। यहाँ का अन्तिम ज्ञात नरेश कोड्रस था, तत्पश्चात् सत्ता सामन्तों के हाथ में आ गयी। सामन्तों की दो सभाएँ थीं। पहली 'नौ आर्कनों' (संरक्षक) की तथा दूसरी सभा 'काउंसिल ऑव एरियोपेगस' कही जाती थी। दूसरी सभा आर्कनों पर नियन्त्रण रखती थी। इस सभा का कार्य कानून का पूर्णरूपेण पालन करवाना था। परन्तु अभी तक एथेंस में कोई लिखित कानून नहीं था। इस समय एथेंस में जैतून व अंगूर की खेती की जाने लगी, परन्तु इनकी कृषि धनी किसान व सामन्त ही कर सकते थे। धीरे–धीरे किसानों पर ऋण बढ़ता गया और वह कृषकों के स्थान पर कृषक दास (सर्फ) बनने लगे। इस स्थिति से उत्पन्न असंतोश का लाभ उठाकर 632 ई0पू0 में साइलोन नामक सामन्त ने अपने श्वसुर थ्येग्रीज (मेगारा के टायरेन्ट) की सहायता से एथेंस पर अपनी सत्ता स्थापित करने की चेष्टा की परन्तु असफल रहा। 621 ई0पू0 में ड्रैको नामक विधि विषेषज्ञ को एक विधिसंहिता की रचना का उत्तरदायित्व दिया गया, परन्तु इसके कानून अत्यन्त कठोर थे, छोटे–छोटे अपराधों के लिए इसने मृत्युदण्ड की व्यवस्था की थी। इसने न्याय हेतु 'एकेटी' नामक 51 न्यायाधीशों की व्यवस्था की थी। इस समय एथेंस में अव्यवस्था और बढ़ गयी व विद्रोह की संभावनाएँ पनपने लगीं। तो विद्रोह को समाप्त करने हेतु 594 ई0पू0 में सोलन नामक सामन्त को आर्कन चुना गया।

सोलन–

सोलन कोड्रस का वंशज व 'एक्सेस्टिडीज' का पुत्र था। वह एक कुशल व्यापारी, कवि व बुद्धिमान राजनीतिज्ञ था, उसने एथेंस के सामाजिक और राजनीतिक संगठन में मूलभूत परिवर्तन किए। समाज को चार वर्गों में विभाजित किया– (1) 500 बुशल से अधिक आय वाले, (2) 300 से 500 बुशल आय वाले, (3) 200 से 300 बुशल आय वाले, (4) स्वतन्त्र श्रमिक। उसने शासन समितियों

को पुनर्गठित किया। पुरानी काउंसिल ऑव एरियोपेगेस पूर्ववत् रही, परन्तु अब कोई भी व्यक्ति उसका सदस्य बन सता था। ब्यूल की सदस्यता से केवल स्वतन्त्र श्रमिक वर्ग बाहर रहा। इसके सदस्यों की संख्या 400 थी, इसलिए इसे 'काउंसिल ऑफ फोर हंडरेड' भी कहा जाता है। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाीश बनने का अधिकार चारों वर्गों को दे दिया। निर्धनों की दशा में सुधार करने हेतु सोलन ने सभी पुराने ऋणों को माफ कर दिया। सोलन बालकों के शारीरिक विकास के साथ बौद्धिक विकास को भी आवष्यक मानता था। वेश्यावृत्ति वैध घोषित कर दी, बलात्कार को जघन्य अपराध ठहराया और अपव्ययात्मक धार्मिक समारोहों को कम करने का प्रयास किया।

सोलन की यूनान के महानतम भविष्यदृष्टा राजनीतिज्ञों में गणना की जाती है। वह एक दूरदर्शी विचारक भी था। उसने अपने सुधारों द्वारा एथेंस के भावी जनतन्त्र का बीजारोपण किया। यह अपने राजतान्त्रिक जीवन के अन्तिम समय मिस्र एवं पूर्वी सभ्यताओं की जानकारी के लिए चल पड़ा। इसने साइप्रस निवासियों के लिए भी कानून बनाया।

सोलन के सुधार का सर्वाधिक विरोध भूमि सम–विभाजन की माँग करने वाले उग्र दल ने किया। उनकी सहायता से 560 ई0पू0 में पीसिस्ट्रेटस नामक सामन्त टायरेंट बन बैठा। पीसिस्ट्रेटस के पश्चात् 'हिप्पार्कस' और 'हिप्पियास' नामक पुत्रों ने कुछ समय तक पिता की उदार नीति जारी रखी, परन्तु हिप्पकिस की मृत्यु के पश्चात् हिप्पियास अत्याचारी हो गया। 510 ई0पू0 में सामन्तों ने आइसोगोरास की सहायता से स्पार्टा के नेतृत्व में हिप्पियास को अपदस्थ कर दिया। स्पार्टावासियों ने आइसोगोरास को सत्तारुढ़ करने की चेष्टा की, परन्तु असफल हो गए तत्पश्चात् 'क्लीस्थेनीज' ने एथेंस में प्रजातन्त्र की स्थापना की व संविधान बनाया।

क्लीस्थेनीज–

क्लीस्थेनीज ने एथेंसवासियों के लिए एक नवीन संविधान का निर्माण किया। इसने सर्वप्रथम एट्टिका के छोटे–छोटे जिलों को समाप्त करने हेतु नगर क्षेत्र, तटवर्ती क्षेत्र तथा अन्तर्वर्ती क्षेत्र तीन भागों में वर्गीकृत किया। प्रत्येक क्षेत्र को 'त्रित्यीज' नामक दस समुदायों में बाँटा गया। यह दस समुदाय एरेक्थीसिस, इगीज, पेण्डियानिस, लियोटिस, एकेमेनटिस, इनीज, सेक्रोथिस, इयाटिंस, हिप्पोथोंटिज व एंटिओकिस थे। इसने 'काउंसिल ऑव फाइव हण्डरेड' की स्थापना की, निका चुनाव लॉटरी द्वारा किया जाता था। तानाशाही की स्थापना के भय को दूर करने के लिए क्लीस्थनिज ने 'ऑस्ट्रेसिज्म' नियम बनाया। इसके

अनुसार प्रतिवर्ष असेम्बली की इच्छा होने पर जनसाधारण बहुमत से किसी भी व्यक्ति को राज्य के लिए घातक घोषित कर सकते थे। ऐसे व्यक्ति को दस वर्ष के लिए देश से निष्कासित रहना होता था। कालान्तर में यह नियम दलगत राजनीति का साधन बन गया। 501 ई0पू0 में सेना का पुनर्गठन किया गया।

क्लीस्थेनीज के सुधारों से एथेंस का जनतन्त्र पूर्णतर हुआ। अब तानाशाही की स्थापना का भय कम हो गया व जनता का प्रशासन में प्रत्यक्ष योगदान बढ़ गया व जनसामान्य राजनीतिक समस्याओं से अवगत होने लगे।

स्पार्टा–

स्पार्टा नगर पेलोपोनेसस अर्थात् दक्षिणी यूनान के लेकोनिया प्रदेश का प्रधान नगर था। यह पिटेनी, मेसोआ, लिमनी, कोनौरा तथा डाइमी नामक पाँच गाँवों का संघ था। वह उत्तर, पूर्व तथा पश्चिम की ओर से पहाड़ियों तथा दक्षिण की ओर समुद्र से घिरा था। यहाँ 161 किलोमीटर लम्बी मैदानी पट्टी थी, जिससे खाद्य समस्या का समाधान हो गया, परन्तु बन्दरगाहों के अभाव में यह व्यापारिक प्रगति नहीं कर सका। स्पार्टा का प्राचीनतम उल्लेख होमर के महाकाव्यों 'इलियड' और 'ओडिसी' में प्राप्त होता है। जहाँ यूनान के शेष राज्यों में जनतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था का विकास हुआ, वहीं स्पार्टा में व्यक्ति स्वातन्त्र्य विरोधी सैनिक निरंकुशवाद का प्रभाव था। नवीं शती ई0पू0 में इस पर डोरियनों का आक्रमण हुआ व यहाँ के मूल निवासियों को परास्त कर पेलोपोनेसस पर अधिकार कर लिया। इसके बाद लैसीडीमन को मुख्य केन्द्र बनाया। परन्तु यह इतने से ही सन्तुष्ट नहीं रहे। टायगेटस पर्वत के पश्चिम स्थित मेसोनिया के उर्वर मैदानों के प्रति आकृष्ट होकर इस पर आक्रमण कर अधिकार कर लिया। इसी घटना के पश्चात् स्पार्टावासियों ने सैन्यवाद को अपनाया।

11.2.2. लाइकर्गस का संविधान

स्पार्टा में 600 ई0पू0 के लगभग जिस नवीन व्यवस्था का आविर्भाव हुआ वह लाइकर्गस के नाम से संयुक्त है। लाइकर्गस ने जिस संविधान की रचना की उसके अनुसार शासन, शासक, काउंसिल, असेम्बली तथा एफोरेट द्वारा संचालित किया जाता था। यहाँ एक शासक के स्थान पर दो शासकों की नियुक्ति की जाती थी, जिसमें एक शासक अगीदी तथा दूसरे का दक्षिणी लकोनिया के पुरीपोण्टीडी जाति से था। लाइकर्गस ने दोनों शासकों को समान महत्व दिया। विधानतः शासक न्यायाधिकारी भी होता था। प्रशासन की द्वितीय इकाई वृद्ध परिषद् थी, जिसे 'जेरूसिया' या 'जेरोटिया' कहा गया है। यह

स्पार्टा की सर्वोच्च न्यायिक तथा प्रशासनिक इकाई थी यह कौंसिल वृद्धजनों की सभा थी, जिसमें सदस्यों की संख्या 28 थी। असेम्बली या अपेला साधारजनों की सभा थी। लाइकर्गस के संविधान में सर्वाधिक महत्व पाँच सदस्यों के एक निदेशालय का था। इसे एफोरेट तथा इसके सदसयों को 'एफार' कहा जाता था। एफोरेट 'काउंसिल' तथा 'असेम्बली' की अध्यक्षता करती थी।

लाइकर्गस के संविधान के अनुसार स्पार्टा की जनसंख्या 'शासक', 'पेरिओसी', 'सर्फ' या 'हेलॅट' तीन वर्गों में बँटी थी। पेरिओसी मध्यम वर्ग था, व्यापार, वाणिज्य तथा उत्पादन पर इनका एकाधिकार था। हेलॅट वर्ग की सामाजिक स्थिति ठीक नहीं थी। समाज की सुव्यवस्थित तथा स्वच्छ बनाने हेतु कठोर नियमों का विधान था। पिता को स्वस्थ एवं बलिष्ठ सन्तान उत्पत्ति करने हेतु विवष किया जाता था। कमजोर व अस्वस्थ नवजात शिशु को टायगेटस पर्वत की चोटी से फेंकवा दिया जाता था। सात वर्ष के पश्चात् बालक राज्य की सम्पत्ति मान लिए जाते थे। इनके पाठ्यक्रम में साहित्य, दर्शन, विज्ञान, कला इत्यादि का कोई स्थान नहीं था। इन्हें सैनिक व शारीरिक शिक्षा दी जाती थी। उन्हें चोरी करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था, किन्तु पकड़े जाने पर घोर यातनाएँ भी दी जाती थीं। लड़कियों का भरण–पोषण माता द्वारा किया जाता था, परन्तु इस पर भी कुछ राजकीय नियन्त्रण था। राज्य द्वारा विवाह के लिए पुरुषों के लिए तीस वर्ष तथा स्त्रियों के लिए बीस वर्ष की उम्र निर्धारित थी।

लाइकर्गस के संविधान का प्रमुख उद्देश्य स्पार्टावासियों को निपुण सैनिक बनाया था, इसीलिए इन्हें कृषिकर्म, व्यापार अथवा व्यावसायिक कार्यों से दूर रखा गया। यहाँ कृषिकर्म हेलटों द्वारा तथा व्यापार–वाणिज्य का कार्य 'पेरिओसी' वर्ग द्वारा किया जाता था। स्पार्टा में व्यापार को हतोत्साहित किया गया। विदेशी यात्रियों के आगमन पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

इस प्रकार ज्ञात होता है कि स्पार्टा की शासन व्यवस्था, रूपरेखा में राजतन्त्रात्मक, सिद्धान्ततः गणतन्त्रात्मक और यथार्थ में कुलीनतन्त्रात्मक थी। इसका मूलाधार था निरंकुश सैनिकवाद था। इसमें नागरिकों को राज्य के लिए माना गया है, परन्तु राज्य को नागरिकों के लिए नहीं। हम कह सकते हैं कि 'सोलन ने एथेंस वालों को मनुष्य बनाया था तो लाइकर्गस ने स्पार्टा वालों को यन्त्र बना डाला।' कालान्तर में स्पार्टा वालों से नगर–राज्य वासी त्रस्त हो गए और जब स्पार्टा पतन हुआ तो आश्चर्य सबको हुआ, परतु दुःख किसी को भी नहीं।

11.2.3. यूनानी–पारसीक युद्ध

छठी शताब्दी ई0पू0 के उत्तरार्द्ध में जब एथेंस का जनतन्त्र और स्पार्टा के सैनिक निरंकुशवाद में पूर्णता प्राप्त कर रहे थे, उसी समय ईरान के हरवामशी साम्राज्य के शासक साम्राज्य विस्तार में व्यस्त थे। कुरूश (साइरस) महान् (558–529 ई0पू0) ने पूर्व में बैक्ट्रिया, लीडिया और एशिया माइनर के यूनानी उपनिवेशों को जीत कर इसे भारत व यूनान का पड़ोसी बना दिया। 492 ई0पू0 में दारयवौश प्रथम ने थ्रेस, थेसोस और मेसीडोन को पुनर्विजित किया। इसके पश्चात् दारयवौश का ध्यान यूनान की ओर गया। उसने यूनानियों को हरवामशी प्रभुत्व स्वीकार करने को कहा, परन्तु एथेंस व स्पार्टा ने अधीनता स्वीकार करने से इंकार कर दिया। अतः मैराथन के मैदान में पारसीक व यूनानी सेनाएँ शक्ति परीक्षा हेतु एकत्र हुयीं। पारसीकों की सेना यूनानियों से कई गुना अधिक थी, किन्तु वीर, आत्मविश्वासी एवं स्वतन्त्रता के लिए प्राणोत्सर्ग करने वाले यूनानियों के समक्ष न टिक सकीं। सफलता एथेंसवासियों को मिली।

दारा/दारयवौश प्रथम के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी क्षयार्श (क्जरक्सीज) ने सत्ता संभाली। अपने शासन के प्रारम्भिक वर्षों में उसने मिस्र व बेबीलोन के विद्रोहों का दमन किया व तत्पश्चात् पराजय का प्रतिशोध लेने हेतु विशाल सेना तैयार की। थर्मोपाइलेई स्थान पर स्पार्टा को पारसिक सेनाओं ने परास्त कर दिया। स्पार्टा की सेना का नेतृत्व 'थिमिस्टोक्लीज' ने किया।

इस युद्ध के पश्चात् आर्तेमिजयम के समुद्री युद्ध में भी यूनानी असफल हुए, परन्तु यूनानी सेनाओं ने हार नहीं मानी। उन्होंने साल्मिस, प्लेटाई और माइकेल के युद्धों में पारसीक जल बेड़ों को नष्ट कर दिया व ईरानी सेना को परास्त किया। यूनानी विजय के कारण निम्नवत् हैं–

- हारवामशी साम्राज्य के केन्द्र से बहुत दूर अवस्थित था।
- हारवामशी सेना के संख्या में विशाल होने के परिणामस्वरूप गतिशीलता में कमी आयी।
- पारसीक सेनाओं में एकता का अभाव था, इसके विपरीत यूनानी राजनीतिक एकता की भावना से ओत–प्रोत थे।
- ईरानी वेतनभोगी सैनिक थे, परन्तु यूनानी अपने देश, जाति व संस्कृति की रक्षा हेतु युद्ध करते थे।
- ईरानी सैनिक अनुशासन की दृष्टि में भी यूनानियों से पिछड़े थे।

पारसीक–यूनानी युद्ध विश्व इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इस संघर्ष में ईरान की पराजय से यूनान का सांस्कृतिक वैशिष्ट्य सुरक्षित रह सका। इस सफलता के बाद एथेंस की धाक यूनान में और यूनान की समस्त विश्व में जम गयी। एथेंस की नाविक शक्ति की धाक जमने के परिणामस्वरूप 'डलोस संघ' की स्थापना हुयी, कालान्तर में यही संघ एथेंस के साम्राज्य के रूप में परिणत हो गया।

11.2.4. हेलेनिक धमं व दर्शन

यूनानी राज्य, धर्म, भाषा, क्रीड़ा प्रेम, सौन्दर्य प्रेम व समान बौद्धिक जीवन के कारण एकता के सूत्र में बंधे थे। इनमें धर्म की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थी। इस काल में भी होमरकालीन देवताओं जियस, पोसिडोन का उल्लेख मिलता है। अन्य देवताओं में डेमिटर (पृथ्वी), मेतिस (प्रज्ञा देवी), हेरा (ओलम्पस की रानी, अपोला) अर्तिमिस (चन्द्रदेवी), एफ्रोडाइट (सौन्दर्य) व डायोनाइसस मुख्य थे।

यूनानी देवता प्राकृतिक शक्तियों का दैवीकरण थे। उनमें सभी मानवीय भावनाओं व गुणावगुणों का भी समन्वय था। हर राज्य का अपना संरक्षक देवता था व प्रत्येक यूनानी जाति अपने को किसी न किसी देवता की सन्तान मानती थी। यूनानी धर्म की पूजा विधि उपास्य देवताओं की प्रकृति पर निर्भर करती थी। ओलम्पियन देवताओं की पूजा विधि अपेक्षया सरल व डायोनाइसस की अत्यन्त विकृत थी। पशु–बलि का प्रावधान भी प्राप्त होता है।

हेलेनिक काल में दर्शन के क्षेत्र में मिलेशियन सम्प्रदाय का योगदान महत्त्वपूर्ण था। इस सम्प्रदाय के दार्शनिकों में थेलिज, एनेक्जीमेंडर व एनेक्जीमीनिज प्रमुख थे। 'थेलिज' (यूनानी दर्शन का पिता 624–550 ई0पू0) ने जगत भी उत्पत्ति का श्रेय जल को दिया। तत्पश्चात् उसके शिष्य एनेक्जीमेन्डर ने 'अनन्त' को सृष्टि का आदिकारण तथा उसके शिष्य एनेक्जीमीनिज ने वायु को जगत की उत्पत्ति का कारण माना। मिलेशियन सम्प्रदाय के दार्शनिकों ने सृष्टि का आदिकारण प्राकृतिक जगत को माना।

'पाइथेगोरास' ने यह श्रेय संख्या को दिया। उसके अनुसार संसार में जो क्रम व सामंजस्य दिखायी देता है वह भी संख्या का परिणाम है। 'पाइथेगोरास' पुनर्जन्म में विश्वास रखता था। वह कायाक्लेश और निवृत्तिमार्गी विचारधारा का समर्थक था। इस काल में एलियाई दर्शन का भी प्रमाण प्राप्त होता है। यह एकेश्वरवादी था व होमर की मानववादी देवत्व की व्याख्या के विरुद्ध था।

इस प्रकार हेलेनिक काल में यूनान का चतुर्दिक विकास हुआ। इस काल में यूनानियों ने साम्राज्य विस्तार के साथ–साथ दर्शन व विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति की। हेलेनिक काल के विकसित स्वरूप ने कालान्तर में हेलेनिस्टिक सभ्यता का मार्ग प्रशस्त किया।

11.3. हेलेनिस्टिक सभ्यता

हेलेनिस्टिक का जन्म यूनानी तथा पूर्वी संस्कृतियों के समिश्रण से हुआ। इसलिए इसे हेलेन (यूनानी) ईस्ट (पूर्वी) हेलेनिस्ट या हेलेनिस्टिक कहा गया। हेलेनिस्टिक संस्कृति का वास्तविक जनक 'सिकन्दर' को माना जाता है। विश्व विजय से प्रेरित सिकन्दर ने विविध धर्म, समाज व रीति–रिवाजों की सीमाओं को पार कर मेसीडान से लेकर सिन्ध प्रदेश तक साम्राज्य विस्तृत कर राजनीतिक व सांस्कृतिक एकता स्थापित की। हेलेनिस्टिक सभ्यता के विविध तत्वों के सूक्ष्म विश्लेषण से पता चलता है कि इस सभ्यता के निर्माण में तीन तत्वों की प्रधानता थी– (1) सिकन्दर व उसके पौर्वात्य देशों की विजय, (2) विषुद्ध यूनानी (हेलेनिक) सभ्यता का प्राच्य प्रसार तथा प्राच्य संस्कृतियों का यूनानीकरण, (3) पूर्वी देशों की संस्कृतियों का यूनानी संस्कृति पर प्रभाव। जॉन गुस्टैव ड्रायसन ने सर्वप्रथम 1833 में इस सभ्यता को 'हेलेनिस्टिक सभ्यताअ कहा। डब्ल्यू0 डब्ल्यू0 टॉर्न इसकी अवधि सिकन्दर की मृत्यु से प्रारम्भ कर रोम में आगस्टस के उदय तक स्वीकार करते हैं।

हेलेनिस्टिक सभ्यता काल में राजनीतिक विचारधारा में महान परिवर्तन हुआ। इस समय राजा के स्वरूप में देवत्व की कल्पना की जाने लगी। हेनरी एस0 लूकस के अनुसार 'हेलेनिस्टिक राज्यों का विषेष गुण राजा का देवत्व था।' प्रायः पूर्वी देशों में यह विचार सार्वजनिक रूप से प्रसारित हुआ कि राजा ईश्वर का प्रतिनिधि है।

11.3.1. समाज व अर्थव्यवस्था

हेलेनिस्टिक समाज विभिन्न धर्मों, जातियों तथा परम्पराओं के मिश्रण का प्रतिफल था। इस समाज में मुख्यतः तीन प्रकार के लोग थे– (1) पूर्वी राजतन्त्रों में आवासित यूनानी व उनसे प्रभावित जातियाँ, (2) पूर्वी राजतन्त्रों की देशज जातियाँ, (3) मूल यूनानी। सम्पूर्ण समाज उच्च व निम्न दो वर्गों में विभक्त था। उच्च वर्ग में शासक एवं शासकीय परिवार के सदस्य, पदाधिकारी तथा धनी लोग व निम्न वर्ग में व्यवसायी तथा कृषक सम्मिलित थे। दासों की विभिन्न श्रेणियाँ थीं।

समाज में विषेषकर उच्च वर्ग में स्त्रियों की दशा अच्छी थी। इस काल में शिक्षा की उचित व्यवस्था थी। शिक्षा का संगठन जिमनोनियम, इफीबेट तथा व्यक्तिग, सामाजिक तथा धार्मिक संस्थानों द्वारा किया गया था। मानवीय शिक्षा पर अधिक जोर दिया जाता था। यूनानी दर्शन, गणित, काव्य, गद्य व नाटकों का भी अध्ययन करते थे।

हेलेनिस्टिक सभ्यता का वैभव मुख्य रूप से उसके आर्थिक विकास से सम्बन्धित था। इस काल में व्यापक उत्पादन पर आधारित नगरीय आर्थिक प्रणाली का विकास हुआ। वैज्ञानिक, कृषि–व्यवस्था, औद्योगिक प्रगति, पूँजीवादी राज्य का आविर्भाव, व्यापार–वाणिज्य का बड़े पैमाने पर अन्तर्राष्ट्रीयकरण, मुद्राधारित अर्थव्यवस्था तथा वित्तीय व्यवस्था का विस्तार इस काल के आर्थिक गठन की मुख्य विषेषता थी।

हेलेनिस्टिक कालीन कृषिकर्म की महत्त्वपूर्ण विशिष्टता वैज्ञानिक विधि थी। इस काल में उर्वरकों के प्रयोग की नयी विधियाँ अपनायी गयीं। वनस्पति विज्ञान तथा प्राणि विज्ञान के अध्ययन द्वारा पशुपालन व फलोत्पादन के क्षेत्र में विकास हुआ। गधों तथा ऊँटों का भारवाहक पशुओं के रूप में उपयोग किया जाने लगा।

यह काल वित्तीय विकास की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण था। व्यापार में मुद्रा प्रणाली का प्रयोग व्यापक रूप से होने लगा। बैंकों की स्थापना हुयी। हेलेनिस्टिक पर्सिया में बैंक के स्थान पर अन्नागार से काम लिया जाता था। सट्टेबाजी, बाजार का समेटना, बड़ी व्यापारिक संस्थाओं का उदय तथा विज्ञापन का विकास इस काल की विषेषताएँ थीं।

इस काल में उद्योग–धन्धों पर राजकीय नियन्त्रण था। तेल, वस्त्र, कागज, ईंट, खपड़ा तथा चर्मपत्र उद्योग प्रचलन में थे। मिस्र– पेपाइरस, तेल कम्बल, कालीन, दरी, शीशा, उत्पादन हेतु। सीरिया तथा पर्गेसस– चर्मपत्र व कपड़े के व्यवसाय हेतु। मिलेटस– ईंट तथा खपड़ा निर्माण हेतु। पश्चिम एशिया तथा चीन– रेशम उत्पादन व भारत– कपास व ईख के लिए हेलेनिस्टिक काल में प्रसिद्ध था।

इस प्रकार कृषि, उद्योग–धन्धे तथा व्यापार–वाणिज्य की उन्नति से हेलेनिस्टिक युग की सम्पन्नता में पर्याप्त वृद्धि हुई। इस वृद्धि का प्रभाव नगरों के उदय पर पड़ा। इस काल के प्रमुख नगर सिकन्दरिया, पर्गेसस, मिलेटस, रोड्स, कोरिंथ, सइराक्यूज, कार्थेज आदि थे। इनमें मिस्र का सिकन्दरिया सर्वाधिक प्रसिद्ध नगर था।

11.3.2. धर्म व दर्शन

धर्म एवं दर्शन के क्षेत्र में हेलेनिक यूनान की पराजय व पूर्वी देशों की विजय हेलेनिस्टिक काल की विशिष्टता थी। हेलेनिस्टिक लोगों की यूनानी धर्म के प्रति श्रद्धा समाप्त हो गयी। अब व्यक्तिगत आशाओं तथा इच्छाओं की संतुष्टि का मार्ग खोजना प्रारम्भ हुआ। सर्वसाधारण व्यक्तिगत मुक्ति दिलाने वाले धर्म की खोज में लग गया। धर्म पर पूर्वी प्रभाव पड़ा। मिस्र की मातृदेवी आइसिस, सेरापिस, ओसिरिस व अनुबिस की महत्ता बढ़ी व इनकी मूर्तियों को मन्दिरों में स्थापित किया जाने लगा। बेबिलोनियन प्रभाव से नक्षत्रीय धर्म का प्रचार हुआ। धर्म में ज्योतिष का प्रवेश हुआ।

इस काल में नक्षत्र विश्व तथा भौतिक विश्व के बीच एकरूपता का सिद्धान्त था। इसी विश्वास ने आगे चलकर नियतिवाद को जन्म दिया। हेलेनिस्टिक धर्म पर जरथुस्ट्र धर्म तथा गूढ़ज्ञानवाद (ग्नोस्टिसिज्म) का प्रभाव पड़ा। इनकी एकेश्वरवादी विचारधारा कालान्तर में ईसाई धर्म की प्रेरक बनी।

हेलेनिस्टिक दर्शन में स्टोइक तथा एपिक्युरियन विचारधारा का प्रभाव था। हेलेनिस्टिक दार्शनिकों में सर्वप्रथम सिनिक मत का वर्णन किया जा सकता है। इनका आविर्भाव चतुर्थ शती ई0पू0 के मध्य हुआ। सिनिक मत के दार्शनिकों में अन्टिस्थेनीज (444–365 ई0पू0), डायोडीनीज (422–323 ई0पू0) तथा क्रेटीज प्रमुख हैं। इस मत के दार्शनिक सच्चरित्र तथा सरल जीवन के पक्षधर एवं पद, प्रतिष्ठा तथा सम्पत्ति आदि भौतिक उपलब्धियों के सख्त विरोधी थे। यह दर्शन मूलतः नीतिशास्त्र पर आधारित था।

हेलेनिस्टिक दर्शन में एपिक्युरियन मत का भी स्थान विशिष्ट है। इस मत का जन्मदाता 'एपिक्युरस' (341 ई0पू0) था। इस पर सुकरात के प्रज्ञा–सुख ;च्मेंनतम वि ॅपेकवउद्ध तथा पाइरो के प्रशस्ति सिद्धान्त ;क्वबजतपदम वि ज्तंदुनपजलद्ध का प्रभाव पड़ा। यह मूलतः सुखवादी था। एपिक्युरस के अनुसार सुखमय जीवनयापन ही जीवन का परम लक्ष्य है। नैतिकता का आधार सुख प्राप्त करना है। एपिक्युरस का सुखवाद मनोवैज्ञानिक सुखवाद था। इसने जनता के हृदय से देवी–देवताओं के भय को दूर करने का प्रयास किया। यह दार्शनिक ज्ञान को सर्वोच्च ज्ञान स्वीकारता था।

हेलेनिस्टिक काल में एक अन्य दर्शन 'स्टोइक' का प्रचलन मिलता है। इसका प्रवर्तक 'जेनो' था। जेनो का मत था कि विश्व मनुष्य की भाँति पूर्णरूपेण भौतिक व स्वाभाविक है। जेनो ईश्वरवादी था। इसके अनुसार ईश्वर ही आदि, मध्य तथा अन्त है। यह नैतिकता हेतु धर्म को आवष्यक मानता था। जेनो के

अनुसार पृथ्वी पर घटित सभी घटनाओं का प्रेरक ईश्वर ही है। स्टीइक मत के अनुसार मनुष्य का विश्व से वही सम्बन्ध है, जो लघु ब्रह्माण्ड का ब्रह्माण्ड से। इस मत के अनुसार मनुष्य ईश्वर अथवा प्रकृति का अंग है। स्टोइक नितान्त भाग्यवादी थे। यह विवाह व पारिवारिक जीवन के महत्व को समझते थे।

उपर्युक्त वर्णित तीनों दर्शनों के साथ इस काल में संशयवाद का भी प्रमाण प्राप्त होता है। इसका प्रवर्तक 'पाइरो' सिकन्दर के साथ भारत आया था। इस पर सॉफिस्ट व सुकरात के संशयात्मक विचारों का प्रभाव था। पाइरो के अनुसार अन्तिम ज्ञान अनिश्चित तथा दुश्प्राप्य है। इन्द्रियजन्य ज्ञान सीमित तथा सापेक्ष है। सबकुछ विचार है, पूर्ण सत्य कुछ भी नहीं। पाइरो ने भारतीय दर्शन के संन्यास सम्बन्धी विचारों को ग्रहण किया। इ मत के अन्य प्रचारक तिमन, अर्केमिलौस, कार्नीडीज, क्लीटोमेफस, ल्युसियन तथा एनीसिडेमस थे।

11.3.3. साहित्य

हेलेनिस्टिक काल में गद्य, पद्य, नाटक, ऐतिहासिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक तथा राजनीतिक ग्रन्थों के प्रमाण मिलते हैं। यह साहित्य दो रूपों यथा– उच्च, सामन्त व धनिक वर्ग व जनसाधारण के लिए लिखे गए। इस साहित्य का उद्देश्य विश्व बन्धुत्व था।

हेलेनिस्टिक काल में 'डिमॉस्थनीज' भाषणकला का प्रकाण्ड विद्वान् था। गद्य लेखन का विकास इसी के द्वारा किया गया। 'अरेट्स' भी इस काल का प्रसिद्ध गद्य लेखक था। गद्य रचनाओं में सर्वाधिक प्रसिद्ध टॉलमी द्वारा लिखित 'सिकन्दर का जीवनवृत्त' है। हेलेनिस्टिक काल में स्वप्नदर्शी साहित्य की सर्जना की गयी। स्वप्नदर्शी साहित्यकारों में जेनो, आइम्बुलस, डिकार्कस व हिक्रेटिकस प्रमुख हैं।

हेलेनिस्टिक कालीन काव्य परम्परा मुख्यतः सिकन्दरिया में विकसित हुई। इसमें ग्राम्य काव्य प्रधान था। काव्य विधा में सीरीन के कैलीमेकस का नाम प्रसिद्ध है। इसकी दो कृतियाँ 'एटिया' तथा 'लॉक ऑव बेरेनिसेस हेयर' प्रसिद्ध हैं। 'फ्यूनरल ओड फॉर आरसिनी' तथा 'हिकेल' की रचना भी की। हिकेल लघु महाकाव्य है। अन्य लेखक 'थियोक्रीटस' था। इसकी प्रसिद्ध कृति 'टू साइराक्यूजियन वीमेन ऑव अलेक्जेण्डरिय' है। इस काल का तीसरा प्रमुख काव्यकार 'कैलिमेकस' का शिष्य 'अपोलोनियस' था। इसने 'आर्गोनाटिका' नामक एक विशाल महाकाव्य की रचना की।

हेलेनिस्टिक काल में सामान्य जनों के लिए गीतिकाव्य की रचना की

गयी। इस वर्ग के लेखकों में 'हेरीडीस', 'टिमन', 'क्रेटस', 'किलिचन्थिस' तथा 'मेनीप्पस' उल्लेखनीय हैं। सिनिक विचारक क्रेटस ने 'बेगर्स वैलेट' में होमर पर व्यंग्य किया है।

इस काल में साहित्य के क्षेत्र में सर्वाधिक सफलता नाटक रचना में प्राप्त हुयी। हेलेनिस्टिक काल में प्रत्येक नगर में नाटकशालाएँ थीं। इफीसस की नाट्यशाला तो अत्यन्त प्रसिद्ध थी। अधिकांश नाटक सुखान्त थे। फिलोमन, मिनेण्डर, डिफीलस, फिलीपिडिस व अपोलोडोरस प्रसिद्ध सुखान्त नाटककार थे। इस काल के प्रमुख नाटक 'द डौर मैन', 'द अर्बीट्रेशन', 'द गर्ल फ्रॉर समोस', 'शियरिंग ऑव ग्लाइसिरा' है।

हेलेनिस्टिक काल में इतिहास लेखन परम्परा का व्यापक प्रचार–प्रसार हुआ। इस काल के इतिहास लेखकों में टॉलमी प्रथम, नियार्कस, आनेटीक्रिटस, फिलार्कस, पॉलिबियस, निकोलस, डियोडोरस, अपोलोडोरस, एण्टीगोनस, हरमीपस व डिकार्सस प्रमुख हैं। यह काल भौगोलिक अध्ययन की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण रहा। मेसेना का डिकार्कस भूगोल का निष्णात पण्डित था। सिकन्दर का जल सेनापति नियार्कस भी भूगोल वेत्ता था। हेलेनिस्टिक कालीन वैज्ञानिक भूगोवेत्ताओं में हिप्पार्कस का नाम भी प्राप्त होता है। इरेटास्थनीज का सम्बन्ध भी इसी काल से था। 'जियोग्राफिका' का लेखक हेलेनिस्टिक काल का प्रमुख भूगोलवेत्ता टॉलमी तृतीय था।

11.3.4. कला

कला के क्षेत्र में भी हेलेनिस्टिक कालीन यूनानी अग्रणी थे। हेलेनिस्टिक कला धर्मनिरपेक्ष थी। कलाकारों ने गैर धार्मिक भवनों, कलाकृतियों व मूर्तियों का निर्माण किया। यह कलाकार भी मिस्र की भाँति विशालता में विश्वास रखते थे। यह कला अलंकरण प्रधान थी। इस कला में यथार्थवाद को अतिमहत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। हेलेनिस्टिक कला उपयोगिता प्रधान थी। कला का निर्माण जीवन के लिए किया गया था। इस काल के कलाकार मानवीय भावनाओं, प्रवृत्तियों एवं संवेदनाओं को व्यक्त करने में पूर्णरूपेण सफल रहे। यह कला विषुद्ध यूनानी न होकर पूर्वी कलात्मक तत्वों से प्रभावित थी।

हेलेनिस्टिक वास्तुकला का प्रमाण हमें दो रूपों– (1) नगर योजना, (2) भवन के रूप में प्राप्त होता है। पुरातात्विक उत्खननों से ज्ञात होता है कि पर्गेसस, प्रीन, मैग्नेशिया, डेलोस, सिकन्दरिया, कोरिंथ, टैरेण्टम, रोड्स आदि नगर वैज्ञानिक योजनानुसार बसाये गए थे। भूमि की बनावट के आधार पर नगर–निर्माण योजना का निर्णय किया जाता था। हेलेनिस्टिक कालीन नगरों में

मिस्र का सिकन्दरिया सर्वाधिक प्रसिद्ध था। इसका प्रारूप्प रोड्स के प्रसिद्ध वास्तुविद डिमॉक्रीज तथा सोस्ट्रेटस ने तैयार किया था। इस नगर में राजकीय संग्रहायल, पुस्तकालय, राजप्रासाद, विश्वविद्यालय, मन्दिर, उद्यान, प्रकाशभवन व टॉलमी का मकबरा अवस्थित थे। सिकन्दरिया का राष्ट्रीय संग्रहालय प्रसिद्ध था। प्रायः नगर में नाट्यशाला, मन्दिर, व्यायामशाला, पुस्तकालय, स्नानगृह व सार्वजनिक भवनों का निर्माण किया जाता था।

हेलेनिस्टिक काल में निर्मित भवन अलंकरण प्रधान थे। इनमें यूनानी व पूर्वी शैलियों का मिश्रण देखने को मिलता है। साधारणतः भवनों की योजना चौकोर बनायी जाती थी। इसे बड़े–बड़े कमरों, स्तम्भों तथा अलंकरणों से सुसज्जित किया जाता था। यहाँ निर्मित मेहराब तथा मेहराबछत्रों का प्रयोग बेबिलोनियन प्रभाव को दर्शाता है। कोरिंथियन शैली हेलेनिस्टिक काल की उपज थी। इस काल में भवनों में प्रेक्षागृह का निर्माण किया जाने लगा, जिसे 'एम्पीथियेटर' कहा जाता था। इस काल में धार्मिक व लौकिक दोनों प्रकार के भवनों का निर्माण किया गया। धार्मिक भवनों में ओलम्पिया का 'जियस मन्दिर' मिलेटस का 'अपोलो मन्दिर' तथा पर्गेमम की 'जियस की वेदी' महत्त्वपूर्ण है।

हेलेनिस्टिक काल में वास्तुकला के समान मूर्तिकला का भी समुचित विकास हुआ। इस काल में भवनों, देवालयों, राजप्रासादों, उद्यान आदि प्रत्येक स्थान पर मूर्तियों का निर्माण किया गया। यह मूर्तियाँ हेलेनिस्टिक काल के सौन्दर्य, प्रेम, यथार्थवाद, धार्मिक विश्वास, भाग्यवाद, स्वच्छन्दता, व्यक्तिवाद तथा मानवतावाद का जीवन्त उदाहरण है। इस काल के नगरों में शासकों तथा सर्वसाधारण की प्रस्तर तथा धातु मूर्तियाँ प्राप्त हुयी हैं। इनमें निम्न विषेष रूप से उल्लेखनीय हैं–

1. **जियस वेदी की रिलीफ मूर्ति**– यह मूर्ति पर्गेमम से प्राप्त हुयी है। यह 2.10 मीटर ऊँची(15फिट) तथा 120 मीटर से अधिक लम्बी चित्रवल्लरी में तक्षित है।

2. **सिकन्दर की शव पेटिका**– यह हेलेनिस्टिक मूर्तिकला का अद्वितीय उदाहरण है। यह कान्स्टैन्टिनोपुल के संग्रहालय में संग्रहित है। सिकंदरिया का ऊंचा प्रकाश गृह तथा संग्रहालय।

3. **सूर्यदेव हेलिओस की कांस्य प्रतिमा**– यह रोड्स में स्थित कांस्य प्रतिमा है। यह 105 फुट ऊँची प्रतिमा है।

4. **मेलोस की एफ्रोडाइट की मूर्ति**– यह मूर्ति लूब्रे संग्रहालय में संरक्षित

है। देवताओं के प्रदर्शन का यह उत्कृष्ट प्रतीक है।

5. **एन्तिओक की भाग्य प्रतिमा**– इसका निर्माण युटीविडीज द्वारा किया गया था। यह वैटिकन से मिली है।

6. **वेटिकन की अपोलो की मूर्ति**

7. **नारक देवी की मूर्ति**

8. **रोड्स में सूर्य की ताम्र प्रतिमा**

9. **उत्कीर्ण भास्कर चित्र**

11.3.5. विज्ञान

हेलेनिस्टिक काल में विज्ञान के क्षेत्र में भी प्रगति हुयी। हेलेनिस्टिक काल में खगोलशास्त्र, गणित, भौतिक, गणित तथा चिकित्साशास्त्र का विषेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है। रसायनशास्त्र, धातुविज्ञान जिसे कीनिया कहा जाता है, तक सीमित था।

हेलेनिस्टिक (खगोलशास्त्र) के अध्ययन की प्रेरणा बेबीलोन से मिली थी। इस काल का सर्वाधिक ख्याति प्राप्त खगोलशास्त्री 'अरिस्टार्कस' था। इसे हेलेनिस्टिक कॉपरनिकस भी कहा जाता है। इसने 'ऑन द साइज्स एण्ड द डिस्टेण्ट्स ऑव द सन एण्ड द मून' नामक ग्रन्थ की रचना की। इसने भूकेन्द्रित सिद्धान्त की आलोचना की। इस युग के अन्य खगोलशास्त्रियों में हिप्पार्कस भी था। इसने नक्षत्रों का अध्ययन किया।

हेलेनिस्टिक काल में (गणित) के सन्दर्भ में भी व्यापक प्रमाण मिलते हैं। इस काल के प्रसिद्ध गणितज्ञों में आटोलाइकस, अरिस्टास, युक्लिड, इरेटोस्थनीज, आर्किमीडीज, अपोलोनियस व हिप्पार्कस थे। इनमें सर्वाधिक लब्ध प्रतिष्ठ युक्लिड था। युक्लिड को ज्यामिति का जन्मदाता माना जाता है। इसने एलीमेण्ट्स, कोनिक्स, डाटा, आप्टिक्स तथा फेनोमिना नामक ग्रन्थों की रचना की। 'अपोलोनियस' ने गणित में परवलय (दीर्घवृत्त तथा अतिपरवलय) की रचना की। 'आर्किमिडीज' इस युग का महानतम गणितज्ञ व विद्वान् था। इसने 'द मेथड्स', 'ए कलेक्शन ऑव लम्नस', 'द सैण्ड रैकनर' तथा 'ऑन फ्लोटिंग बॉडीज' की रचना की। इसने तैरती हुई वस्तु के सिद्धान्त तथा आपेक्षिक घनत्व के सिद्धान्त की खोज की। यह प्राचीन विश्व का सर्वाधिक महान सैद्धान्तिक यंत्रकार था।

इस काल के (भौतिक विज्ञानियों) में आर्किमिडीज, सट्रैटो, टेसिविअस,

हेरोज तथा अरिस्टार्कस प्रमुख हैं। 'टेसिवियस' ने सर्वप्रथम व्यावहारिक भौतिक विज्ञान का परिचय करवाया। (जीव विज्ञान) के लिए थिओफ्रेस्टस तथा स्ट्रैटो प्रसिद्ध था। (स्ट्रैटो) ने 'हिस्ट्री ऑव एनीमल्स' की रचना की। (थिओफ्रेस्टस) ने 'द हिस्ट्री ऑव प्लांट्स' तथा 'द कॉजेज ऑव प्लांट्स' की रचना की।

हेलेनिस्टिक काल में 'चिकित्साशास्त्र' की भी प्रगति हुयी। इस काल के प्रमुख चिकित्साचार्यों में 'हेरोफिलस' प्रमुख था। यह मानतम शरीर विज्ञानी और संभवतः प्रथम मानव शरीर विच्छेदक था। हेरोफिलस इस युग का महानतम शरीर रचना विज्ञानी था। इरैसिस्ट्रेट्स महानतम शरीर क्रिया विज्ञानी था। इस काल के चिकित्साशास्त्रियों में आगस्ट्स का नाम भी उल्लेखनीय है। इसने 'डी अर्टिवस' नामक विश्वकोश की रचना की।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हेलेनिस्टिक सभ्यता विभिन्न सभ्यताओं का सम्मिश्रण थी। इस काल में जीवन के प्रत्येक पक्ष का विकास हुआ। साहित्य, कला, विज्ञान, धर्म, व्यापार–वाणिज्य प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति हुयी।

11.4. बोध प्रश्न

1. हेलेनिस्टिक सभ्यता की मुख्य विषेषताओं की विवेचना कीजिए।

2. हेलेनिक कालीन यूनान पर प्रकाश डालिए।

11.5. सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डॉ0 आर0एन पाण्डेय, प्राचीन विश्व की सभ्यताएँ, इलाहाबाद, 2013.
2. श्री रामगोयल, विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ, वाराणसी, 2011.
3. राजछत्र मित्र, प्राचीन सभ्यताएँ, इलाहाबाद, 2008.
4. बर्न्स, वेस्टर्न सिविलाइजेशन्स, लन्दन,1980
5. यू.एन.राय, विश्व सभ्यता का इतिहास,लोक भारती इलाहाबाद,1992

इकाई–12 रोम की सभ्यता

इकाई की रूपरेखा

12.0. प्रस्तावना

12.1. उद्देश्य

12.2. राजनीतिक स्थिति

12.2.1. राजतंत्र युग

12.2.2. गणतंत्र युग

12.2.3. क्रान्ति का युग

12.2.4. साम्राज्य युग

12.3. संवैधानिक विकास

12.4. जूलियस सीजर व उसका काल

12.5. आगस्टस व उसका काल

12.6. बोध प्रश्न

12.7. सन्दर्भ ग्रन्थ

12.0. प्रस्तावना

रोम की सभ्यता का उद्भव व विकास विश्व की अन्य सभ्यताओं की भाँति नदी के किनारे हुआ। रोम की सभ्यता का उद्भव यूनानी सभ्यता के पतन से पूर्व ही हो चुका था। भूमध्य सागर के पश्चिमी भाग में यह सभ्यता पल्लवित हुयी। रोम को सात पहाड़ियों का नगर भी कहा जाता है। रोम की सभ्यता टाइबर नदी के उत्तरी किनारे पर फली–फूली। रोम के इटली प्रायद्वीप पर अवस्थित होने के पश्चात् भी इस सभ्यता को इटली की सभ्यता न कहकर रोम की सभ्यता कहा जाता है। सम्भवतः जिसका कारण रोम नगर का महत्व माना जा सकता है। रोम दक्षिण यूरोप में स्थित इटली देश का एक छोटा–सा नगर था। इटली के उत्तर में आल्प्स पर्वत, दक्षिण व पश्चिम में भूमध्य सागर तथा पूर्व में एड्रियाटिक समुद्र है। इटली की प्रायद्वीपीय स्थिति ने रोमन सभ्यता के उद्भव व विकास में पूर्ण योगदान दिया। इस क्षेत्र में मानव सभ्यता के पदचिन्हों के साक्ष्य पाषाणकाल से ही मिलने प्रारम्भ हो जाते हैं। यहाँ मानव का

आविर्भाव पुरापाषाण काल से होता है।

इस क्षेत्र में क्रोमैगनान मानव सदृश मानव प्रजातियों से प्रमाण पाषाण काल में प्राप्त होते हैं। नवपाषाण काल में भूमध्य सागरीय प्रजातियों का आगमन इस क्षेत्र में होता है। कांस्य काल में इटली देश इण्डो–यूरोपयिन जाति के लोगों की जनसंख्या में वृद्धि हुयी। इटली के कांस्य कालीन सभ्यता के निवासी अश्व व रथों से भली–भाँति परिचित थे। इन्हें अधिकांशतः इण्डो–यूरोपियन जातियों का पूर्वज माना जाता है। ऐतिहासिक युग में इटली से लैटिन व ओस्कन जाति के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। लैटिन टाइबर नदी के दक्षिण में निवास करती थी व ओस्कन जिसे उम्ब्रो–सेबेलियन नाम से भी जाना जाता है। मध्यवर्ती भाग में निवास करती थीं। सेवियन सेनाइट आदि इसी जाति की उपशाखाएँ थीं। स्थानीय परम्पराओं के अनुसार रोम नगर की स्थापना 753 ई0पू0 में रोमलस नामक व्यक्ति द्वारा की गयी। रोमलस का सम्बन्ध लैटिन जाति से माना जाता है। पुरातत्वविदों के अनुसार रोम प्रारम्भ में एक ग्राम था। लैटिन जाति के लोगों ने सेवियनों के साथ मिलकर लगभग सातवीं शताब्दी ई0पू0 में दस ग्रामों को बसाया, जो कालान्तर में प्रसिद्ध रोम नगर का हिस्सा बने।

13वीं से 6वी शताब्दी ई0पू0 के मध्य इटली में दो अन्य जातियों यथा–एट्रस्कन व यूनानी ने आक्रमण कर लैटिन व सेवियनों द्वारा स्थापित ग्रामों पर अधिकार कर लिया। इस आक्रमण का श्रेय मुख्यतः एट्रस्कन जाति को दिया जाता है। एट्रूस्कन जाति के उद्भव के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। इसी जाति ने लैटिन व सेबियन जातियों द्वारा स्थापित ग्रामों को एक नगर राज्य का रूप प्रदान कर प्रथम राजतंत्र की स्थापना की।

रोम के इतिहास को जानने के लिए हमें साक्ष्य प्रचुरता से प्राप्त होते हैं। साहित्यिक व पुरातात्विक दोनों ही प्रकार के स्रोत हमें रोमन सभ्यता व संस्कृति के सन्दर्भ में बहुतायत में प्राप्त होते हैं। इन स्रोतों के रूप में प्रारम्भिक लेख, रोमन साहित्य, यूनानी साहित्य व लिवी की कृतियों को प्रमुख स्थान प्राप्त है। प्रारम्भिक लेखों में सर्वप्रथम टवेल्स टेबुल्स की गणना की जाती है। यह 12 विभिन्न पट्टिकाओं पर उत्कीण है। जिसमें रोम का शासन सम्बन्धी सिद्धान्त, कानून, सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त होता है। ऐनाल्स पोंटीफिकन में रोम की मुख्य वार्षिक घटनाओं का उल्लेख मिलता है। ऐनाल्स मेक्सीमी की गणना भी प्रारम्भिक लेखों के अन्तर्गत की जाती है। ऐतिहासिक ग्रन्थों में डायोनाइसियस का 'रोमन एण्टीक्वीटीज़' व टाइटस लीवियस का ग्रन्थ प्रमुख है। प्लूटार्क, मार्कस टेरेण्टियम, पॉलिबियस व डिओडोरस की रचनाएँ तथा

अनेक राजनीतिक पत्र रोम के भव्य अतीत को प्रकाशित करते हैं। रोमन इतिहास को परखने के साधनों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साक्ष्य लिवि की कृतियाँ हैं। इसकी कृतियों को इतिहासकार रोमन इतिहास के भण्डार की संज्ञा देते हैं। रोम के पुरातात्विक अवषेष भी इतिहास के पुनर्निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निवर्हन करते हैं।

12.1. उद्देश्य

रोम के इतिहास से तात्पर्य सम्पूर्ण यूरोप व इटली के इतिहास से नहीं अपितु रोम नगर के उत्थान–पतन के रूप में समझने की आवष्यकता है। इस इकाई का उदे्श्य छात्रों को प्राचीन सभ्यताओं में रोम की सभ्यता के महत्व व विश्व को उसकी देन के विषय में अवगत कराना है। रोमन सभ्यता के गौरवषाली अतीत को उद्घाटित करना इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य है। इस इकाई के अन्तर्गत रोम की एक नगर राज्य के रूप में प्रारम्भ यात्रा सभ्यता के रूप में कैसे परिवर्तित हो गई, उस पर प्रकाश डाला जायेगा।

12.2 राजनीतिक स्थिति

प्राचीन रोमन लेखक व परम्पराएँ रोम की स्थापना 753 ई0पू0 में मानते हैं। वहीं आधुनिक इतिहासकारों का मत है कि रोम की स्थापना 1000 ई0पू0 तक हो गयी थी व 753 ई0पू0 में एट्रस्कन जाति के लोगों ने टाइबर नदी के किनारे स्थित रोम पर आक्रमण कर अपना आधिपत्य स्थापित किया। रोम की मूल लैटिन जाति इन आक्रमणों का प्रतिरोध नहीं कर पायी तथा रोम ग्रामों के समूह से एक नगर राज्य के रूप में परिवर्तित हो गया। साहित्यिक व पुरातात्विक साक्ष्यों से आलोक में रोम के राजनीतिक इतिहास को तीन कालों में विभक्त कर अध्ययन किया जा सकता है–

1. राजतंत्र युग (753 ई0पू0–509 ई0पू0)
2. गणतंत्र युग (509 ई0पू0–31 ई0पू0), क्रान्तिकाल (133 ई0पू0–31 ई0पू0)
3. साम्राज्य युग (31 ई0पू0–476 ई0पू0)

12.2.1 राजतंत्र युग/काल

राजतंत्र युग में रोमलस नामक व्यक्ति ने रोम नगर व प्रथम राजतंत्र की स्थापना की। एट्रस्कन जाति ने समस्त रोमन ग्रामों को तोड़कर रोम नगर की स्थापना की। परम्पराओं में एट्रस्कन जाति के तीन शासकों का नाम प्राप्त होता है, जिन्होंने शासन किया जो क्रमशः टर्क्विन प्रथम, सर्वियस टुलियस व टार्किवन

दी प्राउड है। एट्रस्कन शासकों द्वारा राज्य की सुरखा के दृष्टिकोण से चाहरदीवारी का निर्माण किया गया। राज्य में आकर्शक राजकीय व लोक भवनों का निर्माण किया गया। राज्य में आकर्शक राजकीय व लोक भवनों का निर्माण किया गया। वेनसिकल एट्रस्कन शासकों को रोम का वास्तविक संस्थापक मानते हैं। सर्वियस टुलियस ने लैटिन संघ की स्थापना की थी व इस जाति का अन्तिम ज्ञात शासक टार्क्विन/तारकीनियान अत्यन्त अत्याचारी व घमण्डी था, जिसे जनता ने पद्च्युत कर दिया व रोम में 510 ई0पू0 को गणतंत्र की स्थापना की।

राजतंत्र काल में एट्रस्कन शासकों ने प्रशासन को व्यवस्थित रूप से संचालित करने के उद्देश्य से दो संस्थाओं यथा– कमिशिया क्यूरिआटा (लोकसभा) व सेनेट की स्थापना की। कमिशिया क्यूरिआटा में पैट्रिशियन व प्लेवियन दोनों वर्गों के लोग होते थे। पैट्रिशियन से तात्पर्य समाज के उस वर्ग से है, जिसमें रोमन ग्रामों के संस्थापक लैटिन जाति के लोग आते थे व प्लेवियन बाहर से आकर रोम में बसे हुए लोग थे। पैट्रिशियन को हम सरल भाषा में उच्च वर्ग व प्लेवियन को साधारण वर्ग/निम्न वर्ग की संज्ञा दे सकते हैं। कमिशिया क्यूरिआटा के सदस्य वंशानुगत न होकर निर्वाचन प्रणाली के द्वारा नियुक्त होते थे। इसके सदस्यों की संख्या 30 तक प्राप्त होती है।

सेनेट उच्च वर्गों की संस्था थी, जिसमें पैट्रिशियन वर्ग के लोगों को ही स्थान प्राप्त था। इस संस्था में अनुभवी व वृद्ध व्यक्तियों को महत्व दिया जाता था। इसकी सदस्य संख्या 300 तक मानी जाती है, जो प्रारम्भ में 100 थी। राजतंत्र काल में अन्य कालों की अपेक्षा विकास की गति अत्यन्त धीमी थी परन्तु रोम की स्थापना व निर्माण इसी काल की देन है।

एट्रस्कन जाति के शासन का अन्त 509 ई0पू0 में हुआ। राजतंत्र के पतन के लिए अनेक कारक उत्तरदायी थे। इस जाति का अन्तिम शासक अत्यन्त अत्याचारी था। इसके साथ ही साथ यूनानी आक्रमणों के कारण भी राजतंत्र काल पतनोन्मुख हुआ व गणतंत्र की स्थापना हुयी। रोमन सभ्यता के इतिहास में एट्रस्कन जाति व राजतंत्र काल के महत्व को इसी बात से आँका जा सकता है कि यह काल रोम के निर्माण का काल था।

12.2.2. गणतंत्र युग/काल

एट्रस्कन जाति के शासन के अन्त में प्रशासनिक शिथिलता, अत्याचारी व वाह्य आक्रमणों से रोम की सुरक्षा न कर पाने आदि कारणों के फलस्वरूप रोम के निवासियों ने राजतंत्रात्मक शासन प्रणाली का अन्त कर गणतंत्रात्मक शासन

की स्थापना की। इस काल को रोमन सभ्यता के उत्कर्ष का काल माना जाता है। इस काल में रोमन साम्राज्य का सर्वाधिक विस्तार देखने को मिलता है। यह विस्तार आकस्मिक नहीं अपितु शताब्दियों का परिणाम था। इतिहासकार बर्ग ने रोमन साम्राज्य के विस्तार को तीन अवस्थाओं में समझाने का प्रयास किया है– (जूलियस सीजर जैसा महान योद्धा इसी युग की देन है)

1. प्रथम अवस्था (509 ई0पू0–272 ई0पू0)
2. द्वितीय अवस्था (272 ई0पू0–201 ई0पू0)
3. तृतीय अवस्था (201 ई0पू0–146 ई0पू0)

प्रथम अवस्था– रोमन साम्राज्य गणतंत्रात्मक काल में साम्राज्य विस्तार की प्रथम अवस्था में रोम समस्त इटली पर अपना अधिकार स्थापित करता है। रोमन साम्राज्य चारों तरफ विभिन्न शक्तिशाली व विस्तारवादी जातियों से घिरा हुआ था, जिन्होंने समय–समय पर रोमन साम्राज्य पर आक्रमण कर इसके विस्तार को बाधित करने का प्रयास किया। रोम के उत्तर में गाल, एट्रस्कन व सेवाइन व दक्षिण में लैटिन, बाल्शियन व सेम्नाइट जातियों का राज्य था। रोम के सुदूर दक्षिण में यूनानी उपनिवेश व पश्चिम में एक्वियन राज्य था।

390 ई0पू0 में रोम पर उत्तर में रहने वाली गॉल जाति ने आक्रमण किया। गॉल एक बर्बर जाति थी, इन्होंने अधिकांश रोम को तहस–नहस कर दिया। कालान्तर में रोम निवासियों ने इन्हें रोम से बाहर खदेड़कर पुनः रोम का निर्माण किया।

गॉल युद्ध के पश्चात् रोम को लैटिन संघ (एट्रस्कन, गॉल व सेम्नाइट) के आक्रमण का सामना करना पड़ा। यह युद्ध दो वर्षों (338 ई0पू0–336 ई0पू0) तक चला अन्त में लैटिन संघ परास्त हुआ। इस विजय के साथ ही रोम का सम्पूर्ण लैटियम प्रदेश पर अधिकार हो गया। लैटिन संघ को युद्ध में हराने के बाद रोम ने (लैटिन जाति द्वारा शासित भूभाग) पूर्व दिशा में निवास करने वाली सेम्नाइट जाति के विरुद्ध छेड़ दिया। सेम्नाइट एक शक्तिशाली जाति थी। रोम ने जो युद्ध इस जाति के विरुद्ध छेड़ा वो अगले वर्षों (325 ई0पू0–290 ई0पू0) तक चला। अन्त में सेम्नाइट पराजित हुए व रोम से मित्रता कर ली।

गॉल, सेम्नाइट, वाल्शियन आदि जातियों को जीतने के पश्चात् रोम के समक्ष अब मात्र इटली प्रदेश शेष था, जिस पर अधिकांश यूनानी उपनिवेश थे। इटली प्रायद्वीप के दक्षिण में अवस्थित यूनानी उपनिवेश अधिक महत्त्वपूर्ण थे। 272 ई0पू0 तक इन सभी यूनानी उपनिवेशों पर विजय प्राप्त कर रोम के अधीन

कर लिया गया। इस विजय के साथ ही रोम ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की।

द्वितीय अवस्था— रोम के गणतंत्रात्मक शासन की द्वितीय अवस्था का प्रारम्भ 272 ई0पू0 में होता है। रोम ने इटली पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। तत्पश्चात् रोम ने अपना ध्यान कार्थेज की ओर अग्रसर किया। कार्थेज अफ्रीका महाद्वीप के उत्तर में स्थित भूमध्य सागरीय तटवर्ती व्यापारिक नगर था। कार्थेज नगर की नींव फीनीशियन जाति के लोगों ने डाली। कार्थेज देश की अधिकांश जनसंख्या सैन्य प्रवृत्ति की व अत्यन्त समृद्ध थी। रोम कार्थेज की इसी समृद्धी से जलता था। यहाँ अनेक औद्योगिक कारखाने थे। कार्थेज जाति एक अत्यनत शक्तिशाली जाति थी। रोम ने कार्थेज पर अधिकार करने के लिए रोम व कार्थेज के मध्य दो युद्ध हुए। जिन्हें विश्व इतिहास में प्यूनिक युद्ध के नाम से जाना जाता है। प्रथम प्यूनिक युद्ध (264 ई0पू0–240 ई0पू0) व द्वितीय युद्ध (218 ई0पू0–201 ई0पू0) के मध्य लड़ा गया।

प्यूनिक के प्रथम युद्ध के प्रारम्भ में रोम विजय प्राप्त करने की ओर अग्रसर था। अन्ततः विजय रोम की हुयी। परन्तु यह युद्ध अमानवीय घटनाओं का प्रमुख उदाहरण माना जाता है। इस युद्ध के फलस्वरूप सार्डिनिया, सिसली व कार्सिका की महत्त्वपूर्ण बाजारों पर रोम का अधिकार हो गया। प्रथम प्यूनिक युद्ध के पश्चात् रोम व कार्थेज के मध्य सन्धि हुयी थी कि कार्थेज अपना साम्राज्य एब्रो नदी के दक्षिण तक सीमित रखेगा। कार्थेज ने इस सन्धि का पालन न करते हुए स्पेन के सैगटम पर आक्रमण किया। सैंगटम व रोम मित्र थे। अतः रोम व कार्थेज के मध्य द्वितीय प्यूनिक युद्ध अवष्यंभावी हो गया। यह युद्ध 218 ई0पू0 से 201 ई0पू0 के मध्य लड़ा गया। इस युद्ध में कार्थेज का नेतृत्व हैनीबाल नामक व्यक्ति ने की थी। उसे कार्थेज का नेपोलियन भी कहा जाता है। द्वितीय प्यूनिक युद्ध की भी विजयश्री रोम को प्राप्त हुयी। हैनीबाल को मृत्युदण्ड दिया गया। कार्थेज रोम को प्रतिवर्ष 200 टैलेण्ट देने को बाध्य हुआ। इस युद्ध के परिणामस्वरूप रोम का स्पेन पर आधिपत्य हो गया।

रोम के गणतंत्रात्मक शासन के उत्तरार्द्ध में लगभग 215 ई0पू0 के आस–पास रोम व मैसीडन के मध्य प्रथम मैसीडन युद्ध (215 ई0पू0–205 ई0पू0) लड़ा गया। इस युद्ध का मुख्य कारण द्वितीय प्यूनिक युद्ध में मैसीडन द्वारा कार्थेज की सहायता करना था। यह युद्ध अनिर्णायक रहा तथा इसने कालान्तर में अन्य तीन युद्धों का मार्ग प्रशस्त किया।

तृतीय अवस्था (201 ई0पू0–146 ई0पू0)— रोम ने अपने

साम्राज्यवादी नीति को जारी रखते हुए, गणतंत्रात्मक शासन से छः युद्ध लड़े। तृतीय अवस्था के प्रारम्भ में द्वितीय मैसीडन युद्ध का प्रारम्भ हुआ। प्रथम मैसीडन युद्ध अनिर्णायक रहा था अतः रोम ने अपने साम्राज्य विस्तार की नीति को अग्रसर करते हुए मैसीडन पर आक्रमण किया। इस युद्ध में रोम ने एथेंस व रोड्स को मैसीडन के विरुद्ध शामिल कर लिया परन्तु यह युद्ध भी अनिर्णायक रहा। तत्पश्चात् तृतीय मैसीडन युद्ध प्रारम्भ हुआ। लगभग 171 ई0पू0 से मैसीडन ने फिलिप पंचम के पुत्र पर्सियस के नेतृत्व में रोम पर आक्रमण किया। इस आक्रमण का उद्देश्य राम से बदला लेना था। पर्सियस ने एक विशाल सेना लेकर रोम पर आक्रमण किया परन्तु मैसीडन परास्त हुआ व रोम ने मैसीडन के साम्राज्य को चार भागों में विभक्त कर दिया।

149 ई0पू0 में चतुर्थ मैसीडन युद्ध लड़ा गया। इस युद्ध में मैसीडन के सभी राज्यों ने रोम के विरुद्ध आक्रमण करने के उद्देश्य से एक विस्तृत संघ का निर्माण किया। यह युद्ध मैसीडन पर ही भारी पड़ा। रोम को विजय प्राप्त हुयी व 146 ई0पू0 में सम्पूर्ण मैसीडन साम्राज्य पर रोम का अधिकार हो गया।

मैसीडन पर अधिकार करने के बाद रोम ने अपना ध्यान पुनः कार्थेज पर केन्द्रित किया। इसका कारण था रोम को भारी कर देने के पश्चात् भी कार्थेज की समृद्धी में वृद्धि होते जाना। अतः रोम ने 146 ई0पू0 में कार्थेज पर आक्रमण कर उसके नगरों व बाजारों को ध्वस्त कर अपने साम्राज्य में मिला लिया। 146 ई0पू0 में ही रोम ने यूनान के मुख्य नगर कोरिंथ को जीतकर सम्पूर्ण यूनान पर अधिकार कर लिया।

रोम के विरुद्ध जिसने भी मैसीडन की सहायता की रोम ने उसे अपना शत्रु मान लिया। इसी क्रम में सीरिया के राजा अन्तियोक का नाम आता है। अतः रोम व सीरिया के मध्य युद्ध हुआ इस युद्ध में जीत रोम की हुयी और वह सम्पूर्ण एशिया माइनर का अधिपति बन गया।

रोम के गणतंत्रात्मक शासन काल में वह एक नगर राज्य से एक विशाल साम्राज्य में परिवर्तित हुआ। स्पेन, उत्तरी अफ्रीका, कार्सिका, सार्डिनिया, इटली, मिस्र, मैसडिन, यूनान, एशिया माइनर रोमन साम्राज्य का अंग हो गए। रोम के विस्तार ने उसके विभिन्न पक्षों को प्रभावित किया। रोम विभिन्न संस्कृतियों व सभ्यताओं के सम्पर्क में आया, विषेषतः यूनान, जिसने रोम के सांस्कृतिक जीवन में क्रान्ति ला दी। रोमन साम्राज्य विस्तार के फलस्वरूप रोम में अनेक सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक व आर्थिक परिवर्तन देखने को मिलते हैं।

12.2.3. क्रान्ति का युग

प्राचीन रोमन सभ्यता के राजनीतिक इतिहास के तृतीय चरण को क्रान्ति के युग नाम से जाना जाता है। गणतंत्र युग के उत्तरार्द्ध अन्त तक आते–आते रोम का वर्गगत संघर्ष अपने चरम पर पहुँच गया था। यह वर्ग संघर्ष मुख्यतः दो वर्गों इक्वेस्ट्रियन व आप्टिमेट्रस के मध्य था। इक्वेस्ट्रियन वर्ग के पास अतुल धनराशि थी परन्तु अधिकारों की कमी थी, जिससे वह असंतुष्ट थे। इस व्याप्त असंतुष्टि ने जीविका विहीन दलित वर्ग 'अर्बन पॉलिटेरियेट' को जन्म दिया। यह वर्ग अन्य सामाजिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक समस्याओं का कारण बना। रोम का गणतांत्रिक सिद्धान्त भी रोम में उत्पन्न असंतोश को समाप्त करने में असमर्थ रहा। फलस्वरूप एक नवीन युग, जिसे क्रान्ति काल कहते हैं, का जन्म हुआ।

इस क्रान्ति का उद्‌भव कुछ सुधारकों के प्रयत्नों का फल था जिसमें हम सर्वप्रथम टाइबेरियम ग्रेकस की गणना करते हैं। ग्रेकस को 133 ई0पू0 में ट्रिब्यून नियुक्त किया गया था। इसने भूमि सम्बन्धी कानूनों में व्याप्त कुरीतियों के लिए नियम बनाये, जिन्हें 'ग्रेकस लॉ' कहा जाता है। यह किसी भी देश के विकास के लिए भूमि के छोटे–छोटे खण्डों में विभाजन का पक्षधर था।

1. **गेयल्स ग्रेकस**– यह टाबेरियस ग्रेकस का छोटा भाई था, जिसे 123 ई0पू0 में ट्रिब्यून चयनित किया गया था। गेयस अत्यन्त प्रभावषाली वक्ता था, जिसके कारण विद्वान्/इतिहासकार उसे सिसरो से पूर्व रोम का सर्वश्रेष्ठ वक्ता मानते हैं। इसने अनेक व्यापारिक मार्गों व कार्थेज तथा टेरेण्टस में उपनिवेशों की स्थापना की। इसने 'कर' के रूप में प्राप्त अनाज को गरीबों में बंटवा दिया। यह अत्यन्त व्यवहार कुशल था।

2. **गेयस मेरियस**– गेयस ग्रेकस के पश्चात् रोम के क्रान्ति युगीन इतिहास में गेयस मेरियस का नाम आता है। इसे 106 ई0पू0 में रोम का सेनापति चुना गया। सेनापति के पद पर रहते हुए उसने अनेक युद्धों आक्रमणों को विफल किया। इसका चयन 100 ई0पू0 में कौंसिल के रूप में किया गया। कौंसल के पद पर रहते हुए मेरियस ने अनेक राजनीतिक सुधार करने का प्रयास किया। अनेक इतिहासकार गेयस मेरियस की प्रसिद्धि व कुशलता के कारण उसे रोम का तृतीय संस्थापक भी कहते हैं।

3. **लिवियस ड्रूसस**– मेरियस के बाद रोम का अगला सुधारक लिवियस ड्रूसस हुआ। इसे 91 ई0पू0 में अगला ट्रिब्यून चुना गया। लिवियस ज्यूरी प्रथा का प्रबल समर्थक था। अपनी योजनाओं को मूर्त रूप देने के पूर्व ही इसकी मृत्यु हो गयी व रोमन संविधान में सुधार के अन्तिम प्रयास भी

इसके साथ ही समाप्त हो गया।

4. **कार्नियस सुला**– सुला का उद्भव 88 ई0पू0 रोम में डिक्टेटर के रूप में हुआ। इसने युद्ध की शिक्षा–दीक्षा मेरियस ने प्रदान की थी। इसने ट्रिब्यून के अधिकार कम कर दिए। यह रोमन संविधान को संशोधित करने का पूर्ण अधिकार रखता था। इसने सेनेट की शक्ति बढ़ायी व कौंसल की शक्तियों में कमी कर दी। सुला को रोम के प्रसिद्ध विधान निर्माता के रूप में देखा जाता है। उसने रोम को एक संगठित संविधान प्रदान किया।

5. **पाम्पी**– सुला के पश्चात् पाम्पी का उदय हुआ। सुला के काल में पाम्पी एक सेनानायक था। पाम्पी ने स्पेन व अफ्रीका के विद्रोहों को शान्त किया। पाम्पी ने इटली में हुए दासों के विद्रोह को शान्त करने के लिए क्रेसस नामक व्यक्ति को भेजा, जिसने इटली के विद्रोह का दमन किया। पाम्पी ने अनेक आर्थिक सुधार किए, जिससे रोम की आय में वृद्धि हुई। परन्तु सिसरो के उद्भव ने पाम्पी के महत्व में कमी कर दी।

6. **सिसरो**– सिसरो का उदय रोम में 70 ई0पू0 में हुआ। यह पाम्पे व सीज़र का समकालीन था। इसने अपनी पुस्तक 'ओरेशन्स अगेंस्ट गेयस वेरेस' के माध्यम से सिसली के राज्यपाल वेरेस के भ्रष्टाचार को प्रकाशित किया व उसे पद्च्युत करवाया। सिसरो के चार प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी सीज़र, क्रेसस, मेरियस तथा कैटीलाइन थे। यह सभी मिलकर कैटीलाइन को कौंसिल नियुक्त करना चाहते थे पर इस कार्य में इन्हें सफलता नहीं प्राप्त हुयी व सिसरो को 67 ई0पू0 में कौंसिल नियुक्त किया गया। कैटीलाइन को सिसरो की हत्या के शड़यंत्र में मृत्युदण्ड दिया गया।

सिसरो के काल में में प्रथम त्रिगुट के बढ़ते हुए वर्चस्व देखा जा सकता है। इस त्रिगुट का निर्माण सीज़र, क्रेस व पाम्पी ने किया। इस त्रिगुट स्थापना का मूल उद्देश्य सिसरो का समूल नाश था। इस त्रिगुट को स्थायी बनाये रखने हेतु सीज़र ने अपनी पुत्री जुलिया का विवाह पाम्पी से कर दिया, परन्तु यह असफल रहा। क्योंकि इन तीनों के मध्य आपसी संघर्ष की स्थिति बनी हुयी थी। अन्त में सीज़र ने इन दोनों को परास्त कर सेनेट को अपनी ओर कर लिया व रोम का डिक्टेटर निर्वाचित हुआ।

जूलियस सीज़र के शासनकाल का प्रारम्भ 46 ई0पू0 में हुआ और वह रोम का तानाशाह बन गया। उसका शासनकाल मात्र दो वर्ष (46 ई0पू0–44

ई0पू0) का ही रहा। उसने अपने अधिकारों में असीम वृद्धि कर ली व एम्परर की उपाधि धारण की। सेनेट ने उसे 'पेटर पेट्रीआई' उपाधि व पोंटिफेक्स मैक्सीमक्स (धार्मिक मामलों पर नियंत्रण रखने वाला) पद प्रदान किया। उसे रोमन सम्राटों के समान व कहीं–कहीं उनसे अधिक सम्मान प्राप्त था क्योंकि देवमूर्ति के साथ उसकी मूर्तियाँ रखने के भी प्रमाण प्राप्त होते हैं। सीजर के सम्मान में किंवटिलस माह का नाम जुलाई (Julius) रखा गया। सीज़र के काल को अनियंत्रित महत्त्वाकांक्षाओं व कुछ सुधारों का काल कहा जा सकता है, जिसकी आगे विस्तृत चर्चा की जायेगी। 44 ई0पू0 में एक शड़यंत्र के द्वारा सीज़र की हत्या कर दी जाती है।

44 ई0पू0 से 31 ई0पू0 से मध्य के काल को रोमन इतिहास में अव्यवस्था का काल माना जाता है। इसी अव्यवस्था के दौर में रोम में द्वितीय त्रिगुट (ऐंटोनी, लेपिडस व आक्टेवियन) की स्थापना हुयी। इस त्रिगुट का मुख्य उद्देश्य सीज़र की हत्या के शड़यंत्रकारियों कोसियस व ब्रूटस का विनाश तथा रोम पर शासन था। यह त्रिगुट भी स्थायी न रहा व छिन्न–भिन्न हो गया। इन तीनों के अन्त के साथ ही रोम के क्रान्ति काल का अन्त व साम्राज्य काल का प्रारम्भ होता है।

12.2.4 साम्राज्य काल

ऑगस्टस के शासन प्रारम्भ के साथ ही 31 ई0पू0 में रोम के साम्राज्य काल का प्रारम्भ होता है। आक्टेवियन को ही ऑगस्टस कहा जाता था। ऑगस्टस काल रोम की शान्ति, ऐश्वर्य व समृद्धि के लिए जाना जाता है। इसके शासनकाल में रोम का सांस्कृतिक व राजनीतिक विकास अत्यन्त तीव्रता से हुआ।

ऑगस्टस एक कुशल व दूरदर्शी व्यक्ति था। इसीलिए उसने तानाशाही के स्थान पर सभी को साथ लेकर चलने की प्रथा का अधिक पालन किया। ऑगस्टस की एक उपाधि एम्परर थी। सेनेट उसे सेबेस्टोस कहती थी। ऑगस्टस की विजय के विस्तार से वर्णन इसी अध्याय में आगे किया जायेगा, जिससे उसके व्यक्तित्व व कृतित्व पर पूर्ण प्रकाश पड़ेगा। ऑगस्टस ने रोमन साम्राज्य में अनेक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व सैन्य सुधार किए। इसका काल बहुमुखी विकास का काल था। ऑगस्टस की मृत्यु 14 ई0पू0 में हुयी। इसके पश्चात् से राजनीतिक काल के रोमन इतिहास में उत्तर ऑगस्टस काल कहा जाता है। 14 ई0पू0 से 180 ई0पू0 का काल रोम के इतिहास का सर्वाधिक समृद्ध व विकसित काल था, जिसे तीन भागों में विभक्त किया जा

सकता है–

1. जूलिओ क्लाडियन काल (14 ई0पू0–68 ई0पू0)
2. फ्लेवियन काल (68 ई0पू0–96 ई0पू0)
3. ऐंटोनाइन काल (96 ई0पू0–180 ई0पू0)

जूलिओ क्लाडियन काल में क्रमशः टाबेरियस, गेयस सीजर, क्लाडियस नीरो ने शासन किया। प्रारम्भिक तीन शासकों के काल में रोम विकास के पथ पर अग्रसर रहा। टाइबेरियस के शासनकाल में सीमांत क्षेत्रों को सुदृढ़ किया गया तथा आंतरिक विद्राहों का दमन कर शान्ति स्थापित की गयी। गेयस सीजर को कालिगुला भी कहा जाता है। यह अत्यन्त निर्दयी व दम्भी शासक था। शड़यंत्र द्वारा इसकी हत्या कर दी गयी। क्लाडियस (41 ई0पू0–54 ई0पू0) ने नवीन राजमार्गों व बन्दरगाहों को स्थापित किया। इसने दक्षिणी इंग्लैण्ड व थीब्ज पर विजय प्राप्त की। इसके पश्चात् डोमिशियस, जिसे विश्व इतिहास में नीरो के नाम से जाना जाता है, शासक बना। नीरो अत्यन्त भ्रष्ट, विलासी, क्रूर व असंतुलित मानसिका का व्यक्ति था, जिसके अनेक कृत्यों, मुख्यतः ईसाईयों की वहाँ इतिहास में निन्दा की जाती है। 68 ई0पू0 में नीरो ने प्रतिकूल परिस्थितियों को सुलझाने में स्वय को अक्षम पाते हुए आत्महत्या कर ली थी।

फ्लेबियन वंश/काल का संस्थापक वेस्पेसियन था, जिसने 68 ई0 से 79 ई0 तक शासन किया। इसवने अपने शासनकाल में आर्थिक व्यवस्था को समुन्नत करने में प्रबलता प्रदान की। इसके काल में यहुदी व रोम के मध्य युद्ध हुआ। वेस्पेनियन के पश्चात् क्रमशः टिस (79 ई0–81 ई0) व डोमिशियन (81 ई0–96 ई0) ने शासन किया। टिटस का शासनकाल अत्यन्त अल्पकालिक था। डोमिशियन ने इंग्लैण्ड विजय के कार्य को पूर्ण किया। यह रुढ़िवादी विचारधारा व प्राचीन परम्पराओं का प्रबल समर्थक था। सेनेट सदस्य डोमिशियन को 'डोमिनस एट डिसस' (सम्राट देव) कहते थे। इस काल तक आते–आते शड़ंयत्र के द्वारा डोमिशियन की हत्या कर दी गयी व इसी के साथ फ्लेबियन काल का अन्त हो गया।

फ्लेबियन काल के बाद ऐंटोनाइन काल प्रभाव में आया। यह काल 96 ई0 से प्रारम्भ कर 180 ई0 तक रहा। इसके पाँच शासकों क्रमशः नर्वा, ट्रेजन, हैड्रियन, एंटीनियन व मार्क्स ऑरोलियस ने शासन किया। यहा सभी योग्य शासक मानते जाते हैं। मार्क्स ऑरोलियस के पश्चात् रोम के गौरवषाली इतिहास का अन्त हुआ।

180 ई0 से 285 ई0 के काल को रोमन इतिहास में सैनिक काल के नाम से जाना जाता है। इसका प्रथम शासक कमोडियस था। इसके पश्चात् क्रमशः सेप्टियस ैरेकेल्ला व अलेक्जेण्डर सेवेरस ने शासन किया। 235 ई0 से 285 ई0 के काल को सैन्य अराजकता का काल कहा जाता है। इस उपकाल का प्रथम शासक मैक्सिमस नामक क्रूर व्यक्ति था। यह उपकाल रक्तपात, युद्धों व हत्याओं से भरा पड़ा था। इस काल में अनेक पारसिक आक्रमण हुए, जिसके फलस्वरूप आर्मेनिया रोम साम्राज्य के हाथों से निकल गया। मैक्सियस के बाद क्रमशः क्लाडियस गोथयस ऑरोलियन ने शासन किया। इस काल का अन्तिम शासक डिओक्लिशियन था।

12.2.4. उत्तरकालीन रोम साम्राज्य (284 ई0–476 ई0)–

यह रोमन साम्राज्य के इतिहास का अन्तिम काल था। उत्तरकालीन रोम साम्राज्य अपने दो महान शासकों डिओक्लिशियन व कांस्टेंटाइन के शासन के लिए जाना जाता है। इस काल में आंतरिक अराजकता, अव्यवस्था व वाह्य आक्रमणों को समाप्त कर रोमन साम्राज्य को एक बार पुनर्संगठित करने का प्रयास किया गया। इस काल का प्रथम शासक डिओक्लिशियन था, जिसने 284 ई0 से 305 ई0 के मध्य शासन किया। यह विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति था। इसने पुनः वैधानिक शासन के स्थान पर स्वेच्छाचारी/तानाशाही शासन को महत्व दिया। इसने सम्पूर्ण रोमन साम्राज्य को चार भागों में विभक्त किया। उसने अनेक सैन्य सुधार किए। डिओक्लिशियन ने एक चल सेवना 'कमिटाटेंसेज' नियुक्त की तथा नवीन राजधानी 'निकोमिडिया' में स्थाति की। उसने मुद्रानीति में अनेक सुधार किए तथा आयात–निर्यात पर अनेक नियंत्रण स्थापित किए। डिओक्लिशियन ने विशाल भूमि खण्ड के स्वामियों से एक विषेषकर 'कौलैशियो इलेकॉलिस' देने का नियम बनाया। उसके सभी सुधारों के मूल में राज्य हित था। डिओक्लिशियन ने बिमारी की अवस्था में अवकाश ग्रहण किया व 316 ई0 में उसकी मृत्यु हो गयी।

डिओक्लिशियन की मृत्यु के पश्चात् रोम में पुनः उत्तराधिकार युद्ध प्रारम्भ हुआ व अन्त में कांस्टैंटाइन रोम का अगला सम्राट् बना। इतिहासकार कांस्टैक्टाइन को महान शासक व महापुरुष की श्रेणी में रखते हैं। इसने भी डिओक्लिशियन की भाँति निरंकुश शासन का समर्थन किया। इसने सिनेट को समाप्त कर दिया व सभी महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्ति का अधिकार सिर्फ रोमन सम्राट् को प्रदान किया। वह कर्मचारियों को अपनी इच्छानुसार नियुक्त व पद्च्युत करता था। कांस्टेंटाइन ईसाई धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए भी जाना जाता है। उसने ईसाई उपाधियों व प्रतीकों का प्रयोग किया। ईसाई धर्म को

राजकीय धर्म की संज्ञा प्रदान की। इसने अनेक आर्थिक व सैन्य सुधार किए। कांस्टेंटिनोपल की स्थापना इसकी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि मानी जाती है। इसे ईसाई रोम भी कहा जाता था। इस नगर की स्थापना प्राचीन बाइजेंटियम के स्थान पर 324 ई0 में की गयी। इसने रोम की राजधानी को कांस्टोंटेनोपल में स्थानांतरित किया। यह नगर प्राकृतिक साधन सम्पन्न व वाह्य आक्रमणों से सुरक्षित था। कहा जाता है कि यूनानी मन्दिरों से संगमरमर निकाल कर कांस्टोंटेनोपल के भवनों को सजाया गया। कांस्टोंटेनोपल के विषय में ट्रेर का कथन कि 'Prospect of beauty wealth and safety united in single spot.' सत्य प्रतीत होता है।

कांस्टेंटाइन की गणना विश्व के सर्वाधिक विवादास्पद सम्राटों में की जाती है। ईसाई मत के समर्थक कांस्टेंटाइन को सर्वगुणसम्पन्न व विरोधी मत के समर्थक निरंकुश व तानाशाह शासक मानते हैं। यदि हम कांस्टेंटाइन की राजनीतिक व सांस्कृतिक उपलब्धियों का मूल्यांकन करें तो हम पाते हैं कि वो प्रतिभा सम्पन्न दूरदर्शी व कूटनीतिज्ञ शासक था। 337 ई0 में इसका शासन समाप्त हुआ। रोमलस ऑगस्टलस इस काल का अन्तिम शासक था, जिसने 476 ई0 तक शासन किया। तत्पश्चात् समृद्ध रोमन साम्राज्य पतन की ओर अग्रसर हो चला।

जैसा कि ज्ञात है किसी भी साम्राज्य के उत्थान के साथ ही उसका पतन भी सुनिश्चित होता है व पतन के एक से अधिक कारण होते हैं। रोमन साम्राज्य भी 337 ई0 में अपने चरम पर था तत्पश्चात् वह धीरे–धीरे पतनोन्मुख हुआ। रोम के पतन के पीछे अनेक कारण उत्तरदायी थे–

1. साम्राज्य की विशालता
2. साम्राज्यवादिता
3. निरंकुशता
4. उत्तराधिकार के सुनिश्चित नियम का अभाव
5. अयोग्य नरेश
6. आंतरिक विद्रोह
7. ईसाई धर्म का प्रभाव
8. वाह्य आक्रमण

12.3. संवैधानिक विकास–

रोम की सभ्यता अपने संविधान व कानूनों के लिए प्रसिद्ध है। रोम के संवैधानिक विकास को इसके राजनीतिक कालों के अन्तर्गत समझना लाभप्रद होगा। राजतंत्र युगीन रोम सत्ता व स्थायित्व का समर्थक था। इसकी शासन व्यवस्था बहुत कुछ होमरकालीन रोम से साम्यता रखती है। राजतंत्र काल में रोमन शासक प्रधान न्यायाधीश व सेनापति भी होता था। जिसकी सहायता के लिए पोंटिफेकस मेक्ज़िमस नामक प्रधान पुजारी नियुक्त किया जाता था। राजतंत्र काल की प्रमुख संवैधानिक संस्था कोमीटिया क्यूरियाटा थी। यह संस्था रोमन सम्राट् से मनोनयन का कार्य करती थी। राजतंत्र काल की द्वितीय महत्त्वपूर्ण संस्था सीनेट थी। इसमें लगभग 300 सदस्य होते थे। यह एक प्रकार की परामर्शदात्री संस्था थी। राजा की मृत्योपरान्त व नए शासक की नियुक्ति तक सत्ता सीनेट के द्वारा संचालित होने का नियम था। रोमन प्रशासन को सामान्यजनों की भागीदारी हेतु 'कोमीटिया सेंचूरियाटा' नामक संस्था का गठन किया गया था। इनमें प्लेवियन व पैट्रीशियन दोनों वर्ग सम्मिलित थे। कालान्तर में यह राज्य की सबसे बड़ी संख्या के रूप में परिवर्तित हुयी। इसके सदस्यों की संख्या 193 थी।

रोम का सर्वाधिक संवैधानिक विकास गणतंत्र काल में हुआ। गणतंत्र काल में 'जस सिविलें' (नागरिक कानून) का विकास हुआ। जूस जेंटियम (राष्ट्रों का कानून) रोमन व विदेशियों दोनों पर लागू होने वाला कानून था। रोमन कानून लिखित (जस स्क्रिप्टस) व अलिखित (जूस नॉन स्क्रिप्टस) दोनों रूपों में प्राप्त होता है। गणतंत्र काल में कौंसिल नामक अधिकारी का उल्लेख मिलता है।

12.4. जूलियस सीज़र कार्य व उसका काल

लगभग 62 ई0पू0 में पाम्पी नामक व्यक्ति ने सीजर तथा क्रेसस के साथ मिलकर रोमन शासन की प्राप्ति के लिए एक गुट बनाया। 53 ई0पू0 में क्रेसस की मृत्यु हो गयी तथा पाम्पी व सीजर में सत्ता प्राप्ति के लिए संघर्ष हुआ। अन्ततः इसमें सीजर विजयी हुआ और सिनेट द्वारा रोम का डिक्टेटर निर्वाचित किया गया।

सीजर ने विश्व के निरंकुश सम्राटों की भाँति उच्च उपाधियों को धारण करना एवं अपने अधिकारों को बढ़ाना प्रारम्भ किया। इंपरेटर की उपाधि धारण करने के कारण उसे सर्वोच्च सैनिक अधिकार प्राप्त हो गये। अपने नवीन अधिकारों के कारण वह युद्ध एवं सन्धि का निर्णय कर सकता था तथा संविधान

में सुधार कर सकता था। उसे सेनेट ने पेटर पेट्रीआई (राष्ट्र का पिता) घोषित किया। उसे पोंटिफेक्स मैक्सीमस का पद प्रदान किया गया। इससे धार्मिक मामलों में उसका नियंत्रण स्थापित हो गया। रोम के सम्राटों की प्रतिमाओं में उसकी प्रतिमा स्थापित की गयी, उसकी मूर्ति देवालयों में भी स्थापित की जाने लगीं। रोमन मुद्राओं पर उसका अंकन मिलता है। उसके सम्मान में क्विंटिलस महीने का नाम जुलाई (जूलियस) रखा गया।

सीजर के सुधार–

जूलियस सीजर के सुधारों का उद्देश्य अपने निरंकुश शासन के अन्तर्गत साम्राज्य को सुसंगठित कर सुव्यवस्थित रूप प्रदान करना था। इस सन्दर्भ में उसने अनेक सुधार किए जो निम्न रूप में द्रष्टव्य हैं–

राजनोतिक सुधार– सीजर ने राजनीतिक क्षेत्र की भ्रष्टता को दूर करने के लिए साधारण नागरिकों तथा विजित प्रांतों के लोगों को भी सेनेट की सदस्यता प्रदान की। इससे सेनेट गणतंत्र शासन के स्थान पर साम्राज्यवादी शासन की समर्थक बन गयी। उच्च पदों पर नियुक्ति सम्राट् द्वारा होती थी। नागरिक प्रशासन का भार महापालिकाओं को दिया गया। शासन की सुदृढ़ता के लिए उसने कानूनों को लेखबद्ध करवाया। उसने रोम का सुन्दर नगर बनाने की योजना पर कार्य प्रारम्भ किया। बेगारी की समस्या को दूर करने के लिए उसने कार्य किया। भूमध्य सागरीय देशों में उपनिवेशों की स्थापना की। वाणिज्य केन्द्र खोले। एशिया की जनता के करों को कम कर दिया।

सामाजिक सुधार– सीजर ने कृषि को बढ़ावा दिया और बेरोजगार मनुष्यों को कार्य पर लगाया। अधिक ब्याज पर ऋण लेने की प्रथा समाप्त करवा दी। विलासिता पर पाबन्दी लगाने का प्रयास किया। विजित प्रदेशों की जनता के साथ सद्व्यवहार किया तथा कहीं भी युद्ध में वहाँ की सामाजिक व सांस्कृतिक धरोहरों को नष्ट नहीं करता था।

शासन सुधार– वह एक उच्चकोटि का शासक था। उसने गणतंत्र व्यवस्था में परिवर्तन करके निरंकुश शासन की स्थापना की परन्तु सेनेट के ऊपरी ढाँचे में कोई परिवर्तन नहीं किया। सभी कार्य ऊपर से देखने पर सेनेट द्वारा परिचालित लगते थे लेकिन सभी कर्मचारी सीजर के प्रति उत्तरदायी थे। उन पर वह कठोर नियंत्रण रखता था।

जूलियस सीजर ने जूलियन कैलेण्डर का निर्माण किया। इसके अनुसार साल में 365 दिन माने गये। प्रत्येक चौथे वर्ष 1 दिन और बढ़ाकर चतुर्थ (1/4

दिन) की कमी पूर्ण की जाती थी। यह कैलेण्डर काफी लोकप्रिय हुआ। कालान्तर में इसमें पोप ग्रेगरी तेरहवें ने कुछ सुधार किया। रुस तथा पूर्वी यूरोप में यह 1920 ई0 तक प्रचलित था। 44 ई0पू0 में इसके अधिनायकवादी शासन के विरोधियों में जिसमें उसका मित्र ब्रूटस भी था, ने उसकी हत्या कर दी।

सीजर विश्व इतिहास में असाधारण प्रतिभा वाला व्यक्ति माना जाता है। वह एक राजनीतिक शासक था। निरंकुश शासक होने पर भी उसने गणतंत्र के ऊपरी ढाँचे को सुरक्षित रखा। वह एक दयालु व्यक्ति था जिसके कारण वह अपने विरोधियों को प्रायः क्षमा कर देता था। उसका विरोधी (पाम्पी) भी उसकी क्षमाशीलता की प्रशंसा करता था। रोमन साम्राज्य का सर्वांगीण विकास उसका ध्येय था या उसके प्रभाव के कारण रोमन सम्राटों ने सीजर उपाधियाँ धारण कीं।

सीजर की मृत्यु के पश्चात् रोम में गृहकलह ने गणतंत्रात्मक स्वरूप को नष्ट कर दिया, यही कारण है कि कुछ विद्वान् सीजर को ही गणतंत्रकाल का अन्तिम प्रतिनिधि मानते थे।

सीजर की मृत्यु के उपरान्त एंटनी के साथ संघर्ष में (ऑक्टेवियन) नामक नायक जो कि सीजर का भतीजा व दत्तक पुत्र था, का अवतरण रोम के इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना थी। इसके शासन से रोम में आगस्टस काल का सूत्रपात होता है, आगस्टस, आक्टेवियन की उपाधि थी।

12.5. आगस्टस व उसका काल

31 ई0 पू0 आगस्टस के शासनकाल से रोम में साम्राज्यवादी व्यवस्था का जन्म हुआ। गद्दी पर बैठते ही सबसे पहले उसने रोम की अराजक स्थिति को दूर करने का प्रयास किया। वह निरंकुश होने के साथ ही दूरदर्शी था। अतः उसने अप्रत्यक्ष रूप से एकतंत्रात्मक शासन की स्थापना की। गणतंत्र की रक्षा के नाम पर उसने समस्त शक्तियाँ ग्रहण की। 27 ई0पू0 से 23 ई0पू0 तक वह सेनेट के द्वारा लगातार प्रथम कौंसिल चुना गया। इस अधिकार से उसे सेना, बाह्य नीति व आंतरिक मामलों में सर्वोच्चता प्राप्त हो गयी। उसने भी इंपरेटर की उपाधि धारण की। सेनेट के सदस्यों ने उसे सेबैस्टोस की उपाधि से विभूशित किया। 23 ई0पू0 में सेनेट ने उसे ट्रिव्यूनिशियन पावर्स प्रदान की जिनके अनुसार वह सेनेट की बैठक को बुला सकता था व युद्ध–सन्धि का निर्णय भी स्वयं ले सकता था। मन्दिरों में उसकी मूर्तियाँ स्थापित की गईं। अधिनायकवादी होते हुए भी उसने कभी डिक्टेटर का पद नहीं धारण किया। उसने गणतंत्रात्मक ढाँचे में निरंकुश शासक की भाँति (31 ई0पू0 से 14 ई0पू0)

तक राज्य किया। उसके शासनकाल में रोम की इतनी उन्नति हुई कि उसके काल को एक युग की संज्ञा दी जाती है। काल्डवेल लिखता है– "Because of his achievements his generation has been called the Age of Augustus.'

आगस्टस ने अपने शासनकाल में रोम में बहुत अधिक सुधार किए। इन सुधारों को हम निम्न प्रकार से समझ सकते हैं–

राजनीतिक सुधार– आगस्टस ने अपनी राजधानी रोम में अनेक स्थापत्यगत सुधार किए। वह रोम को संसार के सबसे सुन्दर नगर के रूप में देखना चाहता था। इसलिए उसने निम्न कार्य किए–

1. रोम को 265 लघु मण्डलों में विभाजित कर दिया और हर मण्डल के शासन के लिए स्थानीय मजिस्ट्रेटों के निर्वाचन की प्रथा प्रारम्भ की।
2. शान्ति व्यवस्था के लिए पुलिस की संख्या बढ़ा दी।
3. आग से बचाव के लिए उसने एक विभाग खोला जिसमें 600 व्यक्ति कार्य करते थे।
4. टाइबर नदी पर बाँध बनवाया जिससे रोम की रक्षा हो सके।
5. नगर में जल–वितरण और क्रय–विक्रय की उचित व्यवस्था की। क्रय–विक्रय और नाप–तौल में होने वाली बेईमानियों को रोकने के लिए उसने राजकीय पदाधिकारियों की नियुक्ति की।
6. 22 ई0पू0 में जब रोम में दुर्भिक्ष पड़ा तो उसने नगर के विभिन्न भागों में मुफ्त अनाज बँटवाया।

आगस्टस ने न्याय व्यवस्था को सरल बनाने का प्रयास किया। कठोर दण्ड की व्यवस्था की गयी। आगस्टस ने सेनेट के सदस्यों की नवीन सूची बनवायी। उसकी अध्यक्षता में 15 प्रतिनिधि सदस्यों की एक समिति का निर्माण हुआ जिसमें पारित होने पर ही कोई प्रस्ताव सेनेट के सम्मुख रखा जाता था। उसने नागरिकता के प्रसार को कम किया। उसने निम्नवर्गीय लोगों और विदेशियों की नागरिकता को छीन लिया। उसने प्रांतों के शासन को भी सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया। प्रांतों को दो भागों में विभाजित कर दिया गया–

(क) सेनेटोरियल प्रॉविंसेज– जो सेनेट द्वारा शासित होते थे। इनमें वे ही प्रांत थे जो पहले से रोम राज्य के अंग थे, जैसे– सिसली, वेटिका, गॉल, मेसीडोनिया, एशिया माइनर, साइप्रस, क्रीट, उत्तर अफ्रीका आदि। इनका शासन प्री–मजिस्ट्रेट देखता था।

(ख) इम्पीरियल प्रॉविंसेस– इम्पीरियल प्रॉविंसेस के शासन के लिए राज्यपाल की नियुक्ति आगस्टस स्वयं करता था, इन्हें लिगैटी कहा जाता था। इसमें वे प्रांत थे जिन्हें विजित किया गया था। प्रांतों ने स्थायी सेना, गवर्नरों का निश्चित वेतन क्रम बनाया जिससे आगस्टस के राज्य में शान्ति सुव्यवस्था हो गयी।

सामाजिक सुधार– आगस्टस कालीन समाज की दशा बड़ी शोचनीय थी। समाज में भ्रष्टाचार और व्यभिचार का बोलबाला था। इन्हें दूर करने के लिए कानून बनाये गये जिन्हें जूलियन धारा के नाम से जाना जाता है–

1. अविवाहित पुरुषों पर 'कर' की व्यवस्था की गई। विवाह की आयु निश्चित की गयी।
2. अविवाहित व्यक्तियों को पिता की सम्पत्ति में अधिकार नहीं था।
3. जिन व्यक्तियों के तीन संतानें थीं उन्हें राज्य अनेक सुविधाएँ देता था।
4. स्त्रियों से दुर्व्यवहार पर कठोर दण्ड की व्यवस्था की गयी।

आर्थिक सुधार– आगस्टस ने आर्थिक दशा को सुधारने के लिए दो प्रकार के 'कर' लगाये– भूमि कर, वाणिज्य कर। प्रथम कर अनाज और धन के रूप में तथा द्वितीय कर आय के अनुसार निश्चित किया गया था।

उसने खानों, जंगलों और चारागाहों पर कर लगाये। सम्पत्ति का विवरण तैयार किया गया। बिकने वाले मालों पर चुंगी ली जाती थी। धातु की खानों, नमक उद्योग और मछली व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। उसने प्लेबियन वर्ग की दशा सुधारने के लिए 150 करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ खर्च की। सार्वजनिक निर्माण कार्य करवाये।

सैनिक सुधार– आगस्टस ने स्थायी सेना की स्थापना की। सेना की तीन कोटियाँ बनायी गईं। रोम के नागरिकों को लिजनरी फोर्स में तथा उनकी कार्यावधि 22 वर्ष की निश्चित की गई। विजित देशों के सैनिकों को आक्जिलियरी फोर्स में रखा गया, ये रोम के नागरिक न थे, 25 वर्ष सेना में कार्य करने के बाद ये रोमन नागरिक माने जाते थे। प्रायटोरियन गार्ड ये सम्राट् की रक्षा का कार्य करते थे।

सेना के प्रमुख पदाधिकारी को लिंगैटी कहते थे। सैनिकों का वेतन, नौकरी भर्ती के नियम बनाये गये। आगस्टस ने सीमा प्रांतों में सेनाएँ तैनात कीं। अफ्रीका और स्पेन की ओर कुशल सैनिक रखे। जहाजी बेड़े का भी

निर्माण करवाया था।

अन्य निर्माण कार्य– उसने रोम में अनेक नहरों, पुलों, मन्दिरों का निर्माण करवाया। उसने फायर ब्रिग्रेड की स्थापना की।

जनता के हित के लिए अनेक कार्य किए। उसने अरब देश को जीतने का असफल प्रयास किया। उसने जर्मनी पर भी प्रारम्भ में कब्जा कर लिया था किन्तु शीघ्र उन्होंने स्वतंत्रता प्राप्त कर ली। उसने अपने विशाल साम्राज्य जो कि उत्तर में इंग्लिश चैनल, राइन और डेन्यूब नदी तक, दक्षिण में सहारा के रेगिस्तान तक पूर्व में काला सागर तथा फरात नदी तक और पश्चिम में अटलांटिक महासागर तक फैला हुआ था, को सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया।

प्रांतों तथा नगरों में अधिकारियों की नियुक्ति के लिए इसने 'इम्पीरियल सिविल सर्विस' की शुरूआत की। इसमें अधिकारियों को प्रशिक्षण दिया जाता था। इसके तीन अधिकारी की सूचना मिलती है– (1) कौंसलर सीनेटर : सिपाहियों की तीन शहरी टुकड़ी की सहायता से नगर की देखरेख। (2) प्रीफेक्टस एनोनल : राशन आपूर्ति। (3) प्रीफेक्टस प्रायटोरियस : इम्पीरियल गार्ड का नव दस्ता।

आगस्टस काल में मन्दिरों का भी प्रचुर मात्रा में निर्माण हुआ। प्राचीन मन्दिरों का जीर्णोद्धार भी किया गया।

रोम का सर्वाधिक संवैधानिक विकास गणतंत्रात्मक शासनकाल में हुआ। इस काल में अनेक नवीन पदों का सृजन हुआ, जिनके कार्य पूर्व निर्धारित हुआ करते थे। कौंसिल के अधीन कभी–कभी प्री–कौंसिल की नियुक्ति की नियुक्ति के प्रमाण मिलते हैं। यह कौंसिल के अधीन कार्य करता था। संकटापन्न अवस्था में डिक्टेटर की नियुक्ति का प्रावधान मिलता है। गणतंत्र काल में डिक्टेटर की कार्यविधि मात्र 6 माह की थी परन्तु साम्राज्य काल में रोमन सम्राट ही डिक्टेटर की भाँति कार्य करने लगे। कलेक्टर नामक अधिकारी फौजदारी मुद्दों पर कौंसिल की सहायता हेतु नियुक्त किया जाता था। इनकी संख्या 08 तक प्राप्त होती है। कलेक्टर के पश्चात् ट्रिब्यून का पद था, रोमन साम्राज्य में इनकी संख्या 10 थी। ट्रिब्यून का कार्य प्रशासनिक संस्थाओं पर नियंत्रण स्थापित करना था। इसके पास अनेक अधिकार थे। एडाइल का कार्य मुख्य भवनों की देख–रेख व जनता के आमोद–प्रमोद का ध्यान रखना था। प्रायटर नामक अधिकारी दीवानी और फौजदारी मुकदमों का निर्णय करता था। सेंसर नामक अधिकारी का कार्य जनगणना करना था। गणतंत्र कालीन सेनेट एक प्रतिनिधि सभा थी, जिसमें 300 सदस्य थे। पेट्रीशियन वर्ग के लोग ही सेनेट के सदस्य

होते थे। सेनेट के सदस्य कौंसिल को मंत्रणा प्रदान करने का कार्य करते थे। रोम की सेनेट अपनी कार्य प्रणाली के लिए प्रसिद्ध थी।

विश्व में रोम के गणतंत्र शासन में कमिशिया ट्रिब्यूटा सबसे बड़ी प्रजातंत्रात्मक संस्था थी। यह कानूनों का निर्माण कर सकती थी। इसे ट्रिब्यून व कलेक्टर की नियुक्ति का भी अधिकार प्राप्त था। यह संस्था रोम में प्रत्येक नागरिक के लिए थी।

रोम के क्रांतिकाल में आगस्टस द्वारा कुछ नवीन कानूनों का निर्माण किया गया। आगस्टस ने व्यभिचार, भ्रष्टाचार, विलासिता, घूसखोरी आदि के निवारण के लिए 'जूलियन ला' बनाए। इसके काल में क्विन्टस म्यूसियस स्काइबोला ने अनेक नियम व कान निर्धारित किए। इसे रोमन साम्राज्य का संस्थापक भी माना जाता है। इसमें रोम के प्रत्येक नागरिक को संविधान व कानूनों के महत्व व पालन का महत्व बताने का बहुत प्रयास किया। रोम ने ही समस्त विश्व को कानून व उनके महत्व से अवगत करवाया। रोम के कानून पर आधारित पुस्तक 'जस्टिनियन कोड' को आधार बनाकर कालान्तर में अनेक पुस्तकों का निर्माण किया गया। 'लॉज ऑफ वॉर एण्ड पीस' ग्रन्थ विश्व को अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों के विषय में बताती है। इस आधार पर हम यह कह सकते हैं कि विश्व संविधान व कानून की अवधारणा के लिए सदैव रोम का ऋणी रहेगा।

12 बोध प्रश्न

1. रोम के विकास में ऑगस्ट्स के योगदानों का मूल्यांकन कीजिए।
2. रोमन साम्राज्य के विस्तार में जूलियस सीजर व उसके सुधारों पर प्रकाश डालिए।

12 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. उदय नारायण राय, विश्व सभ्यता का इतिहास, इलाहाबाद, 1990.
2. श्रीराम गोयल, विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ, 2011

इकाई–13 पारसीक सभ्यता

इकाई की रूपरेखा

13.0 प्रस्तावना

13.1. उद्देश्य

13.2 राजनीतिक स्थिति

13.2.1 प्राक् हखामशी काल

13.2.2 हखामशी काल

13.3 सामाजिक स्थिति

13.4 आर्थिक स्थिति

13.5 धर्म

13.6 कला व स्थापत्य

13.7 जरथुष्ट्र–जीवन व शिक्षाएँ

13.8 बोध प्रश्न

13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

13.0. प्रस्तावना

ईरान, जिसे प्राचीनकाल में पर्शिया अथवा फारस के नाम से भी जाना जाता था। ईरान एशिया महाद्वीप के मध्य–पूर्व में स्थित है। सिन्धु नदी घाटी के पश्चिम से प्रारम्भ कर दजला–फरात नदियों की घाटी तक के क्षेत्र ईरान के पठार की संज्ञा दी जाती है। एल्बुर्ज पर्वत कुपेहदाघ पर्वत तथा अत्रेकन की घाटी ईरान को रुस से अलग करती है। 1935 ई0 से पूर्व ईरान को फारस या पर्शिया नाम से जाना जाता था। ईरान का आकार त्रिभुजाकार है व यह फारस की खाड़ी व कॉस्पियन सागर के मध्य स्थित है। वर्तमान ईरान के उत्तर में रुस व कैस्पियन सागर, दक्षिण में ओमान व फारस की खाड़ियाँ, उत्तर–पश्चिम में तुर्किए (टर्की), पश्चिम में ईराक तथा पूर्व में अफगानिस्तान व बलूचिस्तान स्थित है। ईरान का मध्य भाग सर्वाधिक शुष्क परन्तु इस क्षेत्र से मृदा अत्यन्त जलोढ़ है, जिसके फलस्वरूप फसल अच्छी होती है। सम्भवतः यही कारण है कि सभी बड़े नगरों तेहरान, हेरात, इस्फहान, पेसरगेडाइ, पर्सिपोलिस तथा शीराज़ आदि का उद्भव व विकास इसी क्षेत्र में हुआ।

ईरान की प्रारम्भिक जातियों के विषय में अधिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं हैं। ईरान के पश्चिमी क्षेत्र में कुछ आदिम जातियों यथा– लुल्लुवी, गूती व कसाइट जातियों पर कुछ प्रकाश पड़ता है। कालान्तर में ईरान में इण्डो–यूरोपियन जाति की अनेक शाखाओं मिडियन, पर्सियन, एरियाना, ड्रेंजन, कोशियन, मारजियन, केनियन व सोग्डियन का प्रभाव देखने को मिलता है।

पारसिक सभ्यता अथवा ईरानी सभ्यता के विषय में साक्ष्यों का अभाव है। ईरान में हखामशी काल से पूर्व के विषय में पुरातात्विक साक्ष्य अनुपलब्ध हैं अतः इस काल के इतिहास के पुनर्निर्माण हेतु प्राचीन धार्मिक साहित्यों पर ही निर्भ होना पड़ता है। जेंद–ए–अवेस्ता प्रमुख ग्रन्थ है। यह एक धार्मिक साहित्य है, जिसकी गणना विश्व के प्राचीनतम धर्म ग्रन्थों में की जाती है। अवेस्ता भी अपने मूल रूप में नहीं प्राप्त होती है। इसके मूल में सम्भवतः 1200 अध्याय थे, जो अब प्राप्त नहीं होते। कहा जाता है कि सिकन्दर के पर्सिपोलिस आक्रमण के पश्चात् पर्सिपोलिस नगर को जला दिया, जिससे अवेस्ता की मूल प्रति भी जल गयी। वर्तमान में जो अवेस्ता ग्रन्थ प्राप्त है वह चार भागों में विभक्त है– स्त्र, बीस्पेरेद, बेन्दिदाद व यष्ट। अवेस्ता ग्रन्थ को जरथुष्ट्र द्वारा संशोधित कर दिया गया था, जिससे इस ग्रन्थ से प्राचीन ईरान के विषय में जानकारी अत्यल्प है। इसके कुछ अंशों में वैदिक ग्रन्थों के साथ तुलनात्मक अध्ययन से कुछ जानकारी अवष्य ही प्राप्त होती है।

अवेस्ता के पश्चात् यूनानी ग्रन्थों व हखामशी शासकों के अभिलेखों से भी पारसिक सभ्यता पर प्रकाश पड़ता है। यूनानी ग्रन्थों में हेरोडोटस की कृति 'हिस्टरी' पारसिक सभ्यता के इतिहास को उद्घाटित करती है। हखामशी शासकों के अभिलेख पर्सिपोलिस (पेसर गेदाय), बेहिस्तून, सूसा में प्राप्त होते हैं।

ईरान अथवा फारस की भौगोलिक स्थिति व जलवायवीय दशाओं ने विश्व की अनेक जातियों व सभ्यताओं के निवासियों को आकृष्ट किया। ईरानी सभ्यता की नींव प्राक् हखामशी शासनकाल में ही पड़ गई थी परन्तु इसे चरमोत्कर्श पर पहुँचाने का श्रेय जाता है हखामशी शासकों को। पश्चिमी व पूर्वी एशिया के मध्य स्थित होने के कारण भी ईरान को अनेक आक्रमणों का सामना करना पड़ा। इसकी इसी अवस्थिति के कारण नए देशों, सभ्यताओं व संस्कृतियों के सम्पर्क में आया।

13.1. उद्देश्य

इस इकाई से हमारा उद्देश्य पारसीक सभ्यता के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालना है। इस इकाई के अन्तर्गत पारसीक सभ्यता के विस्तार, विश्व

को इसके उपादानों व जरथुष्ट्र की शिक्षाओं आदि का विस्तारपूर्वक विश्लेषण किया गया है।

13.2. राजनीतिक स्थिति

साहित्यिक व पुरातात्विक साक्ष्यों के अध्ययन के आधार पर फारस/पर्सिया/ईरान के राजनीतिक इतिहास को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। प्राक् हखामशी/पूर्व हखामशी काल व हखामशी काल।

13.2.1. प्राक् हखामशी काल

इस काल में ईरानी जातियाँ जो स्वयं को 'आर्य' कहकर सम्बोधित करती हैं। अनेक उपशाखाओं में विभाजित होकर भिन्न–भिन्न क्षेत्रों पर शासन करती थीं। इन जातियों में पर्सियन, एरियन, मीडियन, बाग्ती, पार्थियन, सौग्डियन, कसाइट व मित्तानी आदि की गणना की जा सकती है। प्राक् हखामशी कालीन इतिहास मीडियन जाति के उत्कर्ष का इतिहास है। ईरान के उत्तर–पश्चिमी भाग को प्राचीनकाल में मीडिया कहा जाता था। मीडिया असीरिया के समीप स्थित होने के कारण सदैव असीरियन आक्रमणों से त्रस्त रहा। असीरियन आक्रमणों के प्रतिरोध व मीडिया के राज्य के रूप में स्थापना के लिए मीडिया के लोगों ने डिओसीज़/डिसोसीज को अपना शासक चुना। डिओसीज़/डिसोसीज को ही सारगोन द्वितीय के अभिलेख में दायवकु नाम से सम्बोधित किया गया है। इसने प्रथम मीडियन साम्राज्य का निर्माण किया।

डिओसीज/डिओकीज के पश्चात् उसका पुत्र फरोओर्टीज (फ्रवर्तिश) अगला शासक हुआ। इसने असीरिया के विरुद्ध संघर्ष प्रारम्भ किया। इसने सुमेरियन व सीथियन जातियों को परास्त किया। तत्पश्चात् इन दोनों के साथ सम्मिलित रूप से असीरिया पर आक्रमण किया।

असीरियन अभिलेखों में इसे क्षस्तरित कहा गया है। यह सेनाकेरिब (सारगोन का उत्तराधिकारी) व एसरहद्दोन (सेनाकेरिब का उत्तराधिकारी) का समकालीन था। फ्रवर्तिश स्वयं को अत्यन्त शक्तिशाली समझने लगा व इसी भ्रम में उसने निनेवेह पर आक्रमण किया। इस आक्रमण में वह परास्त हुआ तथा इसकी हत्या कर दी गई। फ्रवर्तिश ने 653 ई0पू0 से 625 ई0 तक शासन किया।

फ्रवर्तिश की मृत्यु के पश्चात् मीडिया पर 28 वर्षों तक सीथियन जाति का अधिकार हो गया। फ्रवर्तिश के उत्तराधिकारी उसके पुत्र साइक्सरीज अथवा उवक्षत्र ने मीडिया को सीथियन अधिकार से मुक्ति दिलायी। साइक्सरीज ने

साम्राज्य विस्तार के दृष्टिगत असीरिया के शत्रु कैल्डिया से मित्रता की। उसने निनवेह से सन्धि की। तत्पश्चात् असीरियन साम्राज्य को समाप्त कर दिया। असीरिया के पतनोपरांत कैल्डियन शासक ने नबोपोलस्सर व साइक्सरीज ने असीरियन साम्राज्य को आपस में विभक्त कर लिया। नेबोपोलस्सर के पास भूमध्य सागरीय तटवर्ती प्रदेश तथा उत्तर में अशुर तक का क्षेत्र था वहीं साइक्सरीज को असीरिया, उत्तरी मेसोपोटामिया, आरमीनिया तक का प्रदेश मिला। असीरिया को जीतने के पश्चात् साइक्सरीज ने अपना ध्यान लीडिया की ओर आकृष्ट किया। लीडिया व मीडिया के मध्य 590 ई0पू0 से 585 ई0पू0 तक भयंकर युद्ध हुआ। अन्त में बेबीलोन सम्राट् की मध्यस्थता से दोनों के मध्य सन्धि हो गयी। इस तरह साइक्सरीज ने महान पारसिक साम्राज्य की स्थापना की।

साइक्सरीज के बाद उसका पुत्र इश्तुबेगु 584 ई0पू मीडिया का राजा बना। इसके शासनकाल में प्रारम्भ में ही मीडियन शासकों के प्रभाव में कमी आयी। इश्तुबेगु के शासनकाल में मीडियन साम्राज्य में अनेक स्थानों पर विद्रोह हुए। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण विद्रोह की घटना दक्षिणी ईरान के अन्सान प्रान्त में हुई। जिसने मीडियन साम्राज्य के पतन का मार्ग प्रशस्त किया। अन्सान के प्रान्तीय शासक कम्बुजिय प्रथम ने विद्रोह कर अपनी शक्ति बढ़ा ली, जिसके कारण इश्तुबेगु को अपनी पुत्री का विवाह कम्बुजिय प्रथम से करना पड़ा। 553 ई0पू0 में कमबुजिय प्रथम के पुत्र कुरुश ने सामन्तों के सहयोग से सम्पूर्ण मीडियन साम्राज्य पर अधिकार कर लिया हखामशी साम्राज्य की स्थापना की।

13.2.2. हखामशी साम्राज्य

हखामशी काल का आरम्भ 650 ई0पू0 लगभग माना जाता है। इस वंश का प्रथम शासक हखामनीश नामक व्यक्ति को माना जाता है। हखामनीश के पश्चात् उसका पुत्र विषपिज सिंहसनारुढ़ हुआ जिसने एलम की अधीनता से मुक्ति पायी और मीडिया के अधीन आ गया। इसने दो पुत्रों में राज्य को बाँटा– साइरस प्रथम को अन्सान का राज्य तथा अरियाम्न को फार्स का राज्य मिला। साइरस प्रथम के पुत्र केम्बीसम प्रथम ने अपनी दूसरी शाखा पर विजय प्राप्त कर एक संगठित राज्य बनाया तथा मीडिया की राजकुमारी से विवाह कर लिया। इसके पश्चात् ईरानी साम्राज्य साइरस द्वितीय के हाथों में आया जिसने मीडिया की दुर्बल स्थिति का लाभ उठाकर ईरानियों तथा मीडिज लोगों को संगठित करके सुदृढ़ साम्राज्य स्थापित किया। उसके साम्राज्य में मीडिया, लीडिया, असीरिया के अधिकांश भाग, पूर्वी एशिया माइनर, पर्थिया इत्यादि प्रदेश सम्मिलित थे।

साइरस द्वितीय ने साम्राज्य विस्तार की नीति का अवलम्बन किया। सर्वप्रथम उसने मीडिया का अधिग्रहण मीडियन सरदारों की सहायता से शक्तिपूर्वक ढंग से किया, द्वितीय लीडिया में उस समय क्रोशश शासन कर रहा था, जिसकी राजधानी सार्डिस थी। साइरस ने तीव्र गति से आक्रमण किया और राजधानी तक जा पहुँचा। क्रोशश ने आत्महत्या करनी चाही तो उसने उसे बचाया और उसकी मित्रता प्राप्त की। लीडिया के पश्चात् एशिया माइनर के तटवर्ती यूनानी उपनिवेशों की ओर साइरस द्वितीय का ध्यान गया जो लीडिया के अधीन थे। उन्हें उसने करद राज्य बना लिया तथा पारसीक सेना में अनिवार्य रूप से सेवा करने को बाध्य किया गया। पश्चिमी सीमा से लौटने के बाद उसने पूर्व की ओर ध्यान दिया।

पूर्व में सर्वप्रथम हाइरकेनिया तथा पार्थिया पर विजय प्राप्त की तथा वहाँ अर्समीज (अर्शम्) के पुत्र हिस्तस्पीज को गवर्नर बनाया। इसके बाद ड्रैन्जियाना, एराकोशिया व बैक्ट्रिया को पारसीक साम्राज्य में मिला लिया, इसके बाद वंक्षु नदी पार कर एक दुर्गीकृत नगर बनवाया। विद्वानों में परस्पर मतभेद है कि उसने भारत तक विजय अभियान किया।

उपर्युक्त विजयों के पश्चात् उसने बेबिलोनिया के शास नेबोनिडस पर आक्रमण किया वह अयोग्य था अतः साइरस द्वितीय को सफलता मिली और साइरस ने बेबिलोनियन शासक की उपाधि धारण की। उसने वहाँ के हिब्रुओं के साथ उदारतापूर्ण व्यवहार किया। बेबीलोन के अधीन सीरिया और फीनिशिया भी उसके अधिकार में आ गए और साइरस ने मिस्त्र पर आक्रमण की योजना बनाई किन्तु कैस्पियन सागर की एक मेसागेटी जाति के उपद्रव के कारण वह सेना का अभियान अपने पुत्र केम्बिसीज द्वितीय के सुर्पुद करके उनसे युद्ध के लिए चल पड़ा, जहाँ उसे मृत्यु प्राप्त हुयी।

अतः साइरस एक महान विजेता, साम्राज्य निर्माता, उदार एवं सहिष्णु सम्राट था। उसे अपने साम्राज्य को संगठित करने का समय नहीं मिला किन्तु उसने एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया। अतः उसे हखामनी साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक कहा जा सकता है।

साइरस की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र केम्बिसीज द्वितीय 529 ई0पू0 में सिंहासनारूढ़ हुआ, उसने पिता की नीति का अवलम्बन करते हुए मिस्र पर आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया। उसने साम्राज्य विस्तार के उद्देश्य से कार्थेजिनियन, ओमान के मरुद्वीप तथा इथियोपिया में सेनाएँ भेजीं किन्तु वह असफल रहा और अन्ततः उसका पतन हो गया।

केम्बसीज द्वितीय की अनुपस्थिति में साम्राज्य के विघटन को देखते हुए हखामनी वंश की दूसरी शाखा अरियाम्न के वंशज जो गवर्नर के रूप में शासन कर रहे थे उनमें दारा ने सर्वप्रथम पारसीक साम्राज्य पर आधिपत्य किया। इसका पिता उस समय पार्थिया के गवर्नर के रूप में शासन कर रहा था। दारा के राज्य ग्रहण के समय सभी विजित जातियाँ मिस्र, लीडिया, सुसियाना, बेबीलोन, मीडिया, असीरिया, अरमीनियाँ ने विद्रोह कर दिया। दारा ने एक–एक करके इनका दमन करना प्रारम्भ कर दिया। कठोर प्रयत्न के बाद दारा ने सभी को पराजित कर दिया तथा बेहिस्तून का प्रसिद्ध अभिलेख उत्कीर्ण करवाया।

विद्रोहों की समाप्ति के उपरान्त दारा ने अपनी स्थिति सुदृढ की तथा सीथियनों का दमन करने के लिए अपनी सेना भेजी। उसने सेना को दक्षिणी रुस में बास्फोरस के पार डेन्यूब और वोल्गा तक भेजकर साम्राज्य विस्तार किया। दारा के बेहिस्तून, नख्श–ए–रुस्तम, पर्सिपोलिस के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि उसने अफगानिस्तान की पहाड़ियों को पारकर सिन्धु या पश्चिमोत्तर प्रदेश को भी अपने साम्राज्य में मिला लिया था। हेरोडोटस के अनुसार भारत उसके साम्राज्य का 20वां प्रान्त था, जहाँ से उसे सर्वाधिक कर मिलता था।

यूनान पर आक्रमण करने के उद्देश्य से उसने थ्रेस पर आक्रमण कर दिया और थ्रेस के साथ मेसीडोन पर भी अधिकार कर लिया। इन विजयों के पश्चात् फारस, अफगानिस्तान, मेसोपोटामिया, उत्तरी अरेबिया, मिस्र साइप्रस, फिलिस्तीन, सीरिया, एशिया माइनर, ईजियन, थ्रेस एवं मेरीडोन दारा प्रथम के साम्राज्य में आ गए। अब उसने यूनान पर आक्रमण किया जहाँ मैराथन के युद्ध में उसकी पराजय हो गयी किन्तु दारा प्रथम ने पुनः युद्ध की योजना बनाई इससे पूर्व में हुए विद्रोह को दबाने के लिए उसे मिस्र की ओर ध्यान देना पड़ा, जहाँ 486 ई0पू0 में उसकी मृत्यु हो गयी।

दारा प्रथम की गणना फारस ही नहीं विश्व के महान सम्राटों में की जाती है। उसने एक विशाल साम्राज्य स्थापित करने के साथ ही शासन की प्रणाली में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उसने जिस शासन प्रणाली की नींव डाली, वह पारसीक साम्राज्य के पतन काल तक चलती रही।

साम्राज्य में उसने हम्मूराबी की विधि संहिता से मिलती–जुलती कानून प्रणाली सर्वत्र एक समान रूप से लागू की। सैनिक सेवा को अनिवार्य कर दिया। उसने पारसीक राजधानी को अलंकृत करवाया। सूसा में विशाल राजप्रासाद का निर्माण करवाया। यातायात व व्यापार को प्रोत्साहन देने के लिए अनेक मार्गों का निर्माण करवाया। कृषि, व्यापार, वाणिज्य, उद्योगों को विकसित

करने का प्रयास किया।

486 ई0पू0 में दारा की मृत्यु हो गई और उसके बाद उसका पुत्र जरक्सीज शासनाधिकारी हुआ। उसने बेबीलोन को पूर्णतः परास्त किया। उसने भी यूनान पर आक्रमण किया, जिसमें स्थल और जल दोनों सेनाएँ थीं। अन्ततः ईरानियों की पराजय हुयी 440 ई0 पू0 में उसके अंगरक्षक आर्तबेनस ने सम्राट की हत्या कर दी। जरक्सीज की मृत्यु के उपरान्त ईरान की शक्ति एवं प्रताप में उत्तरोत्तर पतन होता गया, उसके उपरान्त साधारण योग्यता वाले कई सम्राट हुए परन्तु अवनति नहीं रूकी। जरक्सीज के पश्चात् का राजनीतिक इतिहास निम्न है–

जरक्सीज के पश्चात् दारा द्वितीय हखामनी साम्राज्य का अगला शासक हुआ। इसने कूटनीति और युद्धनीति से सीरिया के विद्रोह को शान्त किया। उसके समय यूनान में पेलोपोनेसस युद्ध हो रहा था, इसमें उसने अन्ततः स्पार्टा का साथ देकर एशिया के यूनानी उपनिवेश प्राप्त किए।

दारा के बाद अर्न्तजरक्सीज शासक बना जिसने साम्राज्य को बचाये रखा, उसके पश्चात् अर्न्तजरक्सीज तृतीय कुछ शक्तिशाली शासक था। उसने ही मिस्र पर आक्रमण करके सिकन्दरिया नगर को नष्ट–भ्रष्ट कर डाला। उसके असहिष्णु स्वभाव से परेशान होकर उसके चिकित्सक ने उसे विष देकर मार डाला तथा दारा तृतीय को शासक बनाया। अन्ततः सिकन्दर के हाथों दारा एवं पारसीक साम्राज्य का अंत कर दिया गया।

पारसीक साम्राज्य एक समय विश्व का सबसे विशाल साम्राज्य था। सम्भवतः कालान्तर में प्रशासनिक शिथिला, साम्राज्य की विशालता, उत्तराधिकारियों की विलासप्रियता के कारण एवं सिकन्दर महान के अभ्युदय से इस विशाल साम्राज्य का विनाश हो गया।

13.3. सामाजिक स्थिति

पारसिक सभ्यता कालीन समाज का मूलाधार अन्य समाजों की भाँति ही परिवार था। पारसिक समाज पितृसत्तात्मक थे अथवा मातृसत्तात्मक यह कह पाना कठिन है। कुछ विद्वान् इसे पितृसत्तात्मक समाज मानते हैं। पारसिक समाज को पाँच वर्गों में विभक्त किया जा सकता है– (1) शासक, (2) भू–स्वामी/सामन्त, (3) पुरोहित, (4) व्यापारी व कृषक व (5) दास। पारसिक समाज में शासक भू–स्वामी/सामन्त व पुरोहित वर्ग को पर्याप्त सम्मान प्राप्त था। फारस में पुरोहित को 'मगी' शब्द से सम्बोधित किया जाता था। यह

धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप कर सकते थे। ईरान में व्यापार व व्यापारियों दोनों की ही दशा अच्छी नहीं थी। पारसिक साम्राज्य के शासक अपने जीवन के अधिकांश समय में युद्ध में व्यस्त रहे तथा ईरान में युद्ध बन्दियों को दास बनाए जाने का प्रावधान था। पारसिक समाज में दासों की संख्या अधिक व दशा दयनीय थी।

ईरानी स्त्री व पुरुष दोनों व आभूषण पसन्द करते थे। ईरानियों में शृंगार–प्रसाधन के प्रचलन के भी प्रमाण मिलते हैं। ईरानी समाज में विवाह प्रथा का महत्त्वपूर्ण स्थान था। पुत्र जन्म को मंगल माना जाता था व बहु पुत्री की कामना की जाती थी। व्यभिचार को दण्डनीय माना जाता था। शासक वर्ग के अतिरिक्त सामान्य वर्ग में बहुविवाह का प्रचलन नहीं था। विवाह सम्बन्धों का नियमन माता–पिता द्वारा किया जाता था। सम्भवतः विवाह की आयु 15 वर्ष निर्धारित की गयी थी। पारसिक समाज में धनी वर्ग रत्न जडित वस्त्र व सामान्य वर्ग साधारण वस्त्र धारण करते थे। पारसीक सम्राट् भड़कीले वस्त्र पहनते थे व कालान्तर में यह विग भी धारण करने लगे।

पारसिक समाज शिष्टाचार व सदाचार का प्रबल समर्थक था। ईरानी समाज में व्यभिचार व वेश्यावृत्ति दोनों के लिए ही मृत्युदण्ड का विधान था तथा चारित्रिक दोष के लिए भी कठोर दण्ड दिए जाते थे। ईरानी समाज में शिक्षा पर सभी का अधिकार था। सात वर्ष से प्रारम्भ कर प्रत्येक बालक को शिक्षा प्राप्त करने का प्रावधान ईरानी समाज में प्रचलित था। शिक्षा प्रणाली प्रायः मौखिक थी। ईरानी पाठ्यक्रम में जेंद अवेस्ता व उस पर लिखे गए अन्य ग्रन्थ मुख्य रूप से सम्मिलित किए गए थे। युद्ध व व्यवहारिक शिक्षा का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। ईरानी समाज में सभी बालकों के लिए सैन्य शिक्षा अनिवार्य थी।

प्रारम्भिक ईरानी समाज में स्त्रियों की दशा समुन्नत थी। महिलाएँ सुन्दर होती थीं। पर्दा प्रथा का अभाव था। स्त्रियाँ सामाजिक समारोहों में स्वतंत्रतापूर्वक भाग लेती थीं। उन्हें सम्पत्ति का भी अधिकार प्राप्त था, परन्तु हखामनी वंश के शासक दायरवौश/दारा के शासनकाल से ही स्त्रियों की दशा में गिरावट आनी प्रारम्भ हुई। स्त्रियों को प्रत्येक सामाजिक समारोह में प्रतिबन्धित कर दिया गया। पर्दा प्रथा का अनुमान इस तथ्य से भी लगाया जा सकता है कि पारसिक कला में भी स्त्री चित्रों व मूर्तियों का पूर्ण अभाव है।

13.4. आर्थिक स्थिति

ईरानियों की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि था। जेंद–ए–अवेस्ता

ग्रन्थ में कृषि कर्म को सर्वोत्तम बताया गया है। ईरानी मुख्यतः गेहूँ व जौ की खेती किया करते थे। इस क्षेत्र में उर्वर भूमि की कमी के कारण नदी घाटी क्षेत्रों में ही कृषि कार्य सम्भव था। कुछ क्षेत्रों में दलदली भूमि को सुखाकर कृषि योग्य बनाने के भी प्रमाण प्राप्त होते हैं। पारसीक साम्राज्य में भूमि के भिन्न–भिन्न प्रकार प्राप्त होते हैं। कुछ भूमियों पर किसानों का व्यक्तिगत तथा कुछ प्रकार पर सामूहिक अधिकार होता था। परन्तु यहाँ के अधिकांश कृषि योग्य भूमि पर सामन्तों व उच्च अधिकारियों का अधिकार था। जुताई बैलों के द्वारा की जाती थी। खेतों में सिंचाई अधिकांशतः वर्षा के जल द्वारा की जाती थी। इसके अतिरिक्त नदियों व नहरों के माध्यम से भी सिंचाई की जाती थी। दारा/दायरवाश/डेरियस प्रथम के शासनकाल में उपज व कर को ध्यान में रखते हुए भूमि की पैमाइश करवायी। कृषि के अतिरिक्त ईरानी समाज में बागवानी का भी प्रचलन था। बागवानी से प्राप्त आय भी राज्य की अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख आधार था।

कृषि के पश्चात् ईरानियों का दूसरा प्रमुख व्यवसाय पशुपालन था। पारसीक साम्राज्य में चारागाहों के साक्ष्य पशुपालन की ओर ध्यान केन्द्रित करते हैं। प्राचीन ईरानियों द्वारा मधुमक्खी पालन का कार्य भी वृहत् पैमाने पर किया जाता था। ईरान/फारस खनिज सम्पदा से सम्पन्न राष्ट्र है। यहाँ चाँदी, सोना, लोहा व ताँबे का अतुल्य भण्डार था, जिसका प्रयोग यह व्यापारादि में करते थे। हखामशी शासनाल में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार–वाणिज्य की वृद्धि हुयी। स्काईलैक्स द्वारा जल मार्गों की खोज ने फारस की खाड़ी से पूर्वी एशियाई व मिस्र देशों के साथ व्यापार का मार्ग प्रशस्त किया। इनका व्यापारिक सम्बन्ध मख्यतः बेबीलोन, कीनिशिया आदि देशों के साथ थे। यह आन्तरिक व्यापार पर अधिक बल देते थे।

प्रारम्भ में ईरानी साम्राज्य में विनिमय का माध्यम मुख्यतः वस्तुएँ व पशु थे। वस्तुओं में भी खाद्यान्नों का विनिमय अधिक प्रचलन में था। ईरानियों ने मुद्रा प्रणाली का ज्ञान लीडिया से प्राप्त किया। ईरान में मुद्रा का प्रचलन हखामनी शासकों द्वारा प्रारम्भ किया गया। डेरियस/दारा ने अपने नाम के आधार पर डेरिक नामक मुद्रा का प्रचलन किया। डेरिक का निर्माण स्वर्ण व रजत दोनों धातुओं से किया जाता था। एक डेरिक का मूल्य लगभग 25 रुपए के बराबर था। डेरियस ने सिन्धु तक के प्रदेश में डेरिक का प्रवर्तन किया। 3000 डेरिक का एक टेलेण्ट होता था।

ईरानियों ने व्यापार को व्यवस्थित व सुगम बनाने के उद्देश्य से मार्गों, यातायात सुविधाओं व परिवहन प्रणाली से समुचित प्रबन्ध पर विषेष ध्यान

केन्द्रित किया। इन्होंने राजधानी को साम्राज्य में महत्त्वपूर्ण नगरों से सम्बद्ध करने के उद्देश्य से मार्गों का निर्माण किया। हखामनी साम्राज्य में सूसा से सार्डिन को जाने वाला मार्ग अत्यन्त प्रसिद्ध था। यह मार्ग 2400 किलोमीटर लम्बा था। डेरियस के काल में जल मार्गों के निर्माण का कार्य भी किया गया। उसने व्यापारिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए नील नदी व लाल सागर को जोड़ते हुए एक जल मार्ग का निर्माण किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पारसिक सभ्यता की आर्थिक दशा अत्यन्त उन्नत थी। अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि था परन्तु हखामशी शासकों ने व्यापार–वाणिज्य के विकास कार्य किए।

13.5. धर्म

ईरानी सभ्यता में धर्म का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। पारसिक सभ्यता की विश्व को सबसे बड़ी देन इनका धर्म ही माना जाता है। इनका धर्म विश्व के प्राचीनतम धर्मों में से एक है। ईरानी/पारसिक धर्म विभिन्न अवस्थाओं से होकर गुजरा। प्रत्येक अवस्था में इसमें थोड़े–बहुत अन्तर दृष्टव्य होते हैं। अतः ईरानी धर्म की बेहतर समझने हेतु इसका अध्ययन तीन वर्गों में विभक्त करके किया जा सकता है– (1) प्राक् हखामशी धर्म, (2) जरथुष्ट्र का धर्म, (3) हखामशी कालीन धर्म।

पारसीक सभ्यता के प्राक् हखामशी कालीन धर्म की प्रमुख विषेषता इसमें निहित बहुदेववाद थी। इस अवस्था में ईरानी धर्म अन्धविश्वासों व कर्मकाण्डों से परिपूर्ण था। इसी बहुदेववाद के कारण इतिहासकार ईरानी व वैदिक धर्म में साम्यता स्थापित करने का प्रयास करते हैं। ईरानियों को आर्यों का वंशज माना जाता रहा है। अतः वैदिक धर्म का प्रभाव स्वाभाविक ही प्रतीत होता है। ईरानी प्रारम्भ में प्रकृति पूजक थे। इनके देवमण्डल में देवताओं के साथ–साथ असुरों की भी परिकल्पना दिखती है। प्राक् हखामशी काल में मिथ्र (मित्र), अहुर (वरुण), यिम (यम), अर्त् (ऋतु) व गन्दरेव (गन्धर्व) इनके प्रमुख देवता माने जाते थे। इन सब में भी अहुर का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थी। इसे नैतिकता व पविता का नियामक माना जाता था। इनके अतिरिक्त अन्य देवताओं के रूप में सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, जल, पृथ्वी, नदियों आदि का भी उल्लेख मिलता है। ईरानी देवताओं के मानव रूप की पूजा नहीं करते थे। ईरानी धर्म में अनेक कर्मकाण्ड किए जाते थे। यहाँ हिंसात्मक यज्ञों का प्रचलन था (नरबलि व पशुबलि)। यज्ञों व बलियों के अतिरिक्त यह जादू–टोने व तन्त्र–मन्त्र का भी ईरानी धर्म में प्रचलन था। ईरानियों की अन्धविश्वासों व धार्मिक आडम्बरों में पूर्ण आस्था थी।

प्राक् हखामशी धर्म कालान्तर में अनेक कुरीतियों व बुराईयों से आच्छादित हो गया। इन बुराईयों को ईरानी धर्म से समाज करने का श्रेय जरथुष्ट्र को जाता है। जो स्थान भारत में महात्मा बुद्ध व महावीर स्वामी का व चीन में कन्फ्यूशियस व लाओत्से का है वही स्थान ईरान में जरथ्रुष्ट को प्राप्त है। जरथ्रुष्ट ने ईरान में सातवीं–छठी शताब्दी में एक नवीन धर्म का प्रतिपादन किया, सि जरथ्रुष्टवाद (Zorastariarism) के नाम से जाना जाता है। जरथ्रुष्ट्र का जन्म मीडिया के डर्मिया नामक स्थल पर 1 ई0पू0 के आस–पास हुआ था। जरथ्रुष्ट्र का शाब्दिक अर्थ 'स्वर्ण प्रभा से मण्डित' है। जरथ्रुष्ट्र ने ईरान के प्राक् हखामशी धर्म में व्याप्त धार्मिक अवधारणाओं, मान्यताओं, बहुदेववाद, तन्त्र–मन्त्र, बलि प्रथा व यज्ञ प्रथा को समाप्त करने का प्रयास किया। जरथ्रुष्ट्र बहुदेववाद से ठीक विपरीत एकेश्वरवाद का प्रबल समर्थक था। इसी ईकाई में आगे जरथ्रुष्ट्र व उसकी शिक्षाओं पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला जाएगा। जरथ्रुष्ट्र ने एकेश्वरवाद के साथ–साथ अग्रमन्यु–स्पेन्तमन्यु की अवधारणा व नैतिक आदर्शों पर बल दिया।

पांचवी–छठी शताब्दी ई0पू0 में ईरान में जरथ्रुष्ट्रवाद से इतर एक धर्म का प्रचलन मिलता है। जिसे हखामशी कालीन धर्म की संज्ञा दी जाती है। अनेक विद्वानों का यह मानना है कि हखामशी शासक जरथ्रुष्ट्र द्वारा प्रतिपादित धर्म के समर्थक थे, परन्तु हखामशी काल तक आते–आते जरथ्रुष्ट्रवाद में बहुत परिवर्तन आ गए थे। जिन कुरीतियों व बुराईयों को दूर करने के लिए जरथ्रुष्ट्रवाद का उद्भव हुआ, हखामशी काल में वह उन्हीं दुर्गुणों से व्याप्त हो गया। डेरियस/दायरवॉश कालीन जरथ्रुष्ट्री धर्म अनेक कर्मकाण्डों (यज्ञ व बलि) से हो गया। ईरानी धर्म में एक बार पुनः पुरोहितों (मागियों) के वर्चस्व में वृद्धि हुई। एकेश्वरवाद का स्थान बहुदेववाद ने ले लिया। हखामशी कालीन ईरानी धर्म का रूप पूर्व काल की अपेक्षा अत्यन्त जटिल हो गया। अहुरमज्दा, मिथ्र व अनाहित (नदी देवी) हखामशी काल के प्रमुख देवताओं के रूप पूजे जाने लगे। इस काल में इन तीनों का त्रिगुट अत्यन्त प्रसिद्ध था, जो अग्रमॅन्यु (शैतानी शक्तियों) का सामना सम्मिलित रूप से करते थे। कालान्तर में बहुतदेववाद के स्थान पर द्वैतवाद (अहुरमज्दा व अहुरियन) प्रधान हो गया व अहुरमज्दा ईरानियों का प्रधान देवता।

इस प्रकार ईरानी धर्म विभिन्न अवस्थाओं से होता हुआ वर्तमानस्वरूप में आया। जरथ्रुष्ट्री धर्म ईरान से विलुप्त हो गया। जिसे हम शुद्ध पारसीक धर्म की संज्ञा देते हैं। आज भी विश्व के कई देशों में जरथ्रुष्ट्री, पारसीक धर्म के मतावलम्बी विद्यमान है। कालान्तर में ईरान अनेक विदेशी आक्रान्ताओं व

जातियों के सम्पर्क में आया, जिससे इनके मूल धार्मिक स्वरूप में अनेक परिवर्तन हुए।

13.6 कला व स्थापत्य

हखामशी शासकों ने एक विस्तृत ईरानी/पारसीक साम्राज्य की स्थापना की। जिसकी सीमाएँ एक समय पश्चिम मिस्र से पूर्व में सिन्धु नदी के पश्चिम तक थी। यह विशाल साम्राज्य अपने भवनों, नगरों आदि से युक्त था। पारसीक सम्राट् कला प्रेमी थे, जिसकी पुष्टि पर्सिपोलिस राजधानी के भवन व मूर्तियाँ करती हैं। ईरानी अपने कला व उत्कृष्ट स्थापत्य के लिए विश्व प्रसिद्ध थे। कलाविद विश्व के अनेक प्राचीन नगरों/सभ्याताओं आदि पर प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से ईरानी कला के प्रभाव की चर्चा करते हैं। ईरानी सभ्यता अपनी वास्तुगत दक्षता के लिए प्रसिद्ध है। ईरानी कला व स्थापत्य के प्रमाण पर्सिपोलिस (पेसरगेडाय), सुसा, एक्बटना व सारगेडाय आदि नगरों से मिलते हैं। ईरानियों ने कला की अपेक्षा स्थापत्य को अधिक महत्व दिया।

पारसीक कला अनेक विषेषताओं से युक्त है। हम देखते हैं कि विश्व की प्रायः सभी सभ्यताओं की कला व स्थापत्य धर्म से काफी सीमा तक प्रभावित थी, परन्तु इसके भी ठीक विपरीत ईरानी कला पर राज्य का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। ईरानी कला व स्थापत्य पर साम्राज्य की विशालता व हखामशी सम्राटों का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। ईरानी कला पर यूनानी मिस्र, बेबीलोन, असीरिया व लीडिया का स्पष्ट प्रभाव था। सम्भवतः इसी कारण डियोडोरस के अनुसार मिस्त्री कलाकारों ने यहाँ निर्माण कार्य किया व प्लिनी के अनुसार यूनानी कलाकारों को फारस ने आश्रय प्रदान किया था। ईरान में धार्मिक महत्व से भवनों की अल्पता व राजकीय भवनों का बहुतायत में मिलना राजकीय संरक्षण को दर्शाता है। यहाँ स्थापत्य कला की अनेक विधाएँ विकसित हुयीं।

ईरानियों की विभिन्न संस्कृतियों अथवा सभ्यताओं की विषेषताओं की ग्राह्यता इनकी कला व स्थापत्य में भी झलकती है। इन्होंने मिस्त्री, यूनानी, मीडियन कला के तत्वों को आत्मसात कर विचित्र सी एकात्मकता प्रदान की, जो किसी देश की कला में देखने को नहीं मिलती। ईरानी कला व स्थापत्य के प्रमाण हमें ईरानी साम्राज्य के विभिन्न नगरों से प्राप्त होते हैं जो निम्नवत् हैं–

- **पर्सिपोलिस की कला व स्थापत्य**–

पर्सिपोलिस नगर को हखामशी शासनकाल में राजधानी का गौरव प्राप्त है। तख्ते जमशेद पर्सिपोलिस की प्रमुख स्थापत्य कलाकृति के रूप में प्रसिद्ध

है। यह चबूतरा चूना पत्थर के विशाल खण्डों के योग से निर्मित है। यह बताते हैं इस चबूतरे का माप 1500 x 92 x 40 फीट है। इसके दोनों ओर आवागमन हेतु सीढ़ियों का निर्माण किया गया है। यह सीढ़ियाँ ढलवा व अत्यन्त चौड़ी हैं। जिन पर असीरियन मण्डप निर्मित है। इस मण्डप पर पक्षयुक्त वृषभ बने हें। जिन पर असीरियन कला का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। मण्डप के बाद सीढ़ियों के माध्यम से क्षयार्श के कक्ष (Hall of Xesxes) तक पहुँचा जा सकता है। इस सोपान की भित्तियों पर अनेक रिलीफ आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं। यह 150′ X 150′ का विशाल कक्ष है। यह कक्ष विशालकाय 58 फीट ऊँचे 72 स्तम्भों पर स्थित था।

वर्तमान में इनमें से मात्र 13 स्तम्भ ही अवषेष के रूप में प्राप्त होते हैं। इन स्तम्भों के शीर्ष पर दो वृषभ मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। कलाविद इन्हीं स्तम्भों का प्रभाव मौर्यकालीन स्तम्भों पर बताते हैं। इन स्तम्भों के पीछे सौ स्तम्भों से युक्त कक्ष है। पर्सिपोलिस का यह राजप्रासाद कला व स्थापत्य दोनों ही दृष्टिकोणों से उत्कृष्ट है।

- **पेसरगेडाय की कला व स्थापत्य–**

पेसरगेडाय की गणना ईरानी साम्राज्य के प्रमुख नगरों के रूप में की जाती है। यह नगर हखामशी साम्राज्य के प्रांत फार्स (पर्सिस) की राजधानी था। यहाँ की प्रमुख स्थापत्य कलाओं में तख्ते–सुलेमान प्रमुख है। यह श्वेत प्रस्तर पर निर्मित 300 फीट लम्बा एक चबूतरा है। चबूतरे का निर्माण श्वेत पाषाण खण्ड को धातु से जोड़कर किया गया था। इसके समीप ही चूने प्रस्तर से निर्मित एकाश्मक स्तम्भ था। जिस पर हखामनी शासक कुरुश महान का लेख उत्कीर्ण था, जो अब खण्डित हो गया है। तख्ते–सुलेमान किसी भवन का एक भाग प्रतीत होता है। इसी के समीप एक छोटा सा कक्ष है, जिसे सुलेमान की माँ का मकबरा कहा जाता है।

सूसा व एकवटना की काल व स्थापत्य–

ईरानी कला व स्थापत्य के अनेक अप्रतिम उदाहरण सूसा व एकवटना से प्राप्त होते हैं। हखामशी शासकों द्वारा सूसा व एकवटना में काष्ठ के राजप्रासादों (महलों) का निर्माण करवाया गया था। सूसा के राजप्रासाद अपने ग्लेज्ड ईंटों पर निर्मित सिंहों व अमरदलों (इम्मौटल्स) के रंग–बिरंगे चित्रों के लिए विश्व प्रसिद्ध हैं। सूसा व एकवटना के राजप्रासादों व कलाकृतियों पर मिस्त्री व असीरियन कलाकारी का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

हखामशी शासकों की समाधियाँ भी उनकी कला को प्रस्तुत करती है। इन समाधियों का निर्माण दो प्रकार से किया गया है, प्रथम ईंट व प्रस्तर की सहायता से निर्मित समाधियाँ व द्वितीय पर्वत को काटकर निर्मित समाधियाँ। ईंट व प्रस्तर से निर्मित समाधियों में पेसरगेडाय से निर्मित कुरुश द्वितीय की समाधि जिसे वर्तमान में मशहदेमदरे सुलेमान के नाम से जाना जाता है, प्रसिद्ध है। इस समाधि पर यूनानी प्रभाव दिखाई देता है। गुहा समाधियों के दायरवौश की गुहा समाधि है, जिसे पर्वत को काटकर बनाया गया है। यह समाधि 60 फीट लम्बाई व 20 फीट चौड़ी है। इसका द्वार चार स्तम्भों से युक्त मण्डप तथा अन्दर सिंहासन पर धुनर्धारी सम्राट अभिवादन करते हुए तथा पक्षयुक्त अहुरमज्दा की आकृति उत्कीर्ण थी। इस पर मिस्री प्रभाव दृष्टव्य है।

ईरानी सभ्यता में मूर्तिकला का विकास स्वतंत्र रूप से न होकर स्थापत्य के साथ हुआ है। यहाँ के विशालकाय स्तम्भों के शीर्ष पर अश्व, वृषभ व सिंहों का अंकन इनकी मूर्तिकला में दक्षता का उदाहरण है। ईरानी रिलीफ स्थापत्य में भी वास्तविक व काल्पनिक पशुओं का अंकन किया गया है।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि ईरानी सभ्यता विश्व की उत्कृष्ट व समृद्ध सभ्यताओं में से एक थी। ईरान की भौगोलिक अवस्थिति ने इसके विकास में अपना बहुमूल्य योगदान प्रदान किया। इनकी प्रशासनिक व्यवस्था, कला व धर्म ने कालान्तर में अनेक सभ्यताओं व संस्कृतियों पर व्यापक प्रभाव डाला। ईरानियों ने पूर्वी एशिया को विजित करने का मार्ग प्रशस्त किया। इन्होंने अनेक समुद्री मार्गों की खोजकर व्यापार–वाणिज्य को बढ़ावा दिया। भारत के उत्तरी–पश्चिमी भाग में प्रचलित खरोष्ठी लिपि ईरानियों की ही देन मानी जाती है।

13.7. जरथ्ष्टः प्रारम्भिक जीवन व शिक्षाएँ

जरथुष्ट्री धर्म के प्रतिपादक जरथुष्ट्र का जन्म अजरबैजान के उसमिया नामक स्थान में हुआ था। इनका वास्तविक नाम स्पितया था। जरथुष्ट्र का शाब्दिक अर्थ स्वर्णप्रभा मण्डित है। इनका समय 1000 ई0पू0 से 600 ई0पू0 के मध्य रहा होगा, ऐसा माना जाता है।

इनके प्रारम्भिक जीवन के विषय में अनेक कथाएँ मिलती हैं जिसके अनुसार तीस वर्ष की आयु में सबलान पर्वत पर उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ माना जाता है। अहुरमज्दा ने स्वयं उन्हें अवेस्ता दी तथा इसका प्रचार करने को कहा। पश्चिमी ईरान में सफलता न मिलने पर वे पूर्वी ईरान में खुरासान में विस्तास्प नामक कवि व राजा से मिले, जिसने उन्हें अपना गुरु बना लिया।

जरथुष्ट्री धर्म के ग्रन्थ में अवेस्ता प्रमुख है। इसमें इस धर्म के प्रमुख सिद्धान्तों का उल्लेख है। इस ग्रन्थ के प्राचीन कथानकों का संग्रह ईसा काल में हुआ होगा। सर विलियम्स जोन्स का कथन है कि जब मैंने अवेस्ता के शब्दों का अनुशीलन किया तो मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि उसके दस शब्दों में सात शुद्ध संस्कृत के हैं। सम्भवतः अवेस्ता की छन्द रचना का वेदों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। अवेस्ता के चार भाग हैं–

(1) यस्न और गाथा– इसमें पुरोहितों के मंत्र एवं जरथुष्ट्र के सिद्धान्त संग्रहित हैं।, (2) वीस्परद– इसमें देव वन्दनायें हैं, (3) बेन्दी दाद– इसमें धार्मिक विधि निशेध संग्रहित है तथा (4) यष्ट या यरत– इसमें देवदूतों के प्रति वन्दनाओं का संकलन है। ईरानियों के अनुसार अवेस्ता में जरथुष्ट्र और उसके प्रमुख अनुयायियों के उपदेश संकलित हैं।

जरथुष्ट्र ने दो देवताओं अहुर और मजदा को मिलाकर एक अहुरमज्दा की कल्पना की और उन्हें देवाधिदेव मानकर उनकी अनन्य भक्ति का प्रचार किया। अहुरमज्दा का विशिष्ट निवास स्थान देवलोक है। जरथुष्ट्री धर्म व शिक्षाओं को बेहतर समझने के लिए इसमें निहित दर्शन को समझना आवष्यक हो जाता है। जो निम्नवत् है–

1. **नैतिक धर्म**– इस धर्म की विषेषता यह है कि इसमें सदाचार का स्थान प्रमुख है। जरथुष्ट्र के अनुसार सद्गुणों के विकास के कारण ही मनुष्य धर्म के गुण तत्वों से अपना परिचय बढ़ा सकता है। इसके अनुसार सदाचार के तीन स्थूल रूप हैं, अमित्र को मित्र बनाना, दुष्टों को शिष्ट बनाना, मूढ़ को ज्ञानी बनाना, जरथुस्त्र ने मनुष्य के व्यक्तिगत गुणों का सम्बन्ध समाज में बताया है।

2. **द्वैतवाद**– जरथुष्ट्र के अनुसार विश्व में दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ क्रियाशील रहती हैं सद्–असद्, विवेक–अविवेक, पाप–पुण्य, शुभ– अशुभ और धर्म–अधर्म। इनदोनों प्रवृत्तियों का सम्बन्ध दो दैवीय शक्तियों से है। सद् शक्तियों का सम्बन्ध अहुरमज्दा से इसके विपरीत असत् प्रवृत्तियों का सम्बन्ध अहिरमन् से जो अंधकार, पापादि असद् प्रवृत्तियों का प्रतीक है।

3. **एकेश्वरवाद**– जरथुष्ट्र के अनुसार इन दोनों शक्तियों में सत्ता के लिए निरन्तर द्वन्द्व चलता है और अन्त में अहुजमज्दा की विजय होती है। इस धर्म में इन्हीं कारणों से अहुरमज्दा को 'सर्वशक्तिमान देव' माना गया है। उसकी व्यापक सत्ता से मिथ्र (सूर्य) इन्द्र, अग्नि, पृथ्वी, जल और वायु

सन्निहित किए गए हैं। अहुरमज्दा की ही अनुकम्पा से अग्नि में उष्णता, जल में शीतलता और हवा को गति प्राप्त होती है। इस प्रकार जरथुस्त्र ने एकेश्वरवाद पर जोर दिया।

4. **सुखवाद**– जरथुष्ट्र के मतानुसार शुभ गुणसम्पन्न अहुर मजदा का अशुभ अहरिमन से निरन्तर संघर्ष होता रहता है। अन्ततः शुभ आचरण वाले लोगों की विजय होगी अतः इस धर्म में सुखवाद की कल्पना की गई थी।

5. **परलोकवादी**– जरथुष्ट्र के अनुसार स्वर्ग सुकृतों का निवास स्थान है जिसका संरक्षण अहुरमज्दा करते हैं। स्वर्ग में धार्मिकों को ही प्रवेश मिलता है।

जरथुष्ट्र की आत्मा में आस्था थी। उनके अनुसार लौकिक शरीर आत्मा के लिए बन्धन है। मृत्यु के समय इसका विनाश होता है। जरथुस्त्र धर्म में मगियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ईरानी धर्म में पुजारियों को मगी कहा जाता है।

जरथुष्ट्र ने होम (सोम्) आदि सभी मादक द्रव्यों के सेवन का घोर विरोध किया। पशुबलि और पर–पीड़ा का विरोध तो किया परन्तु सबके साथ दया के व्यवहार का उपदेश भी इन्होंने दिया। कार्टर ने जरथुस्त्र धर्म के विषय में लिखा है– The religion of Zoroaster is culture of spritual and moral progress, it a religion of energy and in action a religion of dhrift.

13.8 बोध प्रश्न

1. जरथुस्ट्र के जीवनवृत्त व शिक्षाओं का वर्णन कीजिए।
2. पारसिक सभ्यता कालीन राजनीतिक स्थिति पर प्रकाश डालिए।
3. ईरानी कला व स्थापत्य का वर्णन कीजिए।

13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. श्रीराम गोयल, विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ, वाराणसी, 2011.
2. उदय नारायण राय, विश्व सभ्यता का इतिहास, इलाहाबाद, 1990.
3. World civilizations (Their History and Culture) Edward Mchall Biuns, Philip LeePalpn, Robert E. Learnes and Standish Meachan, Delhi, 2011.

इकाई–14 चीन की सभ्यता

इकाई की रूपरेखा

14.0 प्रस्तावना

14.1 उद्देश्य

14.2 शांग वंशकालीन चीन

14.2.1 राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक स्थिति

14.2.2 धर्म, कला व बौद्धिक उपलब्धियाँ

14.3 चाऊ वंशकालीन चीन

14.3.1 राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक स्थिति

14.3.2 धर्म, कला व बौद्धिक उपलब्धियाँ

14.4 कन्फ्यूशियस : जीवन व शिक्षाएँ

14.5 बोध प्रश्न

14.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

14.0. प्रस्तावना

चीन की सभ्यता विश्व की प्राचीनतम् सभ्याताओं में से एक है। जहाँ एक तरफ प्राचीन विश्व की सभी सभ्यताएँ विलुप्त/समाप्त हो गयीं वहीं चीन की सभ्यता आज भी निरन्तर मानी जाता है। यह अपनी सातत्यता के कारण ही अत्यन्त विशिष्ट है। चीन की कांस्यकालीन सभ्यता का उद्‌भव लगभग द्वितीय सहात्राब्दी ई0पू0 में होता है। अतः यह सभ्यता अपनी प्राचीनता नहीं अपितु विश्व को अपनी देनों के लिए जानी जाती है। चीन को पूर्वी एशिया का गुरू माना जाता है। चीनी सभ्यता के विकास व निरन्तरता में उसकी भौगोलिक अवस्थिति का महत्वपूर्ण योगदान था।

चीन के उत्तर में रूस व मंगोलिया, दक्षिण में भारत, नेपाल, वर्मा, पूर्व में कोरिया, तथा प्रशान्त महासागर तथा पश्चिम में मध्य एशिया देश स्थित है। चीन का विस्तार लगभग 15 लाख वर्गमील में है। चीन पर्वतों, रेगिस्तानों व समुंद्रों से घिरा हुआ है। चीन की सीमाएँ प्राकृतिक रूप से सुरक्षित हैं। यह विश्व की विशालतम् पर्वत श्रृंखलाओं व पठार–हिमालय, कराकोरम व पामीर

तथा शीत मरूस्थल गोबी से घिरा हुआ है। चीन को भौगोलिक आधार पर दो भागों यथा मुख्य चीन व बर्हिवर्ती चीन में विभक्त किया जा सकता है। मुख्य चीन के अन्तर्गत ह्वाग–हो वं यांग्टीसिक्यांग नदियों द्वारा सिंचित प्रदेश आता है तथा बर्हिवर्ती चीन के अन्तर्गत मंगोलिया, मंचूरिया व तिब्बत को सम्मिलित किया जा सकता है। बर्हिवर्ती चीन पर प्रारम्भ में ही चीनी सम्राट अपना आधिपत्य मानते हैं पर इन क्षेत्रों में मूल निवासी अपने को स्वतन्त्र नागरिक मानते हैं और यह स्थिति वर्तमान में भी बनी हुयी है। यह क्षेत्र सांस्कृतिक रूप से भी मुख्य चीन से पृथक है।

चीनी सभ्यता का इतिहास जानने के लिए साहित्यिक व पुरातात्विक साक्ष्यों पर निर्भर होना पड़ता है। तृतीय शताब्दी ई0पू0 में चीनी शासक शी–ह्वांग टी द्वारा प्राचीन चीनी साहित्यों को नष्ट करवा देने के कारण, चीनी सभ्यता के विषय में ज्ञान प्रदान करने वाले साहित्य पूर्णतः अनुपलब्ध हैं। चीनी पौराणिक कथाओं के अनुसार चीन की उत्पत्ति पान–कू (विराट पुरूश) द्वारा की गयी। चीन में मानव उत्पत्ति के प्राचीनतम् पुरातात्विक प्रमाण पैकिंग के निकट चांउ–कोउ तिएन नामक गुफा से चीनी मानव (होमो इरेक्टस) के रूप में प्राप्त होते हैं। यह अवषेष पुरा पाषाण कालीन हैं। चीनी मानव को पुरातात्विक मंगोल परिवार से सम्बद्ध करते हैं। चीन में नवपाषाण में दो पृथक संस्कृतियों– कृष्ण मृद्भाण्ड संस्कृति व चित्रित मृद्भाण्ड संस्कृति का प्रचलन देखने को मिलता है। नवपाषाण काल के पश्चात् चीन के राजनीतिक इतिहास का प्रारम्भ होता है। चीन में क्रमशः शिया राजवंश (2200 ई0पू0 – 1766 ई0पू0), शांग राजवंश (1766 ई0पू0 – 1122 ई0पू0), चाऊ राजवंश (1122/1050 ई0पू0 – 221 ई0पू0), चिन वंश (225 ई0पू0 – 203 ई0पू0), हानवंश (203 ई0पू0 – 220 ई0पू0), सुई वंश (580 –619 ई0पू0) तांग वंश व शुंग वंश ने शासन किया। शुंग वंश चीन के प्राचीन साम्राज्य की अन्तिम राजवंश थी। 1279–80 ई0 में मंगोल नेता कुबलाई खाँ ने शुंग वंश के अन्तिम शासक की हत्या कर प्राचीन चीनी सभ्यता का अन्त कर दिया।

14.1. उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य चीन की सभ्यता व उसकी उपलब्धियों पर प्रकाश डालना है। इस इकाई में चीन के शांग व चाऊ वंश कालों का वर्णन किया जायेगा। इस इकाई में अध्ययनोपरान्त चीनी सभ्यता के प्राचीन युग का विस्तृत ज्ञान प्राप्त होगा। विश्व का चीन के उत्पादनों में भी अवगत कराने का प्रयास रहेगा।

14.2. शांग वंशकालीन चीन

चीन की शांगकालीन संस्कृति का ज्ञान आन्यांग (चिन–शुई) नामक पुरास्थल के उत्खनन से होता है। आन्यांग पुरास्थल के उत्खनन से पूर्व चीन की शांग कालीन संस्कृति को पौराणिक अथवा काल्पनिक माना जाता था। आन्यांग के उत्खनन से ज्ञात हुआ कि वास्तव में शांग कालीन संस्कृति का सम्बन्ध कांस्यकाल से था। आन्यांग पुरास्थल का उत्खनन 1929–37 ई0 के मध्य प्रो0 ली0ची0 व तुंग–त्सो–पिन के द्वारा करवाया गया।

14.3.1 राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक स्थिति

शांग कालीन शासकों को चीनी सभ्यता की स्थापना का श्रेय दिया जाता है। शांग काल का प्रारम्भ 1766 ई0पू0 में माना जाता है। इस काल में कुल 28 शासकों ने 640 वर्षों तक शासन किया। यह 640 वर्षों का काल चीन की सभ्यता के सांस्कृतिक उत्थान का काल था। ऐसा माना जाता है कि शांग राजवंश की स्थापना टांग नामक व्यक्ति के द्वारा की गयी थी। कुछ साहित्यों में शांग काल को 'थिन काल' भी कहा गया है।

साहित्यिक साक्ष्यों में शांग वंश के शासकों की जानकारी होती है, परन्तु अत्यल्प मात्रा में। इस वंश के अन्तिम शासक 'चाऊ सिन' का उल्लेख विस्तृत रूप में मिलता है। 1400 ई0पू0 में शांग वंश के शासक केंग ने हुआन नदी के तट पर आन्यांग नामक नगर बसाया व इसे शांग राज्य की राजधानी कहा। कुछ साहित्यों ने केंग के स्थान पर 'पानकेंग' नाम प्राप्त होता है। आन्यांग नगर को शांग लोगों का महानगर कहा जाता था। शांग वंश के लोगों को प्राचीन चीनी सभ्यता का प्रथम नागरिक होने का गौरव प्राप्त है।

सर्वप्रथम शांग वंश के शासकों ने आन्यांग नगर के आस–पास के प्रदेशों को जीतकर साम्राज्य स्थापना का कार्य किया। शांग वंश के शासकों ने फोन व हुई नदी की घाटियों तक अपने उपनिवेश स्थापित किये। शांग राज्य में राज्य के प्रमुख 'वांग' कहा जाता था। शांग राज्य में राजा प्रशासनिक व धार्मिक कार्यों का प्रमुख माना जाता था। शांग राजवंश की सेना में अश्वारोही, रथारोही व पैदल सैनिक थें। चीन में युद्ध में रथों के प्रयोग का श्रेय शांग शासकों को दिया जाता है।

शांग वंश का अन्तिम शासक चाऊ–सिन पराक्रमी परन्तु अत्यन्त क्रूर शासक था। इसकी पत्नी त–कि एक क्रूर व व्यभिचारिणी महिला थी। इनके अत्याचारी शासन को समाप्त करने के उद्देश्य से वेन–वांग नामक व्यक्ति ने

विद्रोह का झण्डा खड़ा किया। वेन–वांग को चाऊ–सिन ने पराजित कर अपना बन्दी बना लिया, जिसे चाऊ वंश के लोगों ने धन रूप में कुछ दण्ड देकर मुक्त करवाया। कालान्तर में वेन–वांग के पुत्र वु वांग ने अपने पिता के पदचिन्हों पर चलते हुए चाऊ–सिन को पराजित कर शांग वंश का अन्त कर दिया। चाऊ–सिन के शासन काल तक आते–आते शांग राज्य काफी विस्तृत हो चुका था। इसमें ह्वाग्हों बेसिन का लगभग एक तिहाई भाग सम्मिलित था। शांतुंग–अन्दुई व होपेई प्रान्त शांग राज्य के अंग बन गए थे। 1112 ई0पू0 में शांग वंश का अन्त कर वू वांग ने चाऊ वंश की नींव डाली।

कांस्य कालीन चीनी सभ्यता अथवा शांग राजवंश कालीन चीन में शासन व्यवस्था राजतंत्रात्मक थी। प्रशासन का केन्द्र बिन्दु शांग राजा होता था, जिसे 'ती' उपाधि से विभूशित किया जाता था। चीनी भाषा में 'ती' का अभिप्राय सर्वोच्च देवता होता है अर्थात् शांग वंशीय शासक स्वयं को देवतुल्य मानते थे। चीन में सामन्त. व्यवस्था का प्रारम्भ भी सर्वप्रथम शांग काल में देखने को मिलता है। यह सामन्त शांग शासकों द्वारा विजित क्षेत्र के करद शासक होते थें।

चीन की समाज की अवधारणा तत्कालीन विश्व की अनेक सभ्यताओं की समाज की अवधारणा में कतिपय भिन्न थी। शांग कालीन समाज के विषय में साक्ष्यों का अभाव है। साहित्यों व अभिलेखों से ज्ञात होता है कि परिवार शांग कालीन चीनी समाज का प्रमुख अंग था। इनके परिवार में पितृ पूजा (पूर्वजों की पूजा) को अत्यधिक बल दिया गया है। यहाँ संयुक्त परिवार की व्यवस्था थी। समाज पितृसत्तात्मक थे, परन्तु मातृ को भी पर्याप्त सम्मान प्राप्त था। चीनी समाज में ज्येष्ठ भाई व उसके अभाव में पुत्र को उत्तराधिकार प्राप्त होता था। वंश वृद्धि को चीनी समाज में प्रमुख दायित्व माना गया है। शांग कालीन चीनी समाज में परिवार से तात्पर्य सम्भवतः कुल से था। यह लोग पूर्वजों को प्रसन्न करने के उद्देश्य से बलि भी देते थे।

शांग कालीन चीनी समाज मे वर्गभेद बहुत कम था। उच्च वर्ग व निम्न वर्ग में बहुत अन्तर नहीं था। समाज में शासक के पश्चात् सामन्तों व कुलीनों के वर्ग तथा सेनापतियों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। समाज में एक अन्य वर्ग व्यापारी व दस्तकारों का था। इस काल में दासी प्रथा के प्रचलन के भी प्रमाण मिलत हैं जिन्हें 'ची' कहा जाता था। विद्वानों का मत है कि इसी दासी प्रथा के परिणामस्वरूप कालान्तर में चीन में उपपत्नी प्रथा का प्रादुर्भाव हुआ। सम्भवतः उच्च वर्ग की महिलाओं की दशा अच्छी थी। ओरेकाल बनि के शिलालेखों में बहु–विवाह प्रथा में प्रचलन पर भी प्रकाश पड़ता है।

शांग कालीन लोग सन व रेशमी वस्त्र पहनते थे। वस्त्र प्रायः जलवायु के अनुसार पहने जाते थे। इन्हें आभूषण अत्यन्त प्रिय थे। यह शंख, सीप, हाथी दांत, सोने व चानी के आभूषण धारण करते थें। शांग कालीन चीनी समाज में लोग संगीत प्रेमी थी। वाद्य यंत्र इनका प्रमुख मनोरंजन का साधन थे। पुरास्थलों से प्रतिवेदित समाधियों के आधार पर इनकी शव विसर्जन प्रथा का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। यह मृतकों की आवष्यक सामग्री रख कर दफनाते थे। कभी—कभी सम्भवतः इनके दासों को भी साथ में दफनाने की प्रथा देखने को मिलती है। कुछ शवों में हाथ—पैर काट कर भी दफनाया गया है।

शांग कालीन चीनी समाज में विवाह को अत्यधिक महत्व प्राप्त था क्योंकि इसे वंश वृद्धि का साधन माना गया है। यहाँ एक ही कुल में विवाह नहीं किए जाते थे, परन्तु मातृ पक्ष में विवाह किए जाते थे। समाज में विधवा विवाह व पुनर्विवाह का भी प्रचलन मिलता है।

शांगकालीन अर्थव्यस्था का प्रमुख आधार कृषि कर्म था और यह राज्य की आय का प्रमुख स्रोत भी था। कृषि के अतिरिक्त पशुपालन व आखेट भी अर्थव्यवस्था में अपना योगदान देते थे। चीन में ह्वांगहों व यांगटीसीक्यांग सदृश सदावाहिनी नदियाँ प्रवाहित होती है, जो सर्वाधिक उर्वर मैदानों का निर्माण करती हैं। इन्हीं उर्वर मैदानों ने शांग कालीन लोगों को कृषिकर्म की ओर आकृष्ट किया। ज्वार प्रमुख खाद्यान्न था। ज्वार के अतिरिक्त बाजरा, धान, गेहूँ, जूट, रेशम आदि की कृषि प्रचलित थी। कृषिकर्म में स्त्री व पुरूश मिलजुल कर कार्य करते थे। राजा ही समस्त भूमि का स्वामी होता था। अतः वह कर प्राप्त करता था। शांग कालीन शासकों ने भू—स्वामित्व को बनाए रखने के लिए चिंग—तिएन पद्धति का पालन किया। चीन में शहतूत फलोत्पादन का विषेष महत्व था, क्योंकि इससे रेशम उत्पादित होता था व रेशम का चीन की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान देखने को मिलता है।

शांगकालीन समाज में कृषि के पश्चात् अर्थव्यवस्था का द्वितीय आधार पशुपालन था। यह हाथी, घोड़े, बैल, कुत्ते, भेड़, मुर्गी, हिरण, भैंस व बन्दर आदि पशुओं को पालते थे। यह पशुओं का प्रयोग कृषि कार्यों में, बोझ ढ़ोने के लिए, रथों में संचालन आदि कार्यों में करते थे। यह वन्य पशुओं का आखेट भी करते थे।

शांगकालीन चीन में कृषि व पशुपालन के साथ—साथ अन्य उद्योग धन्धों में विकास के भी प्रमाण प्राप्त होते हैं। यह कांस्यकला से भली—भाँति परिचित थे। कांसे को ढालकर बर्तन निर्माण की कला में इस काल के लोगों को

प्रवीणता प्राप्त थी। यह कुशल धातु शिल्पी थे। यह काँसे के बर्तनों के निर्माण के साथ–साथ अस्त्र–शस्त्रों का भी निर्माण करते थे। काँसे के अतिरिक्त इस काल में ताँबें व जस्ते की भी विभिन्न वस्तुओं का निर्माण किया जाता था। धातु उद्योग के अतिरिक्त शांगकालीन चीन में अन्य अनेक लघु उद्योगों जैसे काष्ठकला, कुम्भकला, चटाई व टोकरी निर्माण कला आदि का भी विकास हुआ। यह काष्ठ पर उत्कृष्ट नक्काशी किया करते थे। यह काल आकर्शक मिट्टी के बर्तनों के निर्माण के लिए भी जाना जाता है। शांगकालीन लोगों के रेशम के वस्त्र अत्यन्त प्रिय थे। अतः वहाँ रेशम निर्माण उद्योग का विकास हुआ। कालान्तर में रेशम निर्माण उद्योग ने चीन की अर्थव्यवस्था व अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में अपनी धाक जमायी। शांगकालीन चीन में सम्भवतः प्रारम्भ में इन उद्योग धन्धों पर व्यक्तिगत अधिकार था, परन्तु कालान्तर में यह राज्य के अधीन संचालित किए जाने लगे।

14.2.2 धर्म, कला व बौद्धिक उपलब्धियाँ

शांगकालीन धार्मिक स्थिति के विषय में जानने के लिए साक्ष्यों का अभाव है। कुछ साक्ष्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि शांगकालीन धर्म के अन्तर्गत मुख्यतः पूर्वज पूजा उपासना को रख सकते हैं। कालान्तर में यहाँ अनेक दार्शनिक समुदायों का उद्‌भव हुआ, परन्तु उन सभी के मूल में पितृ पूजा को देखा जा सकता है। चीन में पूर्वजों को मृत न मानकर अत्याधिक शक्तिशाली माना जाता था। इनकी मान्यता थी कि यदि पूर्वज प्रसन्न रहेंगे तो प्रत्येक कार्य में सफलता प्रदान करते हैं तथा प्रसन्न होने पर अकाल, विफलता, महामारी आदि समस्याएँ उत्पन्न होती है। पूर्वज पूजा के अतिरिक्त प्रकृति पूजा भी करते थे। शांगकाल में परदार सर्प स्त्री (Dragon Women) की पूजा के प्रमाण मिलते हैं। इनकी अन्त्येष्टि प्रक्रिया से भी धार्मिक तत्वों का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। यह शवों को चटाई में लपेटकर मुँह के बल लिटाकर दफनाते थे। कब्र में अन्त्येष्टि सामग्री मृतक के स्तर के अनुसार रखी जाती थी। उच्च वर्ग के लोगों के शवों के साथ काँसे के पात्र व बहुमूल्य पदार्थ रखे जाते थे। आन्यांग से ऐसे अनेक अस्थि अभिलेख प्राप्त हुए हैं, जो चीनियों के भविष्य दर्शन ज्ञान की ओर ध्यान केन्द्रित करती हैं। इस काल में देवताओं को दो समूहों– भूवासी व आकाशवासी में विभक्त किया गया था। भूवासी देव समूह की सर्वोच्च देवी 'होऊ तू' तथा आकाशवासी देव समूह का प्रमुख देवा 'शांग–ती' था।

शांगयुगीन चीनियों की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धी लिपि का विकास

मानी जाती है। शांगकालीन अभिलेखों पर प्रयुक्त लिपि जटिल व उत्कृष्ट है, अर्थात् इसका अविष्कार हम शांगकाल में नहीं मान सकते। निश्चय ही शांगकाल के कुछ पूर्व ही चीनी लिपि का उद्‌भव हुआ होगा, परन्तु इसका सर्वप्रथम प्रयोग शांगकाल मे ही देखने को मिलता है। चीनी लिपि की उत्पत्ति धार्मिक उद्‌देश्य से ही की गयी थी, क्योंकि प्राचीन चीनियों का मत था कि मृत प्राणी या पूर्वज सुन नहीं सकते। अतः इन तक अपनी बात का पहुँचाने के लिए वह लिपि का प्रयोग करते थे। चीनी लिपि में पेड़, सूर्य, पर्वत, चाँद, पक्षी आदि को चिन्हों के माध्यम से व्यक्त किया गया है। चीनी लिपि ने मूर्त व अमूर्त दोनों भावों को व्यक्त करने के उद्‌देंश्य से चिन्ह बनाए गए हैं। कालान्तर ने चीनी लिपि में भाव बोधक चित्रों के साथ ही ध्वनिबोधक चिन्हों का प्रयोग प्रचलन में आया।

शांगकाल में लिपि के ज्ञान के साथ ही साहित्य लेखन भी किया गया। इस काल में साहित्यों की मूल विषय वस्तु देववाणी थी। साहित्य का सर्वाधिक विकास चाऊ काल में देखने को मिलता है। लिपि व साहित्य के साथ शांगयुगीन कलाकार आभूषण निर्माण कला में पारंगत थे। इनके द्वारा निर्मित ''दैत्य मुखौटा'' जिसे चीनी भाषा में ताओ तियेह कहते थे, प्रसिद्ध था। इस मुखौटे को लालच व बुरी नजर के विरूद्ध चेतावनी माना जाता था। इस पर दैत्याकार सर्प तथा पशु–पक्षियों का अंकन होता था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शांग काल ने चीन के परवर्ती विकास की नींव डाली। शांगकालीन चीन ने विकसित चाऊ कालीन चीनी सभ्यतार का मार्ग प्रशस्त किया।

14.3 चाऊवंश कालीन चीन

विश्व की सभ्यताओं में चीन की सभ्यता को जो विशिष्टता प्राप्त है, वह है इस सभ्यता की वैचारिक एवं दार्शनिक श्रेष्ठता के कारण मानी जा सकती है। अन्य सभ्यताओं की तुलना में चीन के सांस्कृतिक महत्व को अपूर्व स्थान प्राप्त है। पं0 जवाहरलाल नेहरु के अनुसार– "चीन और भारत ही ऐसा देश है जिसकी सांस्कृतिक उपलब्धियों में निरन्तरता है।"

शांगवंश के अन्तिम शासक चाऊ सिन को जनता के प्रतिनिधि वू–वांग ने परास्त किया तथा चाऊ वंश की नींव डाली। शांग काल में चीनी संस्कृति पीत तथा हुआई नदियों की घाटियों अर्थात् वर्तमान हीनान, होपेई एवं शान्तुंग तक ही सीमित थी किन्तु चाऊ शासकों के संरक्षण में इसे विस्तृत होने का सुयोग मिला। समस्त चाऊ कालीन इतिहास को दो कालों– प्रारम्भिक चाऊ

काल (1050 ई0पू0 से 750 ई0पू0) तथा परवर्ती चाऊ काल (750–244 ई0पू0) में विभाजित किया गया है।

14.3.1. राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक स्थिति

प्रारम्भिक चाऊ काल में चाऊ शासक अत्यधिक शक्तिशाली थे। इनकी राजधानी पश्चिम में वेई की घाटी में चंगान के निकट स्थित थी। इसी कारण इस काल को पश्चिमी चाऊ काल की संज्ञा दी जाती है। आठवीं शती ई0 पू0 के मध्यकाल के आस–पास राजधानी पश्चिम से पूर्व में आधुनिक होनानफू के समीप लोयंग में स्थापित की गई। इस परिवर्तन से परवर्ती चाऊ काल प्रारम्भ होता है। पूर्व में राजधानी स्थापना से इसे पूर्वी चाऊ काल भी कहा जाता है।

चाऊ नरेशों ने समस्त राज्यों को सामंतों में बाँटकर चीन में सामन्तवाद का प्रारम्भ किया। चीन ने 1122 ई0 पू0 से 275 ई0 पू0 तक सामन्तों का राज्य रहा। जिनमें चाऊ राजवंश प्रमुख था। इनके वंश में 37 सम्राट हुए जिनके शासनकाल में चीन ने संस्कृति के प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति की। चीन के इतिहास में चाऊ काल बौद्धिक जागरण का युग रहा।

चाऊ काल में कई राज्य थे जिनमें चि, चिन, छिन, सुंग तथा चू नामक पाँच राज्य विषेष प्रतिष्ठित थे। अन्ततः छिन शासकों ने चाऊ वंश के अन्तिम शासक को पराजित कर धीरे–धीरे अपना प्रभुत्व 249 ई0पू0 में बढ़ाया लगभग 221 ई0पू0 तक छिन वंश के साम्राज्य का उत्कर्ष प्रारम्भ होता है।

चाऊ युग का शासन एक प्रकार का संघीय शासन था। सम्राट के आधिपत्य में सभी सामन्त स्वतः शासन करते थे। परन्तु शासन तंत्र में सम्राट सर्वोच्च था। वह बेग की उपाधि धारण करता था। उसकी सहायता के लिए मुख्यमंत्री तथा छः अवर मंत्रियों की नियुक्ति की जाती थी। जो कृषि सेवा, सार्वजनिक निर्माण, धार्मिक कार्य एवं सेना को देखते थे। आकाश में तीन सौ सात नक्षत्रों की कल्पना के आधार पर इतने ही अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी।

सामन्तों की दृष्टि से महत्व को देखते हुए सर्वप्रथम बूचॉग में सामन्तों की पाँच श्रेणियाँ बनाईं। इनका चयन चाऊ वंश तथा स्थानिक सरदारों में से होता था। ये केन्द्र को कर तथा सैनिक भेजते थे।

इस काल में कानूनों का सम्बन्ध दण्ड से था। अनेक प्रकार के दण्ड प्रचलित थे जिनसे अर्थदण्ड देकर मुक्ति पायी जा सकती थी। इनका सैन्य संगठन सुदृढ़ था। युद्ध में रथों का प्रयोग अधिक किया जाता था। राज्य के 20

से 60 वर्ष के पुरुषों को अनिवार्य सैनिक सेवा देनी पड़ती थी। सेना का एक प्रधान सेनाध्यक्ष होता था। 500 सैनिक पर सेनापति तथा 100 सैनिकों पर सरदार नियुक्त किए जाते थे। प्रत्येक सरदार के अधीन 25 सैनिक के नायक होते थे।

चाऊकालीन समाज मुख्यतः अभिजात एवं कृषक दो वर्गों में विभाजित था। अभिजात वर्ग में शासकीय परिवार के सदस्य जागीरदार, सामन्त, राजकर्मचारी, ज्योतिषी, पुरोहित तथा लिपिक आते थे। प्रत्येक अनेक कुलों में बँटे थे जिनका एक काल्पनिक देवता से सम्बन्ध था। दूसरा वर्ग कृषकों का था। उनका जीवन सामान्य था। परिवार को समाज में महत्व था।

चाऊ काल में शिक्षा की उचित व्यवस्था थी। प्राथमिक विद्यालयों में प्रारम्भिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा विद्यालयों तथा उच्च शिक्षा राजधानी में स्थित सर्वोच्च विद्यालय में दी जाती थी। शिक्षा छः वर्षों से प्रारम्भ होकर 20 वर्ष तक चलती थी।

चाऊ कालीन आर्थिक संगठन कृषि प्रधान था मुख्यतः गेहूँ, जौ, बाजरा, धान तथा फलों की खेती की जाती थी। रेशम के कीड़े के लिए शहतूत की खेती की जाती थी। खेती का वितरण चिंग तिएन विधि द्वारा किया गया था। इस विधि में प्रत्येक 866 वर्ग किमी0 के क्षेत्र को नौ बराबर भागों में इस प्रकार विभाजित कर दिया जाता था।

कृषि के साथ–साथ व्यवसाय एवं व्यापार का भी प्रचलन था। मुख्य रूप से काष्ठ, धातु, चमड़े तथा रंगसाजी का उद्योग प्रचलित था। 1000 ई0पू0 से यहाँ मुद्रा प्रणाली विकसित हो गई थी। सिक्कों के अतिरिक्त क्रय–विक्रय में रेशमी वस्त्र, सोने के टुकडे, मोती एवं रत्नों का प्रयोग किया जाता था।

14.3.2. धर्म, कला व बौद्धिक उपलब्धियाँ

शांग काल की भाँति चाऊ काल में भी चीनी बहुदेववादी बने रहे। ये पूर्वजों के अतिरिक्त प्राकृतिक शक्तियों की पूजा करते थे। पृथ्वी स्थानीय देवताओं में टाऊ तू तथा आकाश स्थानीय देवताओं में तिएन प्रतिष्ठित थे। इनकी उपासना नगरों के समीप मैदानों में बनी वेदिकाओं में की जाती थी। इस समय तक अनुष्ठान विषेषज्ञ, ज्योतिष तथा दैवज्ञों का एक वर्ग अस्तित्व में आ चुका था। समृद्ध परिवार के मृतकों के साथ उनके सेवक के सिर भी दफनाएँ जाते थे।

चाऊ काल में चीनियों की कलात्मक प्रगति केवल भाण्डकला में दिखाई

पड़ती है। इस समय कांस्य भाण्ड बनाये गये। इस काल में शांग काल की निर्माण की आकृतियों में अलंकरण बढ़ाया गया। पुरातात्विक उत्खननों में अनेक प्रकार के पात्र प्राप्त होते हैं।

सर्वप्रथम इनकी चित्राक्षर लिपि में लकड़ी या बाँस की पत्तियों तथा स्याही का प्रयोग करके प्रारम्भिक साहित्य लिखा गया (शासकीय लेख उत्कृष्ट भाषा में लिखे गए थे)। इस प्रारम्भिक साहित्य का सम्बन्ध प्रशासन से था। चाऊ कालीन साहित्यिक कृतियों में निम्न कृतियाँ प्रमुख है–

शू चिंग– प्राचीन गद्यांशों के लेख 'शू चिंग' या 'क्लॉसिक ऑफ हिस्ट्री' में संग्रहित है। इसका सम्पादक कन्फ्यूशियस को माना जाता है।

शी चिंग– इन्हें 'क्लॉसिक ऑफ पोयट्री' कहते हैं। इसमें 311 कविताएँ व गीत संग्रहित हैं। इसे भी कन्फ्यूशियस की रचना मानते हैं।

चुन–चिउ– इसे बसन्त एवं शरत् भी कहा जाता है। इनकी रचना शासकीय अभिलेखों के आधार पर ऐतिहासिक ग्रन्थ के रूप में की गई थी।

बैम्बू एनाल्स– तृतीय शती ई0पू0 की समाधि से बाँस की पाटियों पर चिन तथा बेई राज्यों का इतिवृत्त मिला। इसे ही बैम्बू एनाल्स कहा गया।

त्सो चुआन– 468 ई0प0 से 200 ई0पू0 के राज्यों की अधिकृत टीकाओं को आधार मानकर चुन चिउ की टीका के रूप में यह ग्रन्थ लिखा गया। इसमें 722 ई0पू0 से 468 ई0पू0 तक की ऐतिहासिक सामग्री मिलती है।

ई चिग– इसे 'क्लॉसिक ऑफ चेंजेज' के नाम से जाना जाता है। यह एक शकुन परीक्षण ग्रन्थ है। परम्परा के अनुसार इसकी रचना चाऊ शासक वेन वांग द्वारा मानी जाती है, जिसमें कन्फ्यूशियस ने दस परिशिष्ट जोडकर इसका सम्पादन किया।

कु ओ यु– इसकी रचना तृतीय, चतुर्थ शती ई0पू0 में की गई थी। इसमें प्राचीन नैतिक आदर्श संग्रहित होते हैं।

चान कुओीत्से– इसे 'डाक्युमेंटस ऑव द फाइटिंग स्टेट्स' भी कहते हैं। इसमें चाऊ काल की अशान्त परिस्थितियों का वर्णन है।

लि शाओ– अन्तिम सदियों में बर्बरों के आने पर नवीन कविताएँ लिखी गईं जिनमें यह प्रमुख है। इस काव्य का चीनी साहित्य में महती स्थान है। चुयुआन को इसका लेखक माना जाता है।

चाऊ कालीन चीनियों ने सर्वाधिक प्रगति दर्शन के क्षेत्र में की। छठवीं शताब्दी ई0पू0 में सम्पूर्ण विश्व में धार्मिक आन्दोलन एवं दार्शनिक प्रगति की स्थापना हुई। परवर्ती चाऊ काल इस दृष्टि से विषेष प्रसिद्ध है। इसमें कई दार्शनिक सम्प्रदायों का आविर्भाव हुआ जिनमें कन्फ्यशियस सम्प्रदाय को सर्वाधिक महत्ता प्राप्त है।

कन्फ्यूशियस सम्प्रदाय– इसका प्रणेता कन्फ्यूशियस नामक दार्शनिक था।

मेंसियस– यह कन्फ्यूशियस का समर्थक था, इनकी प्रसिद्ध कृति 'बुक ऑफ मेंसियस' है जिसका चीनी दार्शनिक ग्रन्थों में विशिष्ट स्थान है।

सुनत्जू– यह कन्फ्यूशियस सम्प्रदाय का था। यह सुशासन का समर्थक था।

लाओत्से– 'ताओवाद' इसके द्वारा प्रचलित मत ताओवाद कहलाया जिसमें कन्फ्यूशियस की अपेक्षा अधिक रहस्यवादी, अस्पष्ट एवं दुर्ग्राह्यतत्व थे।

चुआंग त्जू– ताओवाद के समर्थक थे इन्होंने इस सम्प्रदाय को बढ़ाने का प्रयत्न किया।

मोती विश्व बंधुत्ववाद– 'मोत्जू या मोती' ने इस सम्प्रदाय की स्थापना की।

चांग च– 'भाग्यवाद' इसने कन्फ्यूशियस तथा मोती के सिद्धान्तों का अध्ययन करके नवीन भाग्यवाद सम्प्रदाय का निर्माण किया।

त्स–येन, प्रकृतिवाद– 'सान्याँग' या 'त्सयेन' ने प्रकृतिवाद की स्थापना की।

हान फेन त्जू, विधिवाद– चाऊ युग से विधिवादियों का भी एक सम्प्रदाय प्रचलित था जिसके समर्थकों में सर्वाधिक प्रसि हान फेई त्जू था।

चीन नें विज्ञान, गणित तथा ज्योतिष के क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण अध्ययन कर अनेक नक्षत्रों एवं पुच्छल तारा की गति का ज्ञान प्राप्त किया। इन्होंने 444 ई0पू0 में ज्योतिष के आधार पर 365वें दिन ए कैलेण्डर वर्ष में निर्धारित किया। ई0पू0 350 में बृहस्पति व शनि ग्रहों की गति का पता लगाया। पाँचवीं शती ई0पू0 में धूप घड़ी, जल घड़ी का प्रयोग करते थे। कर निर्धारण से आर्थिक अकाल रोककर सामाजिक समस्याओं का हल निकालते थे।

इन्हें ताँबे, सोने, चाँदी के सामान को बनाने का ज्ञान प्राप्त था। इस प्रकार चाऊ काल में चीन ने प्रारम्भिक कालों की अपेक्षा बहुत प्रगति की।

14.4. कन्फ्यूशियस : जीवन व शिक्षाएँ–

कन्फ्यूशियस चाऊ काल में उत्पन्न विभिन्न दार्शनिकों में से एक था। इसका जन्म 551 ई0 पू0 में चीन के लू नामक प्रांत में हुआ था। उसके पिता शान्तुंग लू राज्य में सहायक अधिकारी थे। वह अपनी वृद्धावस्था में राज्य कर्मचारी बने शीघ्र ही मुख्य न्यायाधीश बन गए उस समय के शासक द्वारा राज्य कर्म का पालन ठीक से न होते देख उसने राज्य सेवा से मुक्ति ले ली। उसकी 305 कविताओं का संग्रह शी चीन नामक ग्रन्थ में किया गया।

- **कन्फ्यूशियस की रचनाएँ**– कन्फ्यूशियस ने पाँच ग्रन्थों की रचना की थे जो निम्नलिखित हैं–

  ली ची– इसमें चिर सम्मानि आचार–नियमों का संग्रह है।

  आई चिंग– इसमें सृष्टि विषयक गम्भीर विचारों का प्रतिपादन है।

  शी चिंग– इसमें मानव–जीवन का विश्लेषण एवं नैतिकता के नियम हैं।

  चून चिऊ– इसमें लू राज्य के इतिहास का वर्णन है।

  शू चिंग– यह भी ऐतिहासिक ग्रन्थ है इसमें अतीत कालीन राजवंशों का इतिहास है।

- **कन्फ्यूशियस के सिद्धान्त**–

कन्फ्यूशियस के सिद्धान्त सरल थे। उसने स्वयं को तत्व विधा और तर्कशास्त्र से पृथक् रखा। उसने केवल राजनीति और नीतिशास्त्र पर विचार व्यक्त किया। वह एक आदर्श राज्य की कल्पना करता था, जिसकी प्राप्ति साधु शासकों की पति द्वारा ही हो सकती थी। इनके अनुसार शासक के साथ ही राज्य का मंत्री भी दार्शनिक हो, जिससे वह विद्यालय से राष्ट्र को सरल बना सके। वह समाज की ईकाई परिवार को मानता था।

कन्फ्यूशियस कहते थे एक आदर्श व्यक्ति में निम्न गुण होने चाहिए– (1) आँखों से स्पष्ट देखे, (2) मुद्रा मुख दयापर्ण हो (3) व्यवहार आदरपूर्ण हो, (4) वाणी सच्ची हो, (5) कार्य ने श्रामयी सजगता हो, (6) संदिग्ध विषयों में विचार विमर्श करे, (7) क्रोध में विवेक न खोये, (8) उचित साधनों का प्रयोग कर लाभ प्राप्त करे।

कन्फ्यूशियस मानता था कोई राजसत्ता शस्त्र बल पर स्थिर नहीं रह सकता, उसके निमित्त लोकमत की अनुकूलता आवष्यक है।

कन्फ्यूशियस भी सरलता, श्रेष्ठता तथा सत्यता के कारण विपरीत वातावरण में भी लोकप्रिय बने रहे। सम्राट वती और ताई सुँग ने इस वाद की पुनः प्रतिष्ठा की कन्फ्यूशियस की स्मृति में नगर–नगर में मन्दिरों का निर्माण कराये गये। उनकी शिक्षाओं को अभिलेखों के रूप में उत्कीर्ण करवाये गये। विद्यालयों के पाठ्यक्रम में उन्हें शामिल किया गया।

चीनियों पर कन्फ्यूशियस के विचारों का बहुत प्रभाव पड़ा उनके चरित्र में उन्नति हुयी तथा वे एकता के सूत्र में बँध गये। आज भी चीन में लगभग एक तिहाई लोग उसके मतों को मानने वाले हैं, उसकी शिक्षाएँ शिलाखण्डों पर उत्कीर्ण करवायी गयी हैं। जिससे जनसामान्य उसके विचारों से प्रेरित हो सके।

14.5. बोध प्रश्न

1. चीन के चाऊ कालीन बौद्धिक उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।
2. कन्फ्यूशियस के जीवन चरित्र व शिक्षाओं की विवेचना कीजिए।

14.6. सन्दर्भ ग्रन्थ

1. उदय नारायण राय, विश्व सभ्यताएं का इतिहास, इलाहाबाद, 1990.
2. श्रीराम गोयल, विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ, वाराणसी 2011.

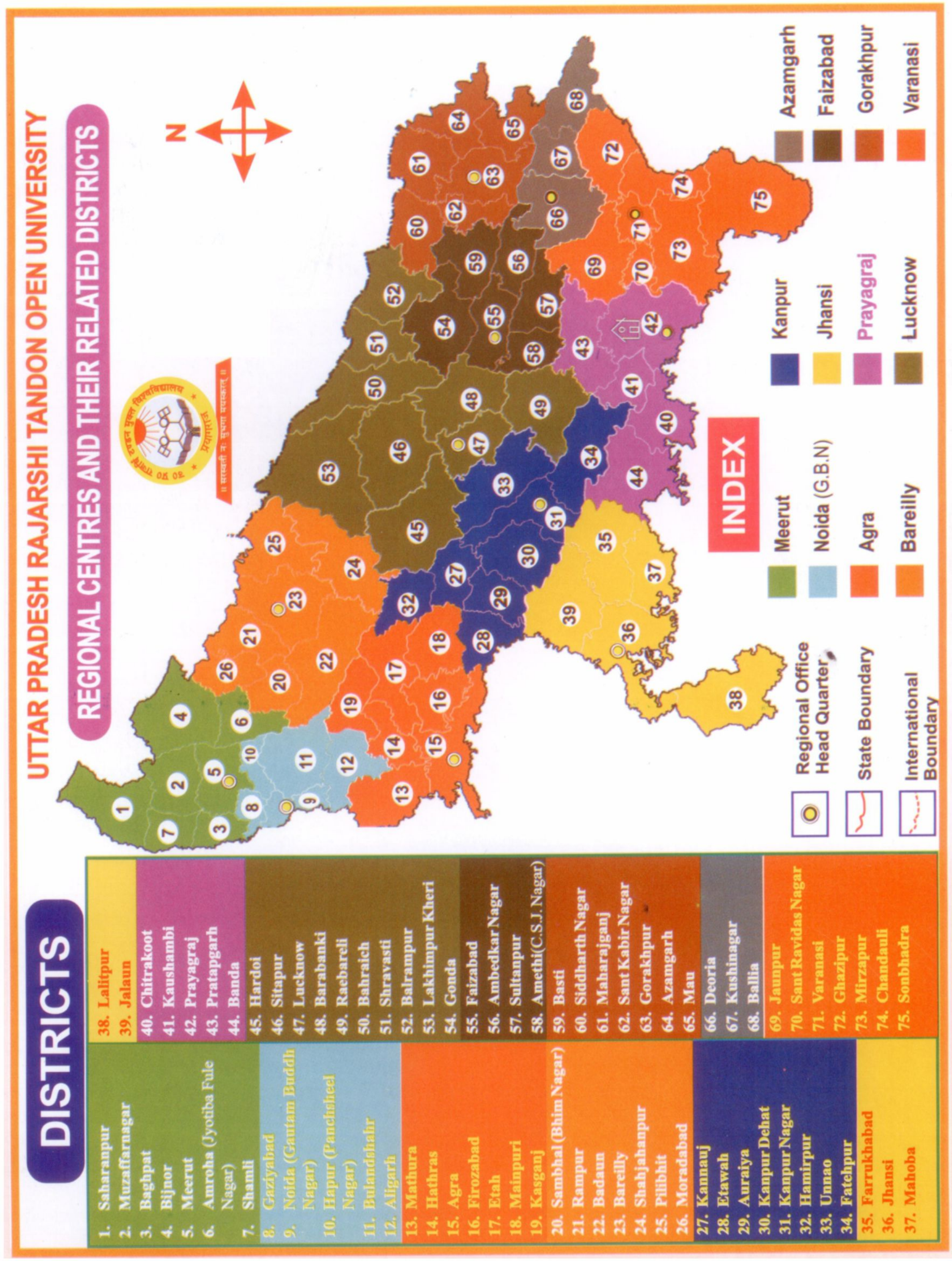

शान्तिपुरम् (सेक्टर–एफ), फाफामऊ, प्रयागराज – 211013

"अपने भाइयों को मै सचेत करना चाहता हूँ कि मोम न बनें और आसानी से पिघल न जायें। छोटी-छोटी सी बातों के लिए ही हम अपनी भाषा को या संस्कृति को न बदलें।"

राजर्षि पुरूषोत्तमदास टंडन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

प्रयागराज

।। सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ।।

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज - 211013

www.uprtou.ac.in

टोल फ्री नम्बर- 1800-120-111-333